बोधि वृक्ष

(प्रश्नोत्तर रत्नमालिका पर आधारित विशिष्ट प्रवचनों का संग्रह)

-: प्रवचनकार :-

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

-: प्रकाशक :-

गजेन्द्र ग्रन्थमाला

कृति : बोधि वृक्ष

मूलग्रंथ : श्री प्रश्नोत्तर रत्नमालिका

ग्रंथकार : आचार्य श्री अमोघवर्ष स्वामी

प्रवचनकार : आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : मुनि प्रज्ञानंद

संस्करण : प्रथम

प्रतियाँ : 1100, सन् 2015

प्राप्ति स्थानः निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, बौलखेड़ा
जैन साहित्य सदन, श्री दि. जैन लाल मन्दिर, दिल्ली
गजेन्द्र ग्रन्थमाला, H2/16, II फ्लोर, अंसारी रोड़,
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002 मॉ. 9810035356

मूल्य : रु100/-

मुद्रकः एन.एस. एन्टरप्राईजिज
2578, गली पीपल वाली, धर्मपुरा, दिल्ली-6
दूरभाष : 9811725356, 9810035356
e-mail : swaneeraj@rediffmail.com

अनुक्रमणिका

क्र.	नाम	पेज स.
	पुरोवाक्	5
1.	वाचन नहीं पाचन भी	8
2.	मंगलाचरण क्यों कब कैसे ?	20
3.	सम्यग्ज्ञान के भेद	31
4.	हेय और उपादेय	39
5.	सद्गुरु कौन ?	50
6.	विद्वानों का कर्तव्य	59
7.	पंडित वही जो विवेकी हो	69
8.	संसार बंधन	80
9.	सच्चा शूरवीर	87
10.	कर्णांजलि का अमृत	101
11.	जीवंत जीवन	112
12.	संसार की अनित्यता	124
13.	सज्जन पे सौ-सौ चले	136
14.	नवग्रह का जनक-परिग्रह	146
15.	वचनों का आभूषण	155
16.	मन की तरंगें बांध ले	167
17.	समय का चेहरा	179
18.	वंदे सम्यक् आचरण	198
19.	सर्वत्र पूज्य-दयालु	210
20.	निष्प्रकंप शैलवत् सत्पुरुष	218
21.	चतुः कल्याण कलश	231

पुरोवाक्

अनादिकाल से जीव जन्म-मृत्यु रूपी तटों के मध्य पुण्य और पाप रूपी तरंगों पर संसार रूपी नदी में अवगाहन कर रहा है। सुख-दु:ख रूपी फल पाना इस जीव की अनादिकालीन अवस्था है। पुण्य रूपी तरंग से ऊपर उठता है तो सुख प्रतीत करता है पाप रूपी तरंग से गर्त में जाता है तो दु:ख का वेदन करता है। इस भवाम्बुधि से निकालने वाली, पार करने वाली, यदि नौका है तो वह है:- जिनशासन। जिनशासन की शरण लेने वाले, देव-शास्त्र-गुरू की शरण लेने वाले संसार में दीर्घकाल तक परिभ्रमण नहीं करते। परन्तु यह सब जाना व समझा जा सकता है, स्वाध्याय के माध्यम से। जिस प्रकार जल के माध्यम से मलिन वस्त्रों को स्वच्छ किया जाता है उसी प्रकार श्रुत के माध्यम से आत्मा पर जमी कर्मों की किट्ट कालिमा दूर हो जाती है। कहा भी है–

श्रुत संस्कृतं स्वमहसा स्वतत्त्व माप्नोति मानसं क्रमश:।
विहितोप परिष्वंगं शुद्ध्यति पयसा न किं वसनम्॥

श्रुत से संस्कारित मन क्रम से आत्मतेज के द्वारा आत्म तत्त्व को प्राप्त होता है। मलिन वस्त्र क्या जल से शुद्ध नहीं होता है ? अवश्य होता है।

जिस प्रकार दर्पण को साफ करते रहने से उस पर धूल नहीं जमती उसी प्रकार स्वाध्याय के माध्यम से बुद्धि निर्मल रहती है। स्वाध्याय के माध्यम से व्यक्ति अवगुणों या हिंसादि पापों का त्यागकर गुणों या पुण्यवर्द्धक शुभ क्रियाओं को ग्रहण कर सकता है। पं. दौलत राम जी ने छहढाला में कहा है–

बिन जाने ते दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये।

जब तक व्यक्ति दोषों को जानेगा नहीं, पापवर्द्धक क्रियाओं को जानेगा नहीं तो उन्हें कैसे त्यागेगा और गुणों को जब तक जानेगा नहीं तो उन्हें ग्रहण कैसे कर पाएगा।

यथा-यथा ज्ञानबलेन जीवो, जानाति तत्त्वं जिननाथदृष्टं।
तथा-तथा धर्ममति: प्रशस्ता, प्रजायते पाप विनाश शक्ता॥

जीव, ज्ञान के बल से जिनोक्त तत्त्व को जैसे-जैसे जानता है, वैसे-वैसे ही उसकी प्रशस्त तथा पापों को नाश करने में समर्थ धर्मबुद्धि उत्पन्न होती जाती है। इस प्रकार ज्ञान के माध्यम से ही व्यक्ति स्वात्मा को गुणाभूषणों से अलंकृत करता है। ज्ञान प्राणी की कषायों का शमन करने का सशक्त साधन है।

येन रागादयो दोषाः प्रणश्यन्ति द्रुतं सताम्।
संवेगाद्याः प्रवर्तन्ते गुणा ज्ञानं तदूर्जितम्॥

जिससे सत्पुरुषों के रागादिक दोष शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और संवेगादिक गुण प्रवृत्त होते हैं वह ज्ञान बलिष्ठ शक्तिशाली ज्ञान कहलाता है।

आचार्य अजित सेन सूरि जिनका उपाधिगत नाम वादीभसिंह सूरी अर्थात् जो वादी रूपी हाथियों को जीतने के लिए सिंह के समान थे, वे क्षत्र चूड़ामणि में कहते हैं–

तत्त्वज्ञान हि जीवानां लोकद्वये सुखावहम्।

निश्चय से दोनों लोक अर्थात् इह लोक और परलोक में यदि जीव को सुख प्रदान करने वाला है तो वह है–तत्त्वज्ञान।

तत्त्वज्ञान विहीनानां दुःखमेव हि शाश्वतम्।

तत्त्वज्ञान से विहीन प्राणी को सर्वत्र दुःख ही दुःख है। ज्ञान का अभ्यास करने से, श्रुत से आत्मा को संस्कारित करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रूपी त्रयरत्नों की प्राप्ति होती है। संसार का नाश होता है व निर्वाण सुख की प्राप्ति होती है।

भव विटपि समूलोन्मूलने मत्तदन्ती,
जडिमतिमिरनाशे पद्मिनी प्राणनाथः।
नयनमपरमेतद् विश्वतत्त्व प्रकाशे,
मरण हरिणबन्धे वागुरा ज्ञानमेव॥

ज्ञान ही, संसार रूपी वृक्ष को जड़ सहित उखाड़ने के लिए मदोन्मत्त हाथी है, मूर्खतारूप अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य है, समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने के लिए अद्वितीय नेत्र है और मरणरूपी मृग को बांधने के लिए बागुरापाश है।

सिद्धाः सेत्स्यन्ति सिद्ध्यन्ति ये ते स्वाध्यायतोध्रुवम्।
अतः स एव मोक्षस्य कारणं भववारणम्॥

अब तक जो सिद्ध हुए हैं, आगे सिद्ध होंगे और वर्तमान में सिद्ध हो रहे हैं वे निश्चित ही स्वाध्याय से हुए, होंगे और हो रहे हैं। अतः स्वाध्याय ही मोक्ष का कारण है और संसार का निवारण करने वाला है।

प्रस्तुत पुस्तक **''बोधि वृक्ष''** अजमेर चातुर्मास 2014 में परम पूज्य एलाचार्य गुरुदेव श्री वसुनन्दी जी महाराज द्वारा आचार्य श्री अमोघवर्ष द्वारा रचित प्रश्नोत्तर रत्नमालिका पर की गयी

प्रवचनों की माला है। गुरुवर श्री के जन-जन को अचंभित करने वाले धारा प्रवाह प्रवचनों का संकलन यहाँ प्राणी मात्र की कल्याण की भावना से किया गया है। 21 दिन की वाचना में जो वहाँ उपस्थित था उसने तो गुरुवर श्री की अमृतमयी वाणी से कर्णांजुलि को तृप्त किया परन्तु भिन्न-भिन्न स्थानों के अनेक लोग जो वंचित रहे उन तक भी यह सर्वकल्याणकारक वचन पहुँच सकें।

यदि इस पुस्तक के संकलन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें। हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ही इसका अध्ययन करें। यह कृति आप सभी स्वाध्याय प्रेमियों के अंतरंग को आलोकित करने वाली एवं कल्याणदायक होगी। इस कृति के संकलन में सहयोगी बा. ब्र. संस्तुति दीदी एवं पांडुलिपि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती, मुद्रण व प्रकाशक करने में सहयोगी सभी धर्मस्नेही जनों को पूज्य गुरुदेव का मंगलमय शुभाशीष। गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे। उनकी साधना सदा ही वर्द्धमान अवस्था को प्राप्त हो। शताधिक वर्षों तक स्व संयम व ज्ञान की सुगंधि से जन-जन को सुगंधित करते रहें तथा अपने लक्ष्य मोक्ष को शीघ्र ही प्राप्त करें। इन्हीं शुभभावनाओं के साथ परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित त्रिकाल नमोस्तु.....

जैनम् जयतु शासनम्
श्री शुभमिति वैसाख सुदी एकम्
वीर निर्वाण संवत् 2541
श्री दि. जैन मन्दिर
कृष्णा नगर, दिल्ली

ॐ ह्रीं नमः
गुरु पद पद्म भ्रमरः
मुनि प्रज्ञानंद
19 अप्रैल, रविवार 2015

(8)

वाचन नहीं पाचन भी

प्रणिपत्य वर्द्धमानं प्रश्नोत्तर रत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवंद्यं देवं देवाधिपं वीरम्॥

धर्म स्नेही सत् श्रद्धालु यहाँ पर उपस्थित सभी भव्यवर पुण्डरीक पुण्यात्मा महानुभाव !

यहाँ पर आप और हम ग्रन्थराज 'प्रश्नोत्तर रत्नमालिका'- 'श्रावकाचार' ग्रंथ की वाचना कर रहे हैं। स्वाध्याय का एक भेद है 'वाचना'। स्वाध्याय अर्थात् अपनी आत्मा का अध्ययन करना, वाचन करना, समझना, सुनना, चिंतवन करना, कंठस्थ करना और दूसरों को समझाने के लिये सहयोगी बनना ये स्वाध्याय कहलाता है। 'वाचना'-शब्द तीन अक्षर का है किन्तु यह तीन अक्षर का शब्द तीन लोक पर भारी है। ये वाचना इस बात का प्रतीक है कि वचन के माध्यम से किसी का कल्याण नहीं हो सकता और वचन के बिना भी किसी का कल्याण नहीं हो सकता। केवल वचन को पकड़ कर बैठ गये तब भी कल्याण नहीं और वचन को छोड़ दिया तब भी कल्याण नहीं। क्योंकि वचन का संग्रह तो एक अभव्य मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है और वचन के बिना कल्याण भी नहीं है ? बिना वचन के कभी देशना लब्धि बन नहीं सकती इसलिये 'आचार्य माणिक्यनंदी स्वामी जी' ने परिक्षामुख सूत्र में और अभिनव आचार्य धर्मकीर्ति जी ने न्याय दीपिका में कहा है कि कल्याणार्थ यदि कोई ज्ञान है तो वह श्रुत ज्ञान है।

श्रुत ज्ञान का आशय होता है–जिसे सुना जाये। जिसे सुना न जा सके ऐसा ज्ञान आत्मा का कल्याण नहीं कर सकता। इसलिये ज्ञान के जो पाँच भेद बताये हैं–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मन:पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान। इन पाँच ज्ञान में से पाँचों के पाँच ज्ञान स्वार्थी तो हैं किन्तु सिर्फ श्रुतज्ञान ही ऐसा है जो परार्थी भी है। ये पाँच ज्ञान स्वार्थी हैं इसका आशय है ये ज्ञान अपने प्रयोजन को सिद्ध करने वाले हैं। स्वार्थ का आशय है धारक का कल्याण करने वाले और परार्थ का आशय होता है–दूसरे के प्रयोजन को भी सिद्ध करने वाले।

मति ज्ञान के माध्यम से हम किसी का कल्याण नहीं कर सकते। मतिज्ञान का आशय क्या है- मन और इन्द्रिय के माध्यम से हम जो जानते हैं वह मति ज्ञान है किन्तु इसमें कोई अक्षर नहीं हैं। अक्षर ज्ञान श्रुतज्ञान होता है, तो मतिज्ञान के माध्यम से दूसरे का कल्याण नहीं किया जा सकता है। अवधिज्ञान के माध्यम से दूसरे का कल्याण नहीं किया जा सकता, मन:पर्यय ज्ञान के माध्यम से दूसरे का कल्याण नहीं किया जा सकता और केवल ज्ञान के माध्यम से भी दूसरे का कल्याण नहीं किया जा सकता। ये चार ज्ञान तो निपट स्वार्थी हैं, श्रुत ज्ञान ही एक ऐसा है जो उभय गुण-धर्म से युक्त है, उसके अंदर स्वार्थपना, परार्थपना दोनों है। यदि केवली भगवान का ज्ञान

उनके पास है वे तीन लोकों और अलोकाकाशों के समस्त गुण द्रव्य और पर्याय को जान रहे हैं तो उनके ज्ञान से हमें क्या लाभ ? यदि अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी, विदेह क्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थंकर सब जान रहे हैं, देख रहे हैं उससे हमें व भव्यजीवों को क्या लाभ ? भगवान महावीर स्वामी की वाणी सर्वांग से खिर रही है तो इससे हमें क्या लाभ, यदि मागधजाति के देव उसे भाषान्तर न करें तो।

''दश अष्टमहाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत''

18 महाभाषा और 700 लघु भाषा में वह दिव्य ध्वनि हो जाती है तब व्यक्ति के कर्ण गोचर हो पाती है तब वह मन के द्वारा ग्राह्य होती है। यदि ऐसे वर्गणायें खिरती रहें तो क्या समझोगे? वह दिव्यध्वनि जो ॐकार मय है। वह शब्दान्तर अक्षरान्तर न हो तो कोई कुछ भी नहीं समझ सकता। जब मागधजाति के देवों द्वारा वह 18 महाभाषा और 700 लघुभाषा रूप परिणत हो जाती है तब अपनी-अपनी भाषा में लोग समझ लेते हैं इन्द्रभूति आदि गणधर जब भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिर रही होती है तब भव्य जीवों की जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं। तो केवलज्ञान से हमें फायदा नहीं हैं, केवल ज्ञान तो मूक है, मौन ज्ञान है। अवधिज्ञान का कोई शास्त्र नहीं हैं, मन: पर्यय ज्ञान व केवल ज्ञान का भी कोई शास्त्र नहीं है। भगवान के केवलज्ञान, से हमारा कल्याण नहीं हमारा कल्याण यदि है तो श्रुत ज्ञान से है। यदि मतिज्ञान को श्रुत ज्ञान की पोशाक पहना दी जाये, उसे शब्दों में आकर हमसे कोई कहे तो हमारा कल्याण हो सकता है। अवधिज्ञानी मुनिमहाराज हमारे पूर्वभवों को शब्दों में बता दें तो हमारा कल्याण हो सकता है, मन: पर्ययज्ञानी मुनिराज हमारे मन की बातों को शब्दों में बता दें तब हम जान सकते हैं, तब हमारा कल्याण हो सकता है। केवल ज्ञान जब शब्द रूप होता है तब वह दूसरों का कल्याण करने में समर्थ होता है यदि शब्द से रहित है तो किसी का कल्याण नहीं कर सकता।

महानुभाव ! कल्याण का मार्ग प्रारंभ होता है तो श्रुतज्ञान से होता है। आप से पूछते हैं–श्रुतज्ञान व केवल ज्ञान में कौन सा ज्ञान बड़ा है–आप कहेंगे केवलज्ञान, आप विषय की अपेक्षा कह रहे हैं कि केवल ज्ञान बड़ा है किन्तु श्रुत ज्ञान बड़ा है, और श्रुत ज्ञान से भी बड़ा है मति ज्ञान। बाप और बेटे में बाप बड़ा होता है-केवलज्ञान बेटा है श्रुत ज्ञान बाप है और श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है इसलिये मतिज्ञान दादा है। केवलज्ञान मतिज्ञान का पोता हो गया। मतिज्ञान के बिना कभी श्रुतज्ञान नहीं होता और श्रुतज्ञान के बिना केवल ज्ञान नहीं होता। ऐसा तो हो सकता है कि मुनि महाराज को अवधिज्ञान व मन:पर्यय ज्ञान न हो वे सीधे श्रुत केवली से केवली बन जाए किन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि जो कोई श्रुत केवली न बनें सीधा केवली बन जाये। श्रुत केवली बने बिना तो वह शुक्ल ध्यान को प्रारंभ ही नहीं कर सकता। तो महानुभाव ! श्रुत ज्ञान

बड़ा है, केवल ज्ञान छोटा। श्रुत ज्ञान से ही कल्याण के मार्ग की प्राप्ति होती है, श्रुतज्ञान के माध्यम से ही संयम स्वीकार किया जाता है। श्रुत ज्ञानी ही अवधि ज्ञान को-देशावधि, परमावधि, सर्वावधि को प्राप्त करता है, श्रुत ज्ञानी ही मन:पर्यय ज्ञान को ऋजुमति-विपुलमति को प्राप्त करता है और श्रुत ज्ञानी ही बाद में केवल ज्ञानी बन जाता है। श्रुत ज्ञानी नहीं है तो मतिज्ञान को पूर्ण प्रकट नहीं कर सकता है श्रुतज्ञान के माध्यम से मतिज्ञान का क्षयोपशम भी बढ़ता है।

श्रुतज्ञान के माध्यम से वैराग्य की निष्पत्ति होती है, श्रुत ज्ञान के माध्यम से संयम उज्ज्वल निर्मल धवल और निष्कलंक होता है, श्रुत ज्ञान के माध्यम से चित्त स्थिर होता है और चित्त की स्थिरता ही ध्यान कहलाती है। **'अज्झयणमेव ही झाणं'** अध्ययन (अक्षर) ही ध्यान है।

''ज्ञान में चित्त का एकाग्र हो जाना ही ध्यान है।'' ज्ञान कौन सा श्रुतज्ञान। वह ध्यान बनता चला जाता है आगे वह केवल ज्ञान बन जाता है तब ध्यान उपचार से कहा जाता है अरिहंत परमेष्ठी के जीवन में जो अंतिम दो शुक्ल ध्यान होते हैं वे उपचार से कहे जाते हैं क्योंकि वहाँ चित्त का निरोध नहीं किया जाता, क्यों नहीं किया जाता ? क्यों कि वहाँ मन ही नहीं है क्षयोपशम भाव ही नष्ट हो गया इसलिये उपचार से, क्योंकि आचार्य उमास्वामी जी महाराज ने कहा-**'एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं'** ध्यान-चित्त का एकाग्र होना अन्य चिंताओं को रोक देना तो ध्यान होता है पर जब चित्त ही नहीं है तब किसको रोकोगे ? महानुभाव ! वहाँ पर दो ध्यान उपचार से हैं जो अघातिया कर्मों को नष्ट करते हैं।

यह ग्रंथ श्रुतज्ञान का पोषक है इससे ही हमारा कल्याण है, अवधिज्ञानी हमारे सामने हजारों भी हों और मौन लेकर बैठ जायें तो उन हजारों अवधिज्ञानियों से हमें क्या लाभ ? यदि मन: पर्ययज्ञानी हजारों भी है किन्तु मौन है तब हमें उनके मन:पर्यय ज्ञान से क्या लाभ ? यदि कितने ही तीर्थंकर हमारे सामने हों किन्तु उनकी ध्वनि अक्षरात्मक न हो तो हमें क्या लाभ ? हमें लाभ होता है तो शास्त्रों के माध्यम से इसलिये शास्त्र स्वाध्याय की परिपाटी अनादि काल से चली आ रही है ऐसा नहीं कि आज से है आज भी विदेहक्षेत्र में स्वाध्याय की परम्परा है वहाँ सदैव चौथा काल रहता है।

स्वाध्याय की परिपाटी सिर्फ और सिर्फ मनुष्यों के लिये है, देव लोग शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं करते उन्हें स्वाध्याय की आवश्यकता नहीं है, नारकी स्वाध्याय नहीं करते, उन्हें भी शास्त्र स्वाध्याय की आवश्यकता नहीं है, तिर्यंच भी शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं करते उन्हें भी आवश्यकता नहीं है यदि आवश्यकता मान भी ली जाये तो वे स्वाध्याय कर नहीं सकते।

आप सोचेंगे कहेंगे-शास्त्र तो उनके लिये बनाये हैं जो मूर्ख हैं, अल्पज्ञ हैं तो क्या मनुष्य ही सबसे ज्यादा मूर्ख है ? ये तीन गति के जीव बहुत विद्वान हो गये क्या ? अपेक्षा ये नहीं-दूसरी

लगाओ। यदि इस अपेक्षा से भी लगाओगे तो देव और नारकी अवधिज्ञानी होते हैं और हर मनुष्य के पास अवधि ज्ञान नहीं होता, फिर ये स्वाध्याय सिर्फ मनुष्यों के लिये ही क्यों ? इसलिये क्योंकि चारों गति में से सिर्फ मनुष्य गति ही ऐसी है जिसमें सकल संयम को स्वीकार किया जा सकता है, अन्य तीन गति के जीव सकल संयम को स्वीकार नहीं कर सकते, अन्य तीन गति के जीव निश्चय रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर सकते वे अपनी आत्मा का कल्याण करने में अक्षम हैं, असमर्थ हैं। एक देश संयम तिर्यंच को बता दिया है कि वह एकदेश संयम स्वीकार कर सकता है उसे प्राप्त कर ज्यादा से ज्यादा स्वर्ग में पहुँच जायेगा उसके आगे तो नहीं जा सकता। 16 स्वर्ग से ऊपर तो यथाजात दिगम्बर मुनि जायेंगे चाहे वह मिथ्यादृष्टि ही क्यों न हो तब भी वह द्रव्य लिंग को धारण करके 16वें स्वर्ग के ऊपर तक जा सकता है और भावलिंग को धारण करके कोई भी श्रावक देशव्रती भी बन जाये यहाँ तक कि ऐलक क्षुल्लक भी बन गया साल में छः महीने के उपवास भी करे इतनी तपस्या करने वाला, कि पहाड़ की चोटी पर भी तपस्या करे, सर्दी में नदी के किनारे और वर्षा ऋतु में वृक्ष के मूल पर तपस्या कर रहा है किन्तु ऐसा क्षुल्लक ऐलक भी ज्यादा से ज्यादा 16वें स्वर्ग तक जा सकता है इसके ऊपर नहीं। आर्यिका माताजी भी तपस्या करके ज्यादा से ज्यादा 16वें स्वर्ग तक जा सकती हैं इससे ऊपर नहीं। किन्तु मुनि यथाजात दिगम्बर द्रव्यलिंग अवस्था का ही प्रभाव देखो कि वह यदि अभव्य भी है और मुनि दीक्षा लेकर गहन साधना कर रहा है वह अभव्य भी शुक्ललेश्या के बल से, अपनी साधना के बल से वह मिथ्यादृष्टि भी नवमें गैवेयक तक जा सकता है 16वें स्वर्ग से भी पार। तो महानुभाव! संयम के बिना विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। संयम के बिना पूर्ण दर्शन की प्राप्ति नहीं होती, इसलिये संयम आवश्यक है और वह संयम सिर्फ और सिर्फ मनुष्य गति में संभव है। अन्यथा अन्य गति में संभव होता तो अन्य स्थान से भी मोक्ष की प्राप्ति हो जाती सिर्फ मनुष्य ही आत्मा का अनुभव कर सकता है, सिर्फ मनुष्य ही धर्मध्यान के अंतिम उपाय को प्राप्त कर सकता है, सिर्फ मनुष्य ही स्वरूपाचरण चारित्र को प्राप्त कर सकता है, वीतराग सम्यग्दर्शन, वीतराग चारित्र को प्राप्त कर सकता है, सिर्फ मनुष्य ही शुद्धोपयोग को, वह मनुष्य ही निर्विकल्प ध्यान को प्राप्त कर सकता है। यदि ये अवस्था कहीं और होतीं, यहाँ पर उपस्थित कोई विद्वान कह सकता है चौथे गुणस्थान में भी तो होता है स्वरूपाचरण चारित्र? चौथे गुणस्थाान में स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता, वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र होता है, स्वरूपाचरण नहीं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने चारित्र पाहुड़ में लिखा-**''जो सम्यक्त्व के रूप प्रवृत्ति होती है वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र है।''**

और संयमाचरण चारित्र छटवें गुणस्थान से प्रारम्भ होता है और देशसंयम पांचवें गुणस्थान से होता है और स्वरूपाचरण चारित्र का प्रारंभ 7वें गुणस्थान से होता है इसके पहले असंभव है।

दौलत राम जी की छहढाला तो आपने पढ़ी होगी वे लिखते हैं–

यों है सकल संयम चरित सुनिये स्वरूपाचरण अब।
जिस होत प्रकटे आपने निधि मिटै पर की प्रवृत्ति सब॥

कहाँ दशा प्राप्त होती है स्वरूपाचरण की ? सकल संयम की बात कह दी, मुनि महाराज के व्रतों को कह दिया 28 मूलगुण 34 उत्तर गुणों को कह दिया उसके बाद कह रहें 'अब स्वरूपाचरण सुनो' जो स्वरूपाचरण प्राप्त कर सकता है उसे ही तो स्वरूपाचरण की बात सुनायेंगे। यदि स्वरूपाचरण की प्राप्ति चौथे गुणस्थान में हो जाये तो नरक से, तिर्यंचगति से, देवगति से सभी स्थानों से मोक्ष हो जायेगा क्योंकि स्वरूपाचरण चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है। बिना स्वरूपाचरण के मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। तो महानुभाव!

कुछ विद्वानों ने क्वचित्-कदाचित् शब्द एक आध जगह डाल दिया है स्वरूपाचरण चारित्र चौथे गुणस्थान में होता है, तो उनसे यह भूल हो गयी आगम के परिपेक्ष में। सम्यक्दृष्टि को स्वरूपाचरण होता है यह दिया है, आध्यात्मिक ग्रंथों में कथन है इसका आशय दिया है, सम्यक्दृष्टि कौन ? जो आत्मा में लीन है सो सम्यक्दृष्टि और छटवें गुणस्थान में जो है सो बहिरात्मा। बात को बहुत अच्छे से सुनना।

वहाँ पर सम्यक्दृष्टि किसे कहा ?- जो अपनी आत्मा में लीन है जिसने निश्चय सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया, निश्चय सम्यक्ज्ञान को, सम्यक् चारित्र को प्राप्त कर लिया है वह सम्यक्दृष्टि है, और 6वें गुणस्थान वाले मुनिमहाराज को सम्यक्दृष्टि नहीं कहा बहिरात्मा कहा। ये आध्यात्मिक भाषा है और व्यवहार की भाषा में बहिरात्मा पहले गुणस्थान वाला है और अध्यात्म की भाषा में बहिरात्मा छटवें गुणस्थान तक है क्यों कि अभी आत्मा में लीन नहीं हैं। जिस समय निश्चय में लीन है 7वें से 14वें तक वे सब अंतरात्मा और परमात्मा की श्रेणी में आ जायेंगे, बारहवें तक अन्तरात्मा और 13, 14वें गुणस्थान में परमात्मा, उससे ऊपर निकल आत्मा (सिद्धालय में)।

तो ये सकल संयम कहाँ प्राप्त होता है छटवें गुणस्थान से और स्वरूपाचरण चारित्र 7वें के आगे, तो चौथे गुणस्थान में क्या है, 4 गुणस्थान में संयम नहीं है। क्योंकि एक देश पाँचवें में है और देश का देश होता नहीं इसलिये चौथे गुणस्थान का नाम है असंयत। जिसके पास संयम नहीं है सम्यक्दृष्टि तो है किन्तु अचारित्र वाला है जब चारित्र है ही नहीं तब स्वरूपाचरण कहाँ से आ गया ? जब एक अंश चारित्र भी पाँचवें गुणस्थान में आता है तब चौथे की बात ही क्या। और सकल चारित्र 6वें गुणस्थान में आता है और स्वरूपाचरण चारित्र तो सकल चारित्र के बाद आता है। जो 7वें से प्रारंभ होने वाला है वह 4थे में कहाँ से आ जायेगा। कुछ भ्रमित विद्वानों ने ये भी लिख दिया है कि आत्मा का अनुभव हुये बिना तो सम्यक्त्व की प्राप्ति ही नहीं होती। भईया!

यदि शुद्ध आत्मा का अनुभव चौथे गुणस्थान में हो जाये तो फिर क्या आवश्यकता उस सम्यक्दर्शन की, जब मिथ्यात्व में ही आत्मा की अनुभूति हो रही है तब फिर सम्यक्दर्शन की आवश्यकता क्या ? सम्यक्ज्ञान की आवश्यकता क्या, सम्यक् चारित्र की आवश्यकता क्या? और ऐसे आत्मा के अनुभव की बात कहें तो मिथ्यादृष्टि भी कह देगा कि मेरी आत्मा अलग है, शरीर अलग है, कहने में कुछ भी कह सकता है, अनुभव व्यक्ति को भी आता है कि कोई न कोई तो चीज इस शरीर में है जिसके रहते हुये यह शरीर जीवित है यदि निकल जाती है तो शरीर मर जाता है, अपनी आँखों के आगे मृत्यु देखता है इसीलिये वह जान सकता है किन्तु जो अनुभूति की बात है वह अनुभूति 'रत्नत्रय' के बिना असंभव है। तीन गुप्ति के धारक मुनिमहाराज को ही आत्मा का अनुभव हो सकता है, निर्विकल्प ध्यानी मुनि को ही आत्मा का अनुभव हो सकता है, इसके अलावा अन्य किसी को नहीं। शुद्ध आत्मा की अनुभूति तो सिर्फ उन्हीं को हो सकती है, जिन्होंने शुद्ध दशा की प्राप्ति के लिये कदम बढ़ा दिये। पाँच परमेष्ठी ही शुद्ध आत्मा की अनुभूति कर सकते हैं, इनमें से छटवां कोई नहीं कर सकता। सिद्ध परमेष्ठी शुद्ध आत्मा की अनुभूति में अनंतकाल के लिये डूब गये हैं, अरिहंत भी अनंतकाल के लिये डूब गये किन्तु शरीर से सहित हैं आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तीन परमेष्ठी किंचित् काल के लिये आत्मा की अनुभूति करते हैं जब आत्मा में लीन होते हैं तब, जब व्यवहार में आ जाते हैं उस समय वे भी शुद्ध आत्मा की अनुभूति नहीं कर रहे। अनुभव को प्राप्त करने के लिये पहले व्यवहार में तो आगे बढ़ें, पहले उस धर्म को व्यवहार में जानें फिर स्वीकार करें, पहले व्यवहार में देव, शास्त्र, गुरु के स्वरूप को समझें उसके बाद में श्रद्धान करें, सम्यग्ज्ञान के स्वरूप को, उसके अंगों को, उसके दोषों को, उसके अतिचारों को जानें फिर स्वीकार करें। पहले हम तेरह प्रकार के चारित्र को जानें उसके बाद चारित्र को अंगीकार करें। तो पहले व्यवहार में जानना होता है, उसके बाद निश्चय में। महानुभाव ! यहाँ पर ग्रंथ को प्रारंभ कर रहे हैं श्रुत ज्ञान की आवश्यकता है, बिना श्रुत ज्ञान के सम्यक्त्व की प्राप्ति भी नहीं होती। आपने जीवन में मंदिर जाना कब प्रारंभ किया? आपसे जब किसी ने कहा होगा बेटा मंदिर जाओ ये शब्द आपके कान में पड़े तब आपने मंदिर जाना शुरु किया वह आपके लिये उपदेश स्वरूप हुआ, आपको मंदिर जाकर बहुत खुशी हुयी। (8 वर्ष की आयु के बाद) जब पहली बार आपने देवदर्शन किये तब आपको लगा मुझे प्रतिदिन दर्शन करना चाहिये, इससे ही मेरी आत्मा का हित है। तो महानुभाव ! वे शब्द ही पहले माध्यम बनते हैं, बिना शब्दों के धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं बनती। देशना कार्य करती है संयम के लिये भी व्यक्ति शब्दों का सहारा लेता है पहले उपदेश दिया-अरे ! तुम तो मुनि बन सकते हो और तुम नहीं बन रहे तो ये तुम्हारी कमी है, अपना कल्याण करो और शब्द अंदर तक छू गये। अरे! जब मैं बन सकता हूँ तो क्यों नहीं बनूँ मुझे बन जाना चाहिये। जैसे-जैसे कहते गये वह श्रावक से आगे-आगे बढ़ता गया। बिना शब्दों के

वह कैसे आगे बढ़ता। उसने जब तक स्वयं तैरना नहीं सीखा है तब तक उसे शब्दों की नाव पनडुब्बी तो लेनी पड़ेगी। उसके बिना सीख नहीं सकता, वह सीखना भी चाहता है तब भी सिखाने वाले से कहेगा भाई तू मेरे साथ रह यदि कहीं मैं डूबने लगा तो कम से कम मेरा हाथ पकड़ कर निकाल तो लेगा, और जब वह निष्णात हो गया, अपने कार्य में निपुण हो गया अब कोई बात नहीं, कितना ही गहरा पानी हो कूद जाता है और तैरकर के पार हो जाता है। बड़ी-बड़ी नदियों को पार कर लिया तब पोखर, झील, तालाबों का क्या कहना ? अब तो निर्भीक हो गया अब उसे नाव के सहारे की आवश्यकता नहीं अब तो वह स्वयं दूसरों का सहारा बन गया। तो महानुभाव ! जब तक व्यक्ति निष्णात नहीं होता है तब तक उसे सहारे की, अवलम्बन की आवश्यकता होती है और श्रावक कभी भी निरालम्ब नहीं हो सकता, वह बिना सहारे के कभी धर्म ध्यान नहीं कर सकता चाहे किसी भी काल का श्रावक हो उसे देव शास्त्र गुरु या जिन धर्म का कोई सहारा लेना ही पड़ेगा तभी वह धर्म ध्यान कर सकता है, इन्हें छोड़कर कभी केवल अपनी आत्मा का सहारा लेकर के नहीं कर सकता। किन्तु हाँ जब मुनि महाराज आत्मध्यान में लीन होते हैं उस समय उनके सभी सहारे छूट जाते हैं उन्हें सहारा तो ठीक है अब उन्हें इशारे की भी आवश्यकता नहीं है, समझदार श्रावक को इशारा चाहिये, नासमझ को सहारा चाहिये, और जो ज्यादा समझदार हो गया वह तो किनारे पर बैठा है। तो महानुभाव ! इस ग्रंथ का वाचन ही नहीं पाचन करेंगे। और भोजन जो पच जाये वही तो औषधि रूप होता है, पौष्टिक होता है, रोग निरोधक होता है किन्तु जो भोजन नहीं पचता है वह रोग को पैदा करने वाला होता है और अन्य रोगों का संवर्धन करने वाला होता है इसलिये भोजन उतना ही करना जितना पच जाये, यदि ना पचे तो–**''अजीर्णं भोजनं विषं''** बिना पचा हुआ भोजन विष के समान है और पचा हुआ भोजन 'अमृतोपमा' है। विषय सौख्य विरेचना करने वाला है। कहा भी है-

पीयूष है विषय सौख्य विरेचना है।
पीते सुशीघ्र मिटती फिर वेदना है॥
भाई जरा जनम रोग निवारती है।
संजीवनी सुख करि जिन भारती है॥

जिनवाणी जितनी पच जाये उतनी ग्रहण कर लेना, ज्यादा न हो। जैसे-जिस बालक की सामर्थ्य बकरी का दूध पचाने की नहीं है उस बालक को यदि भैंस का दूध ओटाकर पिलाया जाये, रबड़ी, मावा आदि खिलाया जाये तो वह बीमार पड़ जायेगा, तो जो व्यक्ति बकरी का दूध नहीं पचा पा रहा है उसे भैंस का दूध न पिलाओ। वह अभी मूंग की दाल का पानी पीने लायक है। उसके लिये खिचड़ी ही लाभदायक है हाँ भाई तुम्हारी सामर्थ्य अभी ऐसी ही है। यदि तुम हलवा पूड़ी खा जाओगे तो बीमार पड़ जाओगे और एक बार व्यक्ति बीमार पड़ गया तो उसे ठीक करने

के लिये वैद्य उसे सबसे पहले रेचक औषधि देते हैं जिससे तुम्हारे पेट में जो जमा है वह सब बाहर निकल जाये। जब जठराग्नि उद्दीप्त होगी तब भूख कस कर लगेगी। ऐसी ही हमारी अग्नि भी उद्दीप्त होना चाहिये फिर जो कोई भी ज्ञान के शब्द मिलें उन सबको हजम करते चले जाओगे। जब तक अग्नि उद्दीप्त नहीं है तब तक तुम्हें जो कुछ भी मिलेगा वह अजीर्णकारक हो जायेगा। और अजीर्ण भोजन उतना हानिकारक नहीं है जितना ज्ञान का अजीर्णपना हानिकारक है। भोजन का अजीर्ण तो केवल एक ही भव को नष्ट कर सकता है किन्तु ज्ञान का अजीर्ण तो अनेक भवों को नष्ट करने में समर्थ है। इसीलिये ज्ञान का अजीर्ण खतरनाक है इसीलिये अज्ञानी व्यक्ति से कुज्ञानी व्यक्ति ज्यादा खतरनाक है।

महानुभाव ! जितना-जितना भी हम पढ़ते जायें उतनी-उतनी नम्र वृत्ति भी हमारे अंदर आती जाना चाहिये। वृक्ष पर ज्यों-ज्यों फल लगते जायें और वृक्ष न झुके ऐसा नहीं हो सकता फल आते ही शाखायें, उपशाखायें झुकने लगती हैं जितने ज्यादा फल आयेंगें उतना ज्यादा ही झुकता चला जायेगा। जब फल-फूल ही नहीं होंगे तब वह ठूंठ सा खड़ा रहेगा, ठूंठपना निष्फल की निशानी है, ठूंठपना निरपल्लव की, निर्पुष्प की निशानी है जिसमें पल्लव, कौपल, पुष्प और फल नहीं है वह समझो ठूंठ है। जो ठूंठ है वह कहे कि-मैं बहुत-बड़ा ज्ञानी हूँ तो समझो वह झूठ बोल रहा है। महानुभाव ! जीवन में चाहे और कुछ भी अजीर्ण हो जाये किन्तु जीवन में कभी ज्ञान का अजीर्ण न हो। यदि भोजन का अजीर्ण हो जाये तब खट्टे-खट्टे पदार्थ दिये जाते हैं और जिसे ज्ञान का अजीर्ण हो जाये उसे गुरु महाराज वैद्य बनकर खट्टी-कड़वी डाँट पिलाते हैं जब डांट पड़ती है तब उसके ज्ञान का अजीर्ण दूर होता है। कपड़ों को साफ करने के लिये गरम पानी, सर्फ लगाकर मुदरी से पीटना पड़ता है, सोने को भी पीट-पीट कर शुद्ध किया जाता है किन्तु सावधानी से, कहीं कपड़ा फट न जाये और सोना कहीं बिगड़ न जाये, जैसे कुम्हार छोटा सा मटका बनाता है पुनः अंदर हाथ पसार कर बाहर चोट मारता है, पीटता जाता है मटके का आकार बहुत बड़ा होता चला जाता है ऐसे ही गुरु शिष्य को पीटता तो है किन्तु अंदर हाथ पसार के बाहर मारे चोट, यदि अंदर से हाथ न पसारे यदि वात्सल्य की पुट न हो और डांटते रहें तो कहेगा कल से नहीं आयेंगे, और यदि वात्सल्य की पुट है तो कहेगा कोई बात नहीं माता-पिता भी तो डांटते हैं गुरु महाराज को हमसे क्या स्वार्थ है वे तो हमें प्यार से समझा रहे हैं हमारे अंदर की गंदगी जो पानी डालने से दूर नहीं हो रही है उसे गरम पानी से साफ करने का प्रयास कर रहे हैं। कहने का आशय यह है जब तक गुरु कुम्भकार की तरह काम न करें तब तक उस शिष्य को कुम्भ नहीं बना सकता। कुम्भ = कुं - पृथ्वी भ - जल।

जो पृथ्वी को जल धारण करने के योग्य बना दे, वह कुंभ होता है और यह करने का कार्य कुम्भकार्य है इसलिये उस व्यक्ति को कुंभकार कह देते हैं। महानुभाव ! पहले आवश्यकता है जो पहले से मन में गलत धारणायें बैठी हों उन्हें निकालने की। पहले हमें अपनी चित्त की भूमि पर

जो कांटे झांण-झंकर पड़े हैं उन्हें बीनकर के अलग करना पड़ेगा, तुम्हारे चित्त की भूमि से हम कषाय रूपी पत्थर उठाकर फेंकें, विषय वासना रूपी झाड़-झंकर उखाड़कर फेंके तो तुम्हें कपट नहीं होना चाहिये तुम्हारे भले के लिये ही करेंगे क्योंकि उन्हें उखाड़े बिना तुम्हारे चित्त की भूमि पर कोई अच्छा बीज बोया नहीं जा सकता। यदि बो दिया तो हमारा बीज बेकार जायेगा। हमारी चित्त की भूमि पर जो विषय कषाय रूपी झाड़-झंकर है उससे हमें मोह हो गया है अपने क्रोध मान माया लोभ से बहुत प्यार हो गया है इसे हम छोड़ना नहीं चाहते हैं हमें परत्व से ही अपनत्व का भाव हो गया है गुरु महाराज कहते हैं पहले पर को पर मान लो, स्व को स्व जान लो उसके बाद पर को छोड़ने में तुम्हें देर न लगेगी कष्ट नहीं होगा। महानुभाव कहने का आशय है गुरु शिष्य को पात्र बनाते हैं फिर वाचना कर ही शिक्षा के संस्कार देते हैं यदि पहले से ही दे दिये जायें तो बेकार आप कहेंगे कैसे ? जैसे-जिस बर्तन में आपने कल जामन डालकर दूध जमाया था, यदि पुनः आज दूध जमाना हो तो उसी बर्तन में नहीं पहले उसे मांजेगे साफ करेंगे तब ही जमायेंगे यदि साफ नहीं किया तो अच्छा भला दूध भी खराब हो जायेगा। जब आप जानते हो बर्तन की सफाई जरूरी है तभी उसमें अच्छे खाद्य पदार्थ रखोगे गंदे में नहीं ऐसे ही गुरु महाराज पहले आपके चित्त की शुद्धि करेंगे उसके बाद ही आपको ज्ञान का अमृत देंगे ज्ञान का अमृत है जहर थोड़े ही है जो कहीं भी डाल दो। अमृत को तो योग्य पात्र में ही दिया जायेगा यदि अमृत को अयोग्य पात्र में दिया जायेगा तो अमृत भी जहर बन जायेगा।

आज यहाँ मंगलाचरण किया अभी उसका अर्थ भी देखेंगे मंगलाचरण क्यों करना चाहिये उसका उद्देश्य क्या होता है ग्रंथ क्यों लिखना चाहिये ग्रंथ रचना का क्या उद्देश्य होता है ये सब जानना जरूरी है। इस प्रश्नोत्तर रत्नमाला ग्रंथ में 29 श्लोक हैं प्रथम मंगलाचरण, अंतिम काव्य प्रशस्ति रूप उपसंहार, मूल ग्रंथ 27 श्लोक प्रमाण मात्र 2+7 = 9 अखण्डता का प्रतीक है, ये आपके जीवन में अखण्ड सौभाग्य को देने वाला है, अखण्ड शाश्वत सम्पत्ति को देने वाला है, अखण्ड वैभव को देने वाला है, जो वैभव खण्ड-2 हो जाये उसे क्या प्राप्त करना, जिसे प्राप्त करके हमारा मन ही खण्डित हो जाये उसे क्या प्राप्त करना जिसे प्राप्त कर हम स्वयं ही अखण्ड हो जायें ऐसा वैभव ही हमारा वैभव हो सकता है।

मंगलाचरण क्यों कब कैसे, कौन करता है ये सभी बातें जानना आवश्यक है। सबसे पहले आचार्यों ने कहा छः बातों का ध्यान रखना चाहिये-

''ग्रंथ रचना में छः बातों का ध्यान''

''मंगल णिमित्त हेउ, परिमाणं णाम सह कत्तारं।
वागरिय छप्प पच्छा, वक्खाणो सत्तमाइरयो''॥

आचार्य महाराज ग्रंथ का व्याख्यान बाद में करें इससे पहले छः बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

१. मंगल–जब भी आचार्य महाराज ग्रंथ लिखना प्रारंभ करें सबसे पहले मंगलाचरण करें। यदि जिस ग्रंथ में मंगलाचरण न हो उस ग्रंथ का स्वाध्याय आर्य पुरुष करते ही नहीं हैं, जिस ग्रंथ में मंगलाचरण नहीं वह पढ़ने योग्य नहीं। अगली बात कही।

२. निमित्त–शास्त्र की रचना क्यों की कोई न कोई तो निमित्त बनाया होगा। जैसे शिवकुमार को निमित्त बनाया श्री जयसेन स्वामी ने, श्री पुष्पदंत भूतबलि ने जयपालित को निमित्त बनाया, श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने सोमश्रेष्ठी को निमित्त बनाया। किसी एक या अनेक व्यक्ति के निमित्त से ग्रंथ की रचना की जाती है। निमित्त अर्थात् शास्त्र का व्याख्यान क्यों कर रहे हैं।

३. हेतु–वह शास्त्र की रचना किसी के निमित्त से तो की, किन्तु उसका प्रयोजन क्या है ? अज्ञान की निवृत्ति और ज्ञान की प्राप्ति, अथवा हमारा हेतु आश्रव को रोकना, कर्म बन्ध की क्रिया से मुक्त होना, संवर तत्व को प्राप्त होना, कर्मों की निर्जरा करने व मोक्ष प्राप्त करने के लिये। अथवा आत्म कल्याण के लिये, अच्छे के लिये, बुरे से बचने के लिये, अशुभ से बचने शुभ को प्राप्त करने के लिये, असंयम से बचने व संयम को पाने के लिये, मिथ्यात्व से बचने सम्यक्त्व को पाने के लिये इत्यादि हेतु हो सकते हैं बिना हेतु के कोई कार्य नहीं किया जाता, जो अहेतु कार्य होता है उसे करने वाला वह मूर्ख व्यक्ति कहलाता है।

४. परिमाण–ग्रंथ कितना बड़ा लिखेंगें उसका परिमाण होना चाहिये। उसमें कितने अधिकार, कितने श्लोक, कितने सर्ग, कितने अनुच्छेद, कितने पर्व रहेंगे यह बात भी स्पष्ट करना जरूरी है।

५. नाम–उस ग्रंथ का नाम क्या है ? उसका कोई न कोई नाम तो होना चाहिये, बिना नाम के ग्रंथ नहीं होता। उस ग्रंथ को क्या संज्ञा दी है वह भी होना चाहिये।

६. कर्त्ता–जिन आचार्य महोदय ने ग्रंथ लिखा वे यह भी लिखें कि ग्रंथ किसने लिखा, तो कहेंगें-तीर्थंकरों ने कहा, गणधरों ने संग्रह किया, परम्परागत आचार्यों के माध्यम से मैंने सुना, शब्द रूप में गूंथ करके मैंने आपको दे दिया। भक्तामर में पढ़ते हैं-तं मानतुंगमवशा.....। प्रमाणिकता तो हो कैसे माने कि किसने लिखा है। तो उस कर्ता का नाम भी आना चाहिये।

तो ये छः बातें आवश्यक हैं ग्रंथ का व्याख्यान करने के पूर्व। यहाँ पर भी इस प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ग्रंथ की छः बातें जान लें–

मंगलाचरण–

प्रणिपत्य वर्द्धमानं प्रश्नोत्तर रत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवंद्यं देवं देवाधिपं वीरम्॥

णिमित्त–इस शास्त्र की वाचना आपके और हमारे दोनों के निमित्त से हो रही है।

हेतु–आपका और हमारा कल्याण हो, आपके व हमारे अज्ञान की निवृत्ति व ज्ञान की प्राप्ति हो। ज्ञान तो ऐसा है जितना बांटते जाओ उतना बढ़ता जाता है। तुम्हारा खजाना दान देने से घट जाता है किन्तु साधुओं का खजाना देते-देते बढ़ता चला जाता है।

अपूर्वकोटि कोषोयं विद्यते तव भारती।
व्ययतौवृत्त मायाति क्षय मायाति संचयात्॥
सरस्वती के भण्डार की बड़ी अपूरब बात,
ज्यों खर्चे, त्यों-त्यों बढ़े बिन खर्चे घट जात॥

अर्थात्–व्यय करने से वृद्धि व संचय करने से उस विद्या का क्षय हो जाता है, इसलिये जो कुछ भी है उसे देना भी चाहिये। तो महानुभाव ! इस ग्रंथ का हेतु है आपका भी कल्याण हमारा भी कल्याण।

जब हम स्वाध्याय के पूर्व भक्ति पढ़ते हैं या स्तुति करते हैं या वंदना करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं तो विज्ञप्ति में क्या पढ़ते हैं–''सकलकर्म क्षयार्थं'' सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने के लिये हम इस भक्ति का पाठ कर रहे हैं। उद्देश्य पहले रख दिया, अथवा ''विषय कषाय निवृत्ति अर्थं'' विषय कषायों से बचने के लिये अथवा ''आत्महितार्थं'' इत्यादि शब्द हैं।

परिमाण–इस प्रश्नोत्तर रत्नमाला में 29 काव्य है यह इसका परिमाण है।

नाम–इस ग्रंथ का नाम वही रखा जिस शैली में यह ग्रंथ कहा गया, प्रश्न-उत्तर एक ही साथ कहे गये प्रश्नोत्तर रूपी रत्नों की माला है। ''प्रश्नोत्तर रत्नमालिका'' इस ग्रंथ का नाम है जो कि लौकिक मालाओं से, बेचैनों से निकालकर पारमार्थिक चैन को देने वाला है।

कर्ता–''अमोघवर्ष महाराज''-राजा अमोघवर्ष राष्ट्र कूट नगर के राजा थे। वे गुर्जर प्रान्त जो राजस्थान और गुजरात की सीमा पर है वहाँ के राजा थे, ई. सन् 814 में इनका जन्म हुआ था और 878 में समाधि हुयी थी।

इनका गोविंद तृतीय नाम भी आता है। पहले गद्दी के हिसाब से नाम रखा जाता था चाहे मूल में कुछ भी हो किन्तु गद्दी पर बैठकर वही नाम दिया जाता है। ये अमोघवर्ष राजा एक निर्भीक प्रजा वत्सल, पराक्रमी राजा थे। 21 वर्ष की अवस्था में इन्होंने लाट देश के राजा धौल को अपने चाचा कर्कराज की सहायता से जीता और अपने राज्य का विस्तार किया। आचार्य जिनसेन स्वामी जो महापुराण के कर्ता हैं उनके ये शिष्य थे और आचार्य वीरसेन स्वामी के प्रशिष्य थे। 9-10वीं शताब्दी में आचार्य अजितसेन, आ. वीरसेन, आ. नेमिचन्द, और जिनसेन आचार्य आदि 6-7

आचार्य उस समय बहुत प्रभावी आचार्य रहे। वे ऐसे स्वयंभू महानज्ञानी ध्यानी नैय्यायिक, वाग्मीक आचार्य थे कि उनकी बात का कोई सानी नहीं था, उनके सामने कैसा भी वादी-प्रतिवादी आ जाये उसे क्षणार्द्ध में निरुत्तर कर देते थे, इतना ही नहीं उन्होंने जगह-जगह जाकर राजाओं की सभा में जिनधर्म की भेरी बजाई, और जिनधर्म का संरक्षण, संवर्धन कर महती प्रभावना की। जब अमोघवर्ष राजा राज्य अवस्था को त्याग वैराग्य भाव को प्राप्त हुए तब उन्होंने यह प्रश्नोत्तर रत्नमाला ग्रंथ को लिखा।

छोटी उम्र में ध्रुव नामक राजा का राज्य जो बहुत विशाल था उस को अमोघवर्ष राजा ने युद्ध में परास्त कर विजय प्राप्त की। पुनः इसके बाद पिता ने राज्याभिषेक किया, उन्होंने अपने राज्य का विस्तार किया। अमोघवर्ष राजा ने आ. जिनसेन स्वामी के निर्देशन में अपने राज्य की वृद्धि कर संचालन किया और कई जिनालयों की स्थापना की तथा बाद में दीक्षा संयम को स्वीकार कर अपनी आत्मा रूपी राज्य का संरक्षण व संवर्धन कर कल्याण के पथिक बने। उन ऋषिराज का यह ग्रंथ है।

(20)

मंगलाचरण क्यों कब कैसे ?

महानुभाव !

अपने सामने ग्रन्थराज है ''प्रश्नोत्तर रत्नमालिका''। जीवन में जब-जब भी जिज्ञासा पैदा होती है तब-तब व्यक्ति उत्तर की खोज करता है। आचार्य अमोघवर्ष की यह पद्धति बड़ी अच्छी लगी, यह शैली ग्रंथरचना की बहुत उत्तम दिखी कि पहले व्यक्ति के जीवन में जिज्ञासा पैदा की फिर उसके बाद में समाधान दिया, उस काल में इसी शैली में प्राय:कर आचार्यों ने ग्रंथों का प्रणयन किया। आचार्य वीरसेन स्वामी जो कलिकाल सर्वज्ञ कहे जाते हैं, जो धवला, जयधवला जैसे महान ग्रंथों के टीकाकार रहे षटखण्डागम, कषायपाहुड़ महान ग्रंथों के टीकाकार उन्होंने स्वयं ही जिज्ञासा उत्पन्न की है स्वयं ही समाधान दिया है, आचार्य अकलंक स्वामी जो दिग्गज वाग्मीक वादीभ केसरी थे उन्होंने भी इस प्रश्नोत्तर की शैली में कई जगह तत्वार्थ राजवार्तिक में, आचार्य विद्यानंद जी स्वामी ने श्लोक वार्तिक में इसी शैली में अपनी टीका को आगे बढ़ाया है। महानुभाव !

जब कोई बात विधिपरक कही जाती है तो वह अंदर तक नहीं उतर पाती जब किसी बात को प्रश्न के रूप में कहा जाता है क्यों क्या कब कैसे ये प्रश्न आते ही चेतना की समग्र शक्ति केन्द्रित हो जाती है, उस प्रश्न का समाधान खोजने के लिये। उस शिष्य के मन में पहले प्रश्न देना चाहिये जिससे वह उत्तर पाने के लिये लालायित हो उठे, बिना प्रश्न किये उत्तर देने से वह उत्तर शिष्य को याद नहीं रहता इसलिये आज के पाठ्यक्रम में भी प्रश्नोत्तर शैली है। जिससे याद जल्दी होता है। प्रश्न अर्थात् 'Challenge' और उत्तर-उस 'Challenge' को स्वीकार करके उस किले पर विजय प्राप्त करना। तो महानुभाव ! सामान्य शैली तो वह कहलाती है कि समतल स्थान पर चलना, या किसी नदी का समधारा में बहना। किन्तु प्रश्नोत्तर की शैली कहलाती है, कि कोई नदी को बलपूर्वक रोके और नदी अपने वेग से उस बांध को तोड़कर आगे बह जाये, ऐसे ही व्यक्ति के जीवन में जब प्रश्न पैदा होता है तब व्यक्ति उत्तर को खोजता है और जब प्रश्न ही नहीं तब उत्तर कहाँ से खोजेगा। आवश्यकता अविष्कार की जननी है। माँ तब दूध पिलाती है जब बालक रोता है। जब तक सो रहा है, तब तक दो-चार काम निपटाने की सोचती है यदि उठ गया तो सारे काम छोड़कर पहले बालक की आवश्यकता की पूर्ति करती है। ऐसे ही जब जीवन में कोई शंका खड़ी हो जाती है, प्रश्न खड़ा हो जाता है, यदि यक्ष प्रश्न है तो उसका समाधान भी महायक्ष के रूप में खोजना पड़ता है। प्रश्न यदि सामान्य होता है तब उत्तर भी सामान्य दिये जाते है प्रश्न जब जटिल Complicated होते हैं तो उत्तर उतने ही सरल होने चाहिए। जो व्यक्ति के अंदर उतरते ही चले जायें। सरल रेखा की तरह से उस जल प्रपात की तरह से हो जो अंदर तक पहुँचता चला जाये। उत्तर का बहाव और तेज ऐसा होना चाहिये कि जो देखने में सरल लगे किन्तु मार

उसकी बहुत गहरी हो। पानी बड़ा सरल है, लचीला है, कोमल है इससे ज्यादा लचीला कोमल कोई नहीं किन्तु वह पानी सतत बहता रहता है तो पाषाण खण्ड में भी छेद कर देता है, एक-एक बूंद यदि किसी चट्टान पर गिरती है तो चट्टान में छेद हो जाता है। अर्थात् उत्तर ऐसा होना चाहिये जल प्रपात की तरह से देखने में बहुत सरल और सहज किन्तु अपने अंदर असर दिखाने वाला हो उत्तर का जलप्रपात जब चेतना पर गिरेगा तो चेतना पर जमी हुयी कषायों की परतों में छेद हो जायेगा और चेतना के अंदर की चट्टानें, रजकण धुल जायेंगें हमारी चेतना उज्ज्वल, निर्मल, धवल हो जायेगी। हमारी चेतना पर कर्मों के सघन बादल छाए हुये हैं तो समाधान ऐसा होना चाहिये शीतल समीर की तरह से एक क्षण के लिये भी बादल हट गये तो सूर्य का प्रताप व प्रकाश एक साथ ज्ञात होगा। तो महानुभाव ! इस प्रश्नोत्तर शैली में यहाँ ग्रंथ को प्रारंभ किया जा रहा है। यह ग्रंथ वर्तमान में बहुत ही उपयोगी है क्योंकि वर्तमान समय में ऐसा आधुनिक युग चल रहा है जिसमें भौतिक विकास चरम सीमा पर है आज आध्यात्मिक विकास बहुत मंद गति से हो रहा है और भौतिक विकास तो इतना कि आज योगी के मन में भी भौतिकता की बातें आ जाती हैं, भौतिकवादियों के मन में आध्यात्मिकता की बातें आयें अथवा न आयें किन्तु कई बार योगी तक के मन में विचार आ जाता है इसका आशय यह है कि भौतिकता का विकास बहुत ज्यादा है। जैसे अग्नि की लपटे बहुत ऊँची जायें तो अंधकार आस-पास में टिक नहीं पाता है उसी प्रकार से वर्तमान काल का ये प्रभाव है कि आज प्रश्नोत्तर की शैली में ही समझाया जा सकता है। इसीलिये आज वर्तमान काल में प्रतियोगितायें निकलती हैं, युवाओं को भी यदि सामान्य प्रवचन दे दिये जायें तो वे समझते नहीं उनको एक बात को पुष्ट करने के लिये कई तर्क व उदाहरण देने पड़ते हैं। एक बात को बताने के लिये नाना ग्रंथों के संदर्भ भी बताने पड़ते हैं तब व्यक्ति उस बात को स्वीकार कर पाता है पहले जमाना वह था 'बाबा वाक्य प्रमाणं' जो कह दिया ठीक है अब तो वह ऐसे बात को स्वीकार नहीं करता। 3-4 साल का बालक भी पापा से कहता है पापा हम मंदिर क्यों जाते हैं पहले क्यों लगा दिया, ये नहीं कहा कि पापा हमें मंदिर आना चाहिये। हम रात में भोजन क्यों नहीं करते 'ऐसा क्यों' यह शब्द जिज्ञासा प्रकट करता है जब जिज्ञासा का समाधान मिल जाता है तब उसकी गति आगे बढ़ जाती है। महानुभाव ! इसलिये वर्तमान की शैली प्रश्न-उत्तर की शैली है, वर्तमान में प्राय:कर के कोई व्यक्ति सीधी-सीधी बात नहीं समझता पहले वैद्य रोगी को यह बताये कि तुम्हें अमुक रोग है, ऐसे हुआ, इस रोग का निदान ये है इस औषधि का सेवन करना पड़ेगा तब वह औषधि खायेगा। वैद्य ने कहा आम का मौसम है आम खाओ तो वह कहेगा नहीं पहले ये बताओ आम का क्या लाभ है आम अभी क्यों खाना चाहिये आगे-पीछे क्यों नहीं मौसमी फल में वे तत्त्व होते हैं जो उस समय शरीर में रोग निरोधक क्षमता उत्पन्न करते है ऐसा समझाने पर उसे समझ आ जाता है तो पहले जिज्ञासा पैदा करो फिर समाधान दो। यदि

वैद्य सामान्यतः कह दे कि धूप में न बैठो तो क्यों न बैठो ? वह इसलिये कि जब बादल होते हैं बदरी की धूप होती है वह चुभने वाली होती है और उसके माध्यम से हमारे शरीर में ऐसे बैक्टीरिया होते हैं जो शरीर के लिये लाभदायक हैं वह भी नष्ट हो जाते हैं इसलिये व्यक्ति के शरीर का तापक्रम बढ़ सकता है बुखार आ सकता है, धूप में बैठने से, मिश्र प्रकृति होने से स्वास्थ्य खराब हो सकता है, इतने तर्क पूर्वक बात समझाओ तब व्यक्ति को बात समझ में आती है। आज के जमाने में बेटा भी श्रद्धा से अपने पिता के चरणों में नतमस्तक नहीं होता, युक्ति और तर्क के माध्यम से पहले समझ ले कि पिता हमसे किसी मायने में श्रेष्ठ हैं तो वह माथा झुकायेगा यदि श्रेष्ठ नहीं है तो माथा झुकाने को तैयार नहीं हैं। महानुभाव ! एक बार झुक गया तो समझाया जा सकता है कि बेटा यह धर्म है, संस्कृति है वह झुकता चला जायेगा, किन्तु पहले तुम्हें अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करनी पड़ेगी आज जमाना ये है कि बच्चा पहले श्रेष्ठता देखता है किसी भी मामले में हो उसी बात से झुकेगा उनके पास धन वैभव है, तो धन वैभव के लिये झुकेगा उनके पास धर्म है तो धर्म के लिये झुकेगा, संस्कार हैं तो संस्कार के लिये झुकेगा, ज्ञान है तो ज्ञान के लिये, कोई न कोई श्रेष्ठता तो होनी चाहिये यदि श्रेष्ठता नहीं है तो कहेगा मैं तुम्हारे सामने क्यों झुकूँ। तो महानुभाव ! आज का युग युक्ति और तर्क का युग है सिर्फ आत्मबल से आज व्यक्ति का समाधान नहीं किया जा सकता, एक व्यक्ति आगम का कोई प्रमाण देता है तब दूसरा व्यक्ति खड़ा हो उठता है ऐसा भी तो हो सकता है, ऐसा भी तो लिखा है चार प्रकार के प्रमाण मिलते हैं उन चार प्रकार की बातों को समझाना पड़ता है। कौन सी बात स्वभाव से युक्त है और कौन सी बात अन्य किसी से। यदि शंकाकार को उत्तर ऐसा मिल जाये कि वह न तो आगे बढ़ पाये और न पीछे मुड़ पाये, न दांये बांये देख पाये बस वहीं पर शिकंजे में कस के रह गया वह कहता है बस मान गया मैं तो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ तब तो व्यक्ति स्वीकार करता है अन्यथा शंकाकार ने समाधान कर्ता के तर्कों को काट दिया और समाधान कर्ता यदि सही उत्तर नहीं दे पाता है तो शंकाकार कहता है अब तुम मुझे प्रणाम करो मैं क्यों करू ? तो महानुभाव ! आज की शैली प्रश्नोत्तर की शैली है और जब तक सामने वाला व्यक्ति संतुष्ट नहीं होता है तब तक धर्म ग्रहण नहीं करता। धर्म दबाव से नहीं होता, धर्म डर से नहीं होता धर्म कोई शक्ति का प्रयोग करने से नहीं होता, धर्म तो तब होता है जब अन्तर आत्मा में धर्म की प्यास जगे, जब धर्म के लिये प्यास जाग्रत हो जाती है तब धर्म का अमृत कहीं भी मिलेगा वह पीने के लिये दौड़ कर जायेगा। परमपूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी जब गृहस्थ अवस्था में थे, जब ज्ञान की प्यास जगी तब छः मील पैदल चल कर जाते थे स्वाध्याय सुनने के लिये, नदी तैर कर पार कर जाते थे सुनने के लिये। 6 मील जाना, 6 मील आना प्यास कहलाती है। एक ऋषि थे 'कणादऋषि' वे ज्ञान के प्रति इतने जिज्ञासु और पिपासु थे कि शास्त्र को कभी छोड़ते ही नहीं थे चलते-चलते भी हाथ में पुस्तक लेकर चलते

चले जाते थे, एक बार जंगल से चले जा रहे थे उनका पैर फिसल गया नीचे गड्ढे में गिर गये चोट भी आयी किन्तु पुस्तक हाथ से नहीं छोड़ी तब किसी वन देवता ने आकर प्रणाम किया कहा-महानुभाव ! हम आपके इस स्वाध्याय प्रेम से बड़े प्रभावित हैं बोलिये आप क्या चाहते हैं ऋषि ने कहा-वास्तव में यदि तू कोई देव है और वरदान देने के लिये आया है और दे सकता है तो बस एक काम कर-दो आँख मेरे पैरों में लगा दे जब मैं चलूँ तब मैं पैरों की आँखों से देख लूँ और ऊपर की आँखों से पढ़ता रहूँ। तब से उन कणाद ऋषि का नाम हो गया 'अक्षपाद'। पैरों में आँख लगी कि नहीं ये बात तो पता नहीं किन्तु उन्होंने माँगा जरूर था कि मेरे पैरों में आँख लगा दो। और उनका नाम अक्षपाद पड़ा।

एक माँ ने अपने बेटे को पैसे दिये बेटा मेले में जाकर मिठाई खा लेना, बालक पूरा मेला घूमकर के आ गया, मेले में से कुछ भी नहीं खरीदा अन्त में एक पुस्तक खरीदकर के आ गया। माँ ने पूछा-बेटा-मिठाई खाई थी हाँ माँ मैं ऐसी मिठाई लाया हूँ जो मैंने वहाँ भी खाई, घर पर भी खाऊँगा उसे आप भी खाओगे वह तो कई वर्षों तक खाते रहेंगे, माँ समझी नहीं दो आने की ऐसी कौन सी मिठाई है जो वर्षों तक खायेंगे ? उसने शर्ट में से पुस्तक निकाल कर दिखा दी माँ ये धर्म की पुस्तक ले आया, माँ इसमें ऐसी मिठाई है जिसे भवों-भवों तक खाया जा सकता है।

महानुभाव ! जब ऐसी प्यास मन में जगती है तब नि:संदेह व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करने के लिये दौड़ता है, वह ज्ञान को प्राप्त करने के लिये प्यासे मृग की तरह दौड़ता है जैसे प्यासा मृग नदी किनारे दौड़ता चला जाता है मृग मरीचिका को भी पानी समझ करके वहाँ पहुँच जाता है बाद में देखता है कि ये पानी नहीं मृग मरीचिका है लौटकर आ जाता है ऐसे ही तुम्हारे मन में भी जब ज्ञान की प्यास जगेगी तुम जाओगे, घर वाले रोकेंगे, परिस्थितियाँ रोकेंगी पर तुम न मानोगे कोई किसी को रोक नहीं सकता जब प्यास तीव्र हो जाती है तब व्यक्ति सब बंधनों को तोड़कर के आगे बढ़ जाता है। आत्मा में ऐसी शक्ति है कि आत्मा अपने प्रत्येक मनोभाव की पूर्ति कर सकता है और समय आने पर कर ही लेता है। किन्तु बात ये है हमारे मन में वह तीव्र प्यास, वह तीव्र जिज्ञासा पैदा तो हो उस प्यास को पैदा करने के लिये आचार्य महोदय ने इस प्रश्नोत्तर शैली को रखा है।

अब सबसे पहले-मंगल क्या, मंगल क्यों ? मंगल कब, मंगल कौन और मंगल कैसे ? यह देखते हैं।

''**मंगलाचरण**'' इसकी आवश्यकता क्यों ? क्या इसके बिना काम नहीं चलेगा ? हाँ नहीं चलेगा, यह भी आवश्यक है इसके बिना भी कार्य प्रारंभ नहीं होता। जो मंगल चीज है उसके लिये मंगलाचरण करना जरूरी है इतना बड़ा ग्रंथ लिखा तो सबसे पहले मंगलाचरण। कोई छोटा हो या

बड़ा ग्रंथ पहले मंगलाचरण क्यों ? इससे क्या होता है। तो पहले हम मंगल को समझ लें कि मंगल है क्या ?

''आचार्य यतिवृषभ स्वामी'' जो कि आज से 2000 वर्ष पहले हुये **''तिलोएपण्णत्ति''** में उन्होंने मंगल की परिभाषा लिखी है-**''मंगलसुखं लाल्यति इति मंगल''**

जो उत्कृष्ट सुख को प्रदान कराये वह मंगल कहलाता है। अथवा

मंग + गल = मं-पाप गल-गलाये-जो पाप को गलाये।

मंग = सुख, ल = लाये-जो सुख को लाये वह मंगल कहलाता है।

भगवान का नाम कैसा है-''मंगल भवन अमंगलहारी'' वह मंगल का सदन है, मंगल का खजाना है अमंगल का हरण करने वाला है। तो मंगल-

''जो पापों को गलाये, उत्तम सुख में पहुँचाये उसे मंगल कहते हैं।''

मंगल के लिये आचार्य यतिवृषभ स्वामी जी ने अनेक शब्द दिये हैं-

पुण्णं पूद पवित्ता पसत्थ सिव खेम कल्लाणा।
सुह सोक्खादी सव्वे णिद्दिट्ठा मंगलस्स पज्जाया॥

(ति.पण्ण.)

मंगल के पर्यायवाची नाम-पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, भद्र, शिव, क्षेम, कल्याण, सुख, शुभ, सौख्य आदि सभी मंगल कहलाते हैं।

मंगल के भेद भी किये। **द्रव्य मंगल और भाव मंगल**। जो मंगल की द्रव्य क्रिया की जाती है वह द्रव्य मंगल और भावनाओं में जो मंगल आता है वह भाव मंगल। अथवा दूसरे प्रकार से **पारमार्थिक मंगल, द्रव्यार्थिकमंगल** परमार्थ में आप देखते हैं। मंगल करने के लिये णमोकार मंत्र पढ़ते हैं, लौकिकता में आप देखते हैं शुभ शगुन आदि बनाते हैं जैसे-पीले चावल आदि से, यदि आप यात्रा पर जा रहे हैं और कोई सौभाग्यवती स्त्री जल का/दूध का भरा कलश लेकर सामने से निकल जाये तो कहते हैं शुभ शगुन हो गया, सजे हुये घोड़े, हाथी इत्यादि मंगल माने जाते हैं। मांगलिक कार्यों में स्वस्तिक आदि पूरे जाते हैं तो ये लौकिक मंगल कहलाते हैं। पारमार्थिक मंगल में पंचपरमेष्ठी का जयकारा, उनका ध्यान, उनकी पूजा अर्चना विधान सब पारमार्थिक मंगल में आता है। सबसे बड़ा पारमार्थिक मंगल है अपने परिणामों को पवित्र बनाना। मंगल के आचार्य वीर सेन स्वामी ने छः भेद किये नाम, स्थापना, काल, क्षेत्र, द्रव्य, भाव।

१. नाममंगल-भगवान, तीर्थंकर, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि परमेष्ठियों का नाम लेना नाम मंगल है। वैदिक ग्रंथ में भी दिया है-

अष्ट षष्ठीसु तीर्थेषु यात्राया यत् फलं भवेत्
श्री आदिनाथ देवस्य, स्मरण तत् फलं भवेत्।

68 तीर्थक्षेत्रों की वंदना का जो फल मिलता है वह फल मात्र आदिनाथ भगवान का नाम श्रद्धा से लेने से प्राप्त हो जाता है, उसे लेने मात्र से सैकड़ों वर्षों के नहीं सैकड़ों जन्मों के पापों को क्षय किया जा सकता है।

पंचपरमेष्ठी के नाम लेने मात्र से अनेक पापों का नाश होता है।

श्वेताम्बर ग्रंथों में कहा है-

ॐ मात्र का उच्चारण करने से-5 सागर तक के पापों का नाश हो जाता है।

'णमो अरिहंताणं' मात्र इतने पद के उच्चारण से 50 सागर तक के पापों का क्षय

और पूरे महामंत्र का श्रद्धा से उच्चारण किया जाये तो 500 सागर तक भोगे जाने वाले पापों का नाश किया जा सकता है।

२. स्थापना मंगल–मंगल की जहाँ स्थापना की है चाहे कोई जिनबिंब है, चाहे कोई मंदिर है, चाहे कोई भी कलश है जहाँ मंगल की स्थापना की है वह स्थापना मंगल कहलाता है। एक नाम जिन होता है जिस मूर्ति में भगवान की स्थापना कर दी या चावल में स्थापना कर दी वह स्थापना मंगल हो गया।

३. काल मंगल–जिस काल में भगवान के कल्याणक हुये, अथवा पर्व के दिन दशलक्षण, अष्टाह्निका पर्व अष्टमी चतुर्दशी पर्व सभी काल मंगल कहलाते हैं।

४. क्षेत्र मंगल–जहाँ से भगवान मोक्ष गये, जहाँ भगवान के कल्याणक हुये, जहाँ धर्म का कोई आयतन है, मंदिर आदि क्षेत्र मंगल कहलाते हैं।

५. द्रव्य मंगल–कोई चित्र जिसे देखकर आपके परिणाम शुभ हो जायें वह द्रव्य मंगल है। चाहे वह मानस्तंभ है, मंदिर है, जिनवाणी है चाहे वह कोई व्यक्ति ही क्यों न हो जिसे देखकर आपके परिणाम मंगल, प्रशस्त हो जाते है वह द्रव्य मंगल है। पूजन की सामग्री आपके सामने रखी है रत्नों के थाल भरे है स्वर्णचांदी के बर्तनों से जब भगवान की पूजा करें तो वह द्रव्य भी हमारे परिणामों में विशुद्धि लाने वाला होता है कहीं लोहे के बर्तन हों चावल भी टूटे फूटे हों, कपड़े भी फटे पुराने हों तो परिणाम खराब हो जायेंगे पूजा का भाव नहीं आयेगा।

जिस द्रव्य को देखकर मन खिल जाये वह द्रव्य सार्थक है। वह द्रव्यमंगल है।

६. भाव मंगल–भगवान की भक्ति में लीन होकर, गा बजाकर तल्लीन व्यक्ति जिसके स्वयं के परिणाम तो निर्मल हो ही रहे हैं जिसे देखकर मंदिर में आये अन्य व्यक्तियों का भी मन निर्मल

हो जाये, कदम थम जायें, मन भक्ति में अनुरक्त हो जाये वह भाव मंगल है। एक व्यक्ति निर्मल परिणामों से आहार ले रहा है तो देने वाले के परिणाम भी अच्छे होते हैं। विशुद्ध परिणामों के साथ हुयी क्रिया भाव मंगल है। आप मुनिराज का आहार देखने क्यों जाते हो ? आप भी तो भोजन करते हो ? पर साधु का आहार देखने से पुण्य का आश्रव होता है कितनी समता से वे आहार करते हैं जिन परिणामों का प्रभाव ऐसा पड़ता है कि सामने वाले के परिणाम भी निर्मल हो जाते हैं साधु यदि समता से आहार ले रहा है तो कई श्रावकों की चर्या भी बदल जाती है वे कहते हैं महाराज श्री आपको देखकर हमें लगता है गड्ढा ही तो भरना है समता पूर्वक लो चाहे नमक हो न हो जैसी भी आ जाये हम हूँ-हाँ नहीं करते। मुस्कराते हुये समता पूर्वक ग्रहण करते हैं। तो भाव मंगल का आशय है हमारे परिणामों का निर्मल हो जाना। हम पूज्य पुरुषों के पास इसलिये जाते हैं कि उनके निर्मल परिणामों का असर हम पर भी हो। यह सब भाव मंगल है।

ये सब बात तो ठीक है किन्तु **मंगलाचरण करना क्यों** चाहिये ?

''नास्तिक्य परिहारस्तु शिष्टाचार परिपालनम्।
निर्विघ्न पुण्य वाप्तिस्य शास्त्रादौ तेन संस्तुति॥''

1. नास्तिकता का परिहार, 2. शिष्टाचार का परिपालन, 3. कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिये, 4. व पुण्य की प्राप्ति के लिये ये चार कारण हैं मंगलाचरण करने के।

१. नास्तिकता का परिहार–मंगलाचरण वही व्यक्ति कर सकता है जो व्यक्ति आस्तिक होता है, नास्तिक जीव अपने जीवन में कभी मंगलाचरण नहीं करते।

मंगल + आचरण = मंगलाचरण

जिसका आचरण मंगलमय है पापों को गलाने वाला है वह मंगलाचरण है, केवल माइक पर आकर चार पंक्ति बोल दी इतना ही मंगलाचरण नहीं होता है, अपने जीवन में अच्छे आचरण को धारण कर लेना सच्चा मंगलाचरण है। जीवन में किसी भी अभक्ष्य वस्तु का त्याग कर दिया, छोटा सा नियम भी ले लिया तो आपने अपने जीवन में मंगल आचरण धारण कर लिया मंगलाचरण कर लिया, और मंगलाचरण बोलते-बोलते भी आचरण की प्राप्ति होती है इसलिये शब्दों से उपचार में मंगलाचरण कह दिया तो महानुभाव !

मंगलाचरण-परम इष्ट देवता, परमात्मा के नमस्कार को, नमस्कार करने रूप त्रियोग की क्रिया मंगल आचरण ही 'मंगलाचरण' है।

मंगलाचरण कैसे हो–मंगल + आ + चरण = जिनके चरण मंगल हैं उनके पास आ जा तेरे जीवन में मंगलाचरण हो जायेगा। मंगल चरण परमेष्ठियों के होते हैं उनका सान्निध्य ही मंगलाचरण

है यदि पंचपरमेष्ठी के चरण का वरण नहीं किया है, उनके चरण की शरण नहीं बनायी है, उनके चरण से अपने करण को नहीं सुधारा है जिसने पंचपरमेष्ठी के माध्यम से अपने जन्म को, अपने मरण को नहीं सुधारा उसके जीवन में मंगलाचरण नहीं हो सकता, पंचपरमेष्ठी के चरण ही तारण तरण हैं, वही सच्ची शरण है यही परम्परा से मुक्ति के वरण का कारण है। तो मंगलाचरण कहाँ से होता है-पंच परमेष्ठी के चरण से, जो मंगल पुरुष हैं, धर्म पुरुष हैं उनके चरण में पहुँच जाना ही जीवन का सच्चा मंगलाचरण है।

२. शिष्टाचार का परिपालन–कोई भी व्यक्ति बिना मंगलाचरण किये, बिना नमस्कार किये, बिना जय बोले, माइक छीन कर बोले तो उसकी बात को तुम सुनना नहीं चाहोगे कहाँ से आ गया यह अशिष्ट व्यक्ति। जो शिष्टाचार पूर्वक अपनी बात बोलेगा उसकी बात को ध्यान पूर्वक सुनोगे। जब तक शिष्ट व सभ्य समाज है तब तक मंगलाचरण होता रहा है, होता रहा था और आगे होता रहेगा।

३. पुण्य की प्राप्ति–पंचपरमेष्ठी का नाम लेने मात्र से पापों का क्षय होता है।

''विघ्नों का नाश होता है लेने से नाम के''

भगवान का नाम लेने से 'सहस्रंपापशान्तये' भगवान के 1008 नाम पढ़ने मात्र से हजारों पापों की शान्ति होती है।

दूर रहे स्तोत्र आपका जो कि सर्वथा है निर्दोष।
'पुण्य कथा' ही किन्तु आपकी हर लेती है कल्मष कोष॥

आपकी पुण्य कथा जो पढ़ लेता है नाम ले लेता है वह धन्य हो जाता है, आप कैसे जन्मे, कैसे जीये इसे अब हम शास्त्र कहने लगे हैं आपके क्रिया, चारित्र आचरण को शास्त्र कहने लगे हैं, उसके पढ़ने सुनने को धर्म कहने लगे हैं वास्तव में सत्यता यही है कि आपका नाम लेना, आपकी चर्चा करना वह भी धर्म होता है। महानुभाव ! परमेष्ठी का चाहे नाम लो, चाहे चर्चा करो, चाहे उनका चिंतन करो, ध्यान करो, उनकी कोई भी चर्चा का चिन्तन करो वह आपके कर्म का क्षय करने वाली होती है तो 'पुण्यवाप्तिस्य' पुण्य की प्राप्ति होती है। महानुभाव ! जब कषाय का उद्वेग होता है तब परमेष्ठी का नाम जुबान पर नहीं आता।

एक बार किन्हीं मुनिमहाराज ने श्रावक को डांट दिया, वह प्रातःकाल गंधोदक देने आया था उससे कोई गलती हो गयी उन्होंने डांटा तो कोई अपशब्द मुनिमहाराज के मुख से निकल गया, वह श्रावक इतना गंभीर सबको गंधोदक देकर के आया और उन मुनिराज के पास जाकर चुपचाप बैठ गया हाथ जोड़कर के महाराज अपने काम में संलग्न थे जब उन्होंने उसे देखा पूछा हाँ क्या

बात है वह बोला-महाराज श्री हमने आज तक आपके श्री मुख से भगवान के 1008 नाम सुने हैं आज आपने जिस नाम का उच्चारण किया था वह 1008 नामों में नहीं आता वे मुनिमहाराज खड़े होकर पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के पास गये कहा महाराज जी हमसे भूल हो गयी एक अपशब्द निकल गया श्रावक के लिये क्षमा करो, प्रायश्चित दे दो।

तो महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि नाम का बड़ा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति जब 'जी' लगाकर बोलता है सामने वाले को अच्छा लगता है, पानी-पानी हो जाता है और 'जी' लगाने में जीभ घिसती नहीं है, 'जी' लगाना अपना और दूसरे का जी लगाना है। जी लगाते ही सुनने का जी कर जाता है और जी न लगाओ तो जी उचट सा जाता है यदि किसी का जी अपनी ओर खींचना हो तो जी लगा दो-हाँ जी, भैयाजी, अच्छा जी। तो व्यक्ति सुनता है हाँ देखो कितनी विनम्रता से बोल रहे हैं और इसके विपरीत यदि तू तड़ाक की भाषा बोल रहे हो तो भला आदमी ठहरेगा नहीं नीतिकार-कवि महोदय भी कहते हैं-

''ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे आप हूँ शीतल होय॥

किन्तु-

व्यक्ति तो उल्टी बात जल्दी याद कर लेते हैं वे तो कहते हैं-

''ऐसी वाणी बोलिये सुन नहीं पावे कोय।
सुनने वाला तड़प-तड़प कर छः महीना तक रोय॥

व्यक्ति क्या कहता है-

जो तोकू काँटा बूवे वा को बोय तू फूल।
तोय फूल के फूल हैं बाकूँ है त्रिशूल॥

किन्तु-धर्महीन व्यक्ति उल्टी बात कहेंगें-

जो तोकू काँटा बोये बाये बोय तू भाला।
वो भी मूरख क्या समझेगा पड़ा मर्द से पाला॥

महानुभाव !

बात ये है कि उल्टी बात व्यक्ति के जल्दी समझ में आती है सीधी बातें देरी से। किन्तु धर्म की सच्ची और अच्छी बात ही तो मंगलाचरण है और मंगलाचरण है क्या ? हम भगवान का नाम भी ले रहे हैं और सामने वाले को गाली भी दे रहे हैं कहाँ का मंगलाचरण है। मंगलाचरण से जब कषायमंद हो जाती हैं परिणाम निर्मल हो जाते हैं तब ग्रंथ पढ़ने की पात्रता आती है। जिसके मन

में निर्मलता ही नहीं आयी तो उसे शास्त्र को आगे नहीं पढ़ना चाहिये। शास्त्र बंद कर के दूर से हाथ जोड़कर सिर झुका लेना चाहिये अन्यथा कषाय के उद्रेक के साथ स्वाध्याय करने से पाप का आश्रव व बंध होता है। तो महानुभाव !

इन चार कारणों से शास्त्र की आदि में संस्तुति की जाती है।

मंगलाचरण क्यों-मंगलाचरण कब–किसी भी कार्य के आदि में, मध्य में व अंत में मंगलाचरण करना चाहिये, तीन बार मंगलाचरण किया जाता है।

''आदिमध्यौ कुशालेच''

आदि में मंगलाचरण करने से-कार्य निर्विघ्न पूरा होता है

मध्य में मंगलाचरण करने से-उस फल की प्राप्ति होती है।

अन्त में मंगलाचरण करने से-उस श्रावक को समाधि मरण की प्राप्ति होती है।

मंगलाचरण कैसे–मन वचन काय की विशुद्धि पूर्वक, अपनी चेतना को नम्रीभूत बना देना वह मंगलाचरण है। जैसे आप पढ़ते हैं छहढाला में-

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार नमहूँ त्रियोग सम्हारकै॥

तो नमस्कार कैसे करना चाहिये ? तीनों योगों को संभालकर शब्दों में लिपिबद्ध करके भी करना है, आपने कोई ग्रंथ लिखना प्रारंभ किया और मुख से मन-वचन-काय से कर भी लिया किन्तु ग्रंथ के आदि में नहीं लिखा तो आगे आने वाले लोग नहीं समझ पायेंगे कि आपने मंगलाचरण किया या नहीं इसलिये शब्दों में निबद्धकर लिखना भी आवश्यक है। शब्दों के साथ मन भी लग जाये वचन व काय भी लग जाये तब वह मंगलाचरण करना सार्थक है।

मंगलाचरण करने वाला कौन–मंगलाचरण वही कर सकता है जिसे निकट भविष्य में मोक्ष को प्राप्त करना है। अभव्य जीव कभी जीवन में मंगलाचरण नहीं कर सकता है क्योंकि मन वचन काय व चेतना की परिणति उस मंगलाचरण में नहीं लगती, शब्दों का कोई भी पद्य पढ़ सकता है किन्तु अभव्य वास्तव में मंगलाचरण नहीं कर सकता। मंगलाचरण तो ''आसन्नभव्य'' ही कर सकता है, दूरानुदूर भव्य, दीर्घभव्य और अभव्य कभी मंगलाचरण नहीं कर सकता। जिसने जीवन में एक बार भी भाव से मंगलाचरण किया है वह संसार में ज्यादा परिभ्रमण नहीं कर सकता।

मंगलाचरण

प्रणिपत्य वर्द्धमानं, प्रश्नोत्तर रत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामर वंद्यं, देवं देवाधिपं वीरं॥

अन्वयार्थ-

प्रणिपत्य–प्रणाम करके या झुककर के, **वर्धमानं**-वर्धमान स्वामी को

प्रश्नोत्तररत्नमालिकां–प्रश्नोत्तर रत्नमालिका को, **वक्ष्ये**-कहूँगा,

नागनरामरवंद्यं–नागेन्द्र धरणेन्द्र आदि भवनवासियों के इन्द्र, मनुष्यों के इन्द्र चक्रवर्ती आदि, वैमानिक देवों द्वारा, तिर्यंचों द्वारा वन्दनीय,

देवं-देवाधिपं–जो देवों के भी देव हैं।

वीरं–महावीर को।

अर्थ-जो 100 इन्द्रों से वन्दनीय हैं कौन से इन्द्र-

भवणालय चालीसा व्यंतर देवा होंति बत्तीसा।
कप्पामर चउवीसा चंदो सूरो वरो तिरयो॥

भवनवासी के 40 इन्द्र, व्यंतरदेवों के 32 इन्द्र, कल्पवासियों के 24, ज्योतिष के 2 (चन्द्र, सूर्य) मनुष्यों का इन्द्र-चक्रवर्ती, व तिर्यंचों में अष्टापद ऐसे 100 इन्द्रों द्वारा वन्दनीय हैं वे भगवान, कौन से भगवान ? महावीर भगवान ! उनकी भी वंदना करते हैं अन्य 24 तीर्थंकरों की भी करते हैं। इसमें 24 तीर्थंकर की वंदना की गयी है-आप कहेंगे कहाँ लिखा है तो लिखा है शब्द 'वीर'-
''अंकानां वामतो गति''

शब्दों की अंक में व्याख्या होती है तो 'वीरं' 'व' जो अक्षर है। व = 4 र = 2 तब 42 हो गया। किन्तु सूत्र है अंकानांवामतोगति इस सूत्र के अनुसार अंकों की गति उल्टी होती है तो 42 को उल्टा रखो 24 हो गया। तो वीरं अर्थात् यहाँ 24 तीर्थंकर को नमस्कार किया गया है।

यदि प्रत्यक्ष में देखेंगे सूत्र न देखें तो यहाँ भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया गया है।

''इस प्रकार महावीर स्वामी जो सभी देवों के द्वारा वंदनीय हैं, जो देवों के भी देव हैं सामान्य पंचपरमेष्ठी द्वारा भी पूज्य हैं सामान्य केवलियों में श्रेष्ठ तीर्थंकर केवली हैं उनकी मैं वंदना चरणों में गिरकर करता हूँ।''

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

(31)

सम्यग्ज्ञान के भेद

महानुभाव !

आ. अमोघवर्ष महाराज ने मंगलाचरण में भगवान को नमस्कार करके कहा-मैं कर्ता नहीं हूँ मैं ने जो सुना है वह आपसे कहूँगा। कर्ता तो मैं हूँ ही नहीं, शब्द अक्षर तो अनादि काल से हैं। आप पढ़ते हैं मंगलाचरण में-

मुख्य ग्रंथकर्तार:-श्री सर्वज्ञ देव, उत्तर ग्रंथ कर्तार:-श्री गणधरदेव तदुत्तर ग्रंथकर्तार:-परम्परागत बढ़ते आचार्यों से जो सुनते आयें है, जो उन्होंने लिखा वह परम्परागत उत्तर आचार्य कहलाते हैं।

मंगलाचरण आपने समझा-

ग्रंथ प्रारंभ से पूर्व आठ बातें समझना जरूरी है अन्यथा जीवन में सम्यग्ज्ञान की वृद्धि नहीं होती है। कितनी भी पढ़ो सैकड़ों बार भी पढ़ो यदि इन आठ बातों को भूल गये तो पढ़-पढ़के सालों भी बिता देना किन्तु तुम्हें विषय याद नहीं होगा, सुबह याद किया शाम को भूल गये। ये आठ बातें जो सम्यग्ज्ञान के आठ अंग हैं उनका ज्ञान करना व ध्यान रखना जरूरी है जैसे सम्यक्त्व को जाने बिना सम्यक्त्व को निर्मल नहीं बनाया जा सकता, वैसे ही सम्यक् ज्ञान के 8 अंगों को जाने बिना अपने जीवन में सम्यग्ज्ञान की स्थापना, सम्यक्ज्ञान की वृद्धि, सम्यक्ज्ञान की उत्पत्ति ये सभी कार्य नहीं हो सकते इसलिये ये 8 अंग जानना जरूरी हैं।

ग्रंथार्थोभयपूर्णं काले विनयेन सोपधानं च।
बहुमानेन समन्वित मनिह्नवं ज्ञान माराध्यं॥

ज्ञान की आराधना करो किन्तु कैसे करो इन आठ अंगों का पालन करते हुये-

१. ग्रंथाचार या शब्दाचार-इसका अर्थ है जो कुछ भी पुस्तक में लिखा है उसका उच्चारण सही रूप से करो यदि उच्चारण में थोड़ी सी गलती हो गयी तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा।

लिखा है कुन्ती किन्तु किसी प्रमादी व्यक्ति ने लिखा और जल्दी-जल्दी में न की घुंडी नहीं लगायी तो क्या हो गया कुन्ती का कुत्ती हो गया।

तो कई बार ऐसी गलतियाँ हो जाती हैं। सत्यता तो यह है कि हम हिन्दुस्तानी हिन्दी को ही शुद्ध नहीं पढ़ पाते। शायद कोई कन्नड़वासी शुद्ध पढ़ ले, और तो और शुद्ध शब्द को भी तुम शुद्ध नहीं बोल पाते।

एक व्यक्ति चोरी करता था चोरी करते-करते कई बार पकड़ा गया, पकड़ा जाता कई दिन थाने में बंद कर दिया जाता फिर कोर्ट में ले जाया जाता, जो मजिस्ट्रेट था वह भी उसे बार-बार

देखकर तंग आ गया वह बोला मैं तुझे कितनी बार माफ करूँ क्या करूँ, मुझे तुझ पर दया आती है तू चोरी क्यों करता है ? बार-बार मुझसे कहकर जाता है मैं चोरी नहीं करूँगा फिर भी चोरी करता है। वह बोला-मजिस्ट्रेट साहब ! अब की बार मैं आपको वचन देकर जाता हूँ और लिखकर जाता हूँ। कोर्ट में रजिस्टर मंगवाया उस पर लिखा-

''मैं कल से चोरी करूँगा ही नहीं की तो फांसी की सजा'' उसने यह लिख दिया दो वकीलों ने देख लिया। हस्ताक्षर कर दिये और वह लिखकर चला गया। अगले दिन ही संयोग की बात उसने चोरी की, वह पकड़ा गया, कोर्ट पहुँचा, जज ने कहा-अब मैं तुझे छोडूँगा नहीं, फाँसी की सजा देकर ही रहूँगा। वह बोला ठीक है वैसे मैंने इतना बड़ा गुनाह तो नहीं किया किसी की 100-200 रू. की चोरी की उसकी फाँसी की सजा ऐसा किसी कानून में तो लिखा नहीं है। जज ने कहा कानून में लिखा हो या नहीं कल तू ही लिख कर गया है-

''मैं चोरी नहीं करूँगा की तो फांसी की सजा'' वह बोला यदि ऐसी बात है तब तो आप मुझे फाँसी की सजा दे ही नहीं सकते, कानून के हिसाब से भी नहीं और वैसे भी नहीं दे सकते। आप रजिस्टर निकालो निकाला-उसमें लिखा था-मैं कल से चोरी करूँगा ही, नहीं की तो फाँसी की सजा। वह बोला मजिस्ट्रेट साहब थोड़ा गौर से पढ़ो बोले क्या-मैं कल से चोरी करूंगा ही, नहीं आप ऐसा पढ़ रहे है आप नहीं तक क्यों पहुँच गये जो कोमा (Comma) लगा है वह तो ही के पास लगा है, वह लिखा है मैं कल से चोरी करूँगा ही, नहीं की तो फाँसी की सजा, मैंने कोमा कहाँ लगाया है, देख लो। मैं कल से चोरी करूँगा ही नहीं यहाँ कोमा होता तो अलग अर्थ हो जाता और मैं कल से चोरी करूँगा ही, नहीं की तो फांसी की सजा है मैं तो अपना काम कर रहा हूँ।

तो कोमा कहाँ से कहाँ लगाने पर कितना अंतर आ गया। ऐसे ही हमें भी शुद्ध पढ़ना है सही पढ़ना है किस शब्द का उच्चारण कैसे करना है, कई बार उच्चारण बदल जाने से उसके अर्थ भी बदल जाते हैं, मायने बदल जाते हैं। तो इस प्रकार से पहला अंग सम्यग्ज्ञान का दिया 'शब्दाचार' या 'ग्रंथाचार'।

देखना यह है कि शब्दों का स्वराघात कहाँ जा रहा है। एक वाक्य में किस शब्द पर जोर दिया जा रहा है इससे उस वाक्य के मायने बदल जाते हैं। शास्त्र में क्या लिखा है, क्या नहीं लिखा, आचार्यों की बात, आचार्यों के कांड आचार्य ही समझ सकते हैं ''खग जाने खग की ही भाषा'' पक्षी की भाषा पक्षी ही समझ सकते हैं आचार्यों की बात का श्रावक अर्थ कैसे निकाल पायेगा, गद्दी आदि पर बैठकर कई बार अव्रतियों से गलती हो जाती है कि वास्तव में इसका अर्थ ऐसा भी निकल सकता है, एक ही गाथा का अर्थ एक नहीं कई हो सकते हैं किन्तु उसका मन्तव्य

अलग रहता है जो अर्थ निकालने वाला है उसके अनुसार ही अर्थ निकाले जाते हैं। एक बार एक पक्षी कूक रहा था, उससे पूछा ये पक्षी क्या बोल रहा है बोला-पक्षी कह रहा है-'राम-राम' उस व्यक्ति ने वैसा अर्थ निकाला, दूसरे से पूछा ये पक्षी क्या कह रहा है-उसने अर्थ निकाला-यह कह रहा है दाल-भात खाओ, तीसरे ने कहा-ये कह रहा है कुश्ती लड़ो, चौथे से पूछा-बोला ये कह रहा है कि दुकान चला अच्छे से, अगले से पूछा-बोला बारिश आने वाली है खेत पर जा। सब अपने-अपने अनुसार उस शब्द का अर्थ निकाल रहे हैं किन्तु क्या कहा। ऐसे ही गाथा में क्या लिखा है शब्द वही है दस लोगों ने सुने दसों ने अलग-अलग अर्थ निकाले ऐसे ही गाथा पक्षी की आवाज की तरह से है कौन उसका क्या अर्थ निकालता है गाथा वही की वही है उसके अर्थ बदलते चले जाते हैं पात्र के अनुसार। जैसा पात्र होता है वैसा अर्थ होता है, पानी की बूंद वही है, वही पानी की बूंद जिनवाणी के शब्दों की तरह से जब नींबू के पेड़ पर जाती है तो खट्टी हो जाती है, गन्ने में जाती है तो मीठी हो जाती है, सीप में जाती है तो मोती बन जाती है यदि वह केले के पत्ते पर जाती है तो कपूर बन जाती है, सर्प के मुख में जाती है तो जहर बन जाती है, नीम पर जाकर कड़वी हो जाती है। मिर्ची में जाती है तो चरपरी हो जाती है। उस पानी की बूंद में अंतर आता जाता है। पानी की बूंद एक है जिस रंग पर पड़ती है रंग वैसा ही उस जल का हो जाता है उस जल का कोई रंग नहीं-

कहो जल तुम्हारा कैसा रंग
जैसे रंग का मिलता संग, वैसा मेरा होता रंग॥

तो गाथा का अर्थ क्या है ? जो गाथा का अर्थ करने वाला है उसका जो मनोभाव है वह गाथा का वही अर्थ निकाल सकता है और गाथा लिखने वाले का मनोभाव वही समझ सकता है जो गाथा लिखने वाले का पद है। यदि वही पदवी वाला व्यक्ति गाथा का अर्थ निकाले तब संभव है कि वह सही अर्थ निकाल सकता है उसके भावों तक पहुँच सकता है। लिखने वाला कोई और हो, पढ़ने वाला कोई और हो तो अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है, इसलिये आचार्यों की वाणी को आचार्य समझा सकते हैं श्रावक नहीं समझा सकता। तो महानुभाव ! यहाँ पर आपने देखा शब्दों का उच्चारण सही करना है। सम्यग्ज्ञान की 8 बातों में पहले देखा शब्दाचार दूसरा है-

२. अर्थाचार-'शब्दानां अनेकार्था' शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं। एक गौ शब्द के ग्यारह अर्थ हैं, हरि शब्द के 23 अर्थ हैं, पय शब्द के दो अर्थ हैं। नामामाला ग्रंथ है धनंजय कवि का। एक-एक शब्द के कई-कई अर्थ हैं। तो इससे प्रसंगानुसार उस शब्द का वहाँ कौन सा अर्थ निकल रहा है यह देखना है।

उदा. भरत चक्रवर्ती गौ सम्पन्न थे अर्थात् लक्ष्मी सम्पन्न।

श्री कृष्ण गौप्रिय थे-अर्थात्-गायों से प्रेम था।

शांतिनाथ ने षटखण्ड गौ पर राज्य किया था-गौ अर्थात् पृथ्वी इसी प्रकार शब्दों को प्रसंगानुसार लगाना अर्थाचार है।

एक राजा वन विहार के लिये जा रहा था, उसने कहा-'सेंधव आनय'-सेंधव का अर्थ होता है 'सिंधु (सेंधा) नमक' और सिंधु जाति का घोड़ी तो राजा ने कहा सेंधव आनय जब यात्रा/वन विहार के लिये जा रहा है तो समझदार व्यक्ति होगा तो घोड़ा लायेगा, और भोजन कर रहा है तो नमक लायेगा। तो प्रसंग के अनुसार अर्थ निकालना है। यदि उल्टा अर्थ निकाल लिया तो गड़बड़ हो जाती है। ऐसे ही-

पय-अर्थात् पानी, पय अर्थात् दूध यदि कहा श्याम पयोधर को देखकर मयूर नाचने लगते हैं तो जल से भरे बादल को देखकर मयूर नाचे, पयोधि अर्थात् समुद्र, और यदि कहें पयोधरा-अर्थात् ऐसे युवती जो गर्भवती है वह दुग्ध का भार धारण करने वाली हो उसको भी कहते हैं पयोधरा। तो पय माने दूध भी है और पानी भी है। तो प्रसंगानुसार अर्थ निकालना यदि आप जानते हैं तब तो आप शास्त्र का सही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। औषधि तो बहुत सारी रखी है वैद्य जी की दुकान पर किन्तु कौन सी औषधि किस रोग में काम आती है यह तुम्हें जानकारी है तब तो वह दुकान तुम्हारे पिता जी की तुम्हारे लिये वरदान है और यदि नहीं जानते हो तो फिर उल्टी-सीधी औषधि देकर के-न रोगी रहेगा और न रोग रहेगा, दुबारा लौट कर नहीं आयेगा।

जैसे-'अज' शब्द का क्या अर्थ होता है अ-नही, जन-जन्मे जो नहीं जन्मे उसको कहते हैं 'अज'। अज माने ब्रह्मा, अज माने सिद्ध परमेष्ठी, अज माने तीन साल का पुराना धान्य, अज माने बकरा। एक के अनेक अर्थ होते हैं किन्तु किसका अर्थ कहाँ निकालना है। होम के समय तीन साल के पुराने धान से हवन करना चाहिये वह न निकालकर के क्या अर्थ निकाल दिया 'बकरा'। तो वह राजा वसु उल्टा अर्थ निकालकर नरक को प्राप्त हुआ।

''वसु झूठ सेती नरक पहुँचा स्वर्ग में नारद गया''

ऐसे ही शब्दों का प्रसंगानुसार सही अर्थ निकालना कहलाता है 'अर्थाचार'।

३. उभयाचार-उभय अर्थात् दोनों-उच्चारण भी सही करें, अर्थ भी सही निकालें किन्तु प्रसंग के अनुसार सही अर्थ निकालना। क्योंकि जब साहित्यिक भाषा पढ़ते हैं तब प्राय:कर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिसके दो अर्थ हों (जैसे) वह राजा समुद्र की तरह से था, जैसे समुद्र में जल होता है वह राजा भी जल युक्त था अर्थात् जड़ बुद्धि था। अथवा कोमल बुद्धि था अथवा करुणार्द्र चित्त था। समुद्र जैसे गंभीर होता है वैसे राजा भी गंभीर था। समुद्र में जैसे उत्ताल धवल लहरें उठती हैं वैसे ही राजा पर श्वेत चंवर ढुर रहे थे। जैसे समुद्र महाघोष करता है वैसे

राजा भी शत्रु को ललकारते हुए महाघोष करता था। जैसे समुद्र जलचर जीव जंतु, रत्न राशि आदि को अवगाहन देता है वैसे राजा भी सबको स्थान शरण देता था।

जैसे सिंधव का अर्थ है सिंधु जाति का घोड़ा मंगाना और सिंधव आनय का अर्थ सेंधा नमक मंगाना भी होता है। तो काव्य जब भी लिखे जाते हैं वह उभय अर्थ युक्त होते हैं। महानुभाव! जिस काव्य के दो अर्थ नहीं निकले वह काव्य ही नहीं है काव्य वह कहलाता है जिसमें रसातिरेक 'जिसमें रस का अतिरेक हों' सामान्य रस हो तो सामान्य चीज हो गयी किन्तु जहाँ इसका अतिरेक हो जाये वह काव्य होता है जितना अतिरेक होगा काव्य उतना ही मनोनुकूल होता है।

४. कालाचार–कालाचार का अर्थ होता है सही समय में स्वाध्याय करना। जो संधि काल है उन संधि काल में सिद्धान्त ग्रंथ, सूत्रग्रंथ नहीं पढ़ा जाता है यदि कोई पढ़ता है तो क्षयोपशम बढ़ता नहीं घटता है। यदि कोई असमय में सिद्धान्त सूत्र ग्रंथ पढ़ता है तो असमाधि का कारण बनता है यदि कोई असमय में सिद्धान्त ग्रंथ पढ़ता है तो उसके संयम में दोष लगता है संयम से हाथ धो बैठता है, यदि असमय में ग्रंथ पढ़ता है तो उसके अंग-उपांग Damage हो जाते हैं जैसे आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी जी बहुत पढ़ते थे इतनी पढ़ने की लगन कि संधि काल में भी पढ़ रहे हैं जिससे उनकी गर्दन टेढ़ी हो गयी इससे उनका नाम पड़ा-'वक्रग्रीवाचार्य' तो स्वाध्याय सही समय पर करना है। अभिषेक के समय स्वाध्याय करने बैठ गये, आरती का समय है आप स्वाध्याय करने बैठ गये, भोजन का समय है आप स्वाध्याय करने बैठ गये, तो जिस समय का जो कार्य है उस समय वही कार्य करना चाहिये। प्रातः काल 4-5 बजे सूर्य चढ़ते ही कोई तुम्हें यदि भोजन की थाली परोस दे तो क्या तुम भोजन कर लोगे ? यदि तुम जो दूध शाम को पीते हो वह दोपहर में देकर कह दिया जाये लो इसे पीलो और सो जाओ तो तुम कहोगे-पागल हो गये हो क्या ? तो हर कार्य का समय होता है। एक बात अनुभव करना जो समय तुम्हारा भोजन का है उसी समय भूख लगेगी, यदि वह समय टल गया तो फिर तुम उपवास भी कर सकते हो।

महानुभाव ! पौने पाँच बजे से लेकर सवा सात बजे के बीच में और पौने ग्यारह बजे से सवा बजे तक सिद्धांत ग्रंथ, सूत्रग्रंथ नहीं पढ़ने चाहिये। इन चारों संधिकालों में भगवान की दिव्यध्वनि खिरती है इस समय समवशरण का ध्यान लगाना चाहिये भक्ति पढ़नी चाहिये, ये वंदना के काल होते हैं। ये स्वाध्याय के काल नहीं हैं इन समय में ऐसा कोई कार्य न करो जिसे करने पर मस्तक पर बहुत जोर पड़ता हो, अन्यथा वह पागल हो जायेगा। सुबह-शाम पौने 5 से सवा 7, रात्रि-दोपहर पौने ग्यारह से सवा बजे तक ये चार संधि काल हैं। इन चार समयों में सिद्धान्त ग्रंथ, सूत्र ग्रंथ नहीं पढ़े जाते। रहस्य ग्रंथ, प्रायश्चित ग्रंथ, व्याकरणादि ग्रंथ नहीं पढ़े जाते। प्रथमानुयोग पढ़ लो कोई बात नहीं, चरणानुयोग पढ़ लो कोई बात नहीं किन्तु द्रव्यानुयोग, करणानुयोग नहीं पढ़ना चाहिये क्योंकि इन्हें पढ़ने से मस्तक पर बहुत जोर पड़ता है। अगला है-

५. विनयाचार–चाहे शास्त्र की एक लाइन पढ़ो किन्तु विनय पूर्वक। पर आजकल तो शास्त्रों की बेकदरी होने लगी है, शास्त्र को दबाया कांख में और चले जा रहे हैं, सिगरेट का धुँआ उड़ाते हुये, पान की पीक थूकते हुये। कहाँ रही शास्त्र की विनय। गद्दी पर बैठे हैं और गिलास हाथ में गटागट दूध पी रहे हैं, क्या ये विनय है जिनवाणी की। भगवान के सामने खड़े होकर तुम भोजन पानी कर सकते हो क्या, उनकी वाणी कांख में दबा कर चल सकते हो क्या ? भगवान पूज्य हैं देव शास्त्र गुरु तीनों जब एक बराबर हैं जब पूजा करते हो तब थाली में एक साथ स्थापना करते हो तो जब भगवान को काँख में दबा कर नहीं चल सकते तो फिर जिनवाणी को क्यों ? पहले मंदिरों में स्वाध्याय होता था तब कहते थे सावधान ! जिनवाणी को सिर पर रखकर लाते थे, सभी खड़े हो जाते थे और हाथ जोड़कर सिर झुकाते थे, और जिनवाणी को चौकी पर विराजमान करके पहले नमस्कार करते फिर गद्दी स्वीकार करते थे और स्वाध्याय करते थे, स्वाध्याय के दौरान हाथ नाभि के नीचे नहीं जाता था। जितनी विनय होती है उतना ही ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है। बिना विनय के क्षयोपशम कभी बढ़ेगा नहीं घटेगा ही घटेगा।

भगवान की मूर्ति चाहे कितनी भी छोटी हो या बड़ी इससे नहीं अपितु तुम्हारी श्रद्धा कैसी है इससे फल मिलता है ऐसे ही जिनवाणी का शास्त्र छोटा हो या बड़ा तुम जितनी विनय करोगे तुम्हारा क्षयोपशम उतना ही बढ़ता चला जायेगा। व्यक्ति सोच लेता है विनय नहीं करेंगे तो काम चल जायेगा हमें तो याद करना है, कण्ठस्थ करना है 100 बार भी कण्ठस्थ कर लेना भूल जाओगे, मौके पर विद्या काम नहीं आयेगी और विनय पूर्वक एक बार भी याद किया है तो चलते फिरते भी याद रहेगा विस्मृत न होगा, विनय पूर्वक पढ़ी गयी चार लाइनें भी उत्तम समाधि का कारण हैं, अविनय पूर्वक पढ़ी गयी 40 लाइनें, 40 ग्रंथ भी असमाधि का कारण बन जाता है। अगला है–

७. बहुमानाचार–बहुमान 'सम्मान' ! कैसे ? राष्ट्रपति का नाम आप कैसे लोगे ? महामहिम शब्द लगाओगे या नहीं ? यदि राष्ट्रपति का नाम आपने सबके सामने बिना महामहिम लगाये ले लिया तो आई.पी.सी. के अनुसार आप दंड के अधिकारी हो। राष्ट्रीय ध्वज यदि आपने भूल से भी जमीन पर गिरा दिया तो दंड के अधिकारी हो। अपमान नहीं कर सकते जब अपने मित्र का नाम भी श्री जी, माननीय जी, सम्मानीय जैसे शब्द लगाकर उच्चारते हैं तो क्या जिनवाणी तुम्हारी इतनी गयी बीती है कि उसके आगे श्री, जी शब्द ही नहीं है। जिनवाणी का नाम क्या कहेंगे आदि पुराण में ऐसा कहा है–श्री आदि पुराण जी में भगवान ने ऐसा कहा है ऐसा नहीं कह सकते क्या ? आदि पुराण क्या तुम्हारा नौकर चाकर है ? 'ग्रन्थराज' नहीं कह सकते क्या ? व्यक्ति के नाम के आगे श्री भी लगा दोगे, जी भी लगा दोगे जिनवाणी तुम्हारी इतनी गयी बीती है कि श्री भी भूल गये जी भी भूल गये। आचार्यों के नाम कुन्दकुन्द स्वामी ऐसा कहते हैं आचार्य भगवन् श्री

कुन्दकुन्द स्वामी जी ऐसा कहते हैं ऐसे नहीं कह सकते क्या ? एक विद्वान पण्डित जी आये सन् 2000 में। मैं टूण्डला चौमासा कर रहा था वह कहने लगे-अरे ! वह कुन्दकुन्द मूर्ख थोड़े ही था, कुन्दकुन्द ने ऐसा कहा है-सम्मान के साथ नहीं बोल सकते हो क्या ? आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी जी महाराज जिनका नाम इन्द्रभूति गौतम गणधर के बाद लिया जाता है मंगलकारी नाम है उनका नाम तो तुम ऐसे ले रहे हो जैसे अपने घर के किसी नौकर की चर्चा कर रहे हो। अरे ! सम्मान के साथ नाम लेना चाहिये। लोक व्यवहार में भी जब तुम अपने ऑफिस में जाते हो तो अपने अफसर के नाम के आगे श्री नहीं लगाया या सर नहीं कहा ऐसे ही बोल दिया तो Punishment मिलता है। और तुम्हारे आचार्यों के नाम, साधुओं के नाम ? परमेष्ठी हैं परमेष्ठी। इन परमेष्ठियों की जितनी विनय कर लोगे उतनी कर्म कालिमा धुल जायेगी, परमेष्ठी का कुछ नहीं बिगड़ेगा अविनय का भाव नहीं हैं फिर भी शब्दों में अविनय हो रही है तो कर्म कालिमा और जुड़ती चली जायेगी। महानुभाव ! बचपन से ही यू.के.जी., एल.के.जी. से Sir और Mam कहना सिखाया जाता है तो क्या हमारे परमेष्ठी श्रीमान जी कहने के लायक भी नहीं हैं हमारी जिनवाणी माता, गणधरों की वाणी के आगे क्या श्री लगाने की आवश्यकता नहीं है। हम जितनी विनय के साथ पढ़ेंगे हमारी कषाय उतनी ही मंद होगी। कषायें ज्यों-ज्यों मंद होगी त्यों-त्यों ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम बढ़ेगा। महानुभाव ! जब भी ग्रंथराज का नाम तुम्हारे श्रीमुख से निकले। श्री मुख क्यों ? क्योंकि तुम्हारे मुख से 4 शब्द निकलते हैं इसलिये श्री मुख है-जिसके मुख से 4 शब्द नहीं निकलते उसके मुख में और मलद्वार में अंतर नहीं। जिसके मुख से 24 घंटे में ये चार शब्द नहीं निकले तो समझो उसका मुख मलद्वार जैसा है। वे चार शब्द हैं-

ओम, जय, नमः, स्वाहा जिसके मुँह से ये चार शब्द निकलते हैं वास्तव में उसका मुख श्री मुख है। जो ॐकार का उच्चारण करते हैं, जयकार का नाद करते हैं, तीर्थंकरों की जय बोलता है, उन्हें नमस्कार करता है, अर्घ चढ़ाता है उसका मुख श्री मुख है। जिसके मुख से ये चार शब्द न निकलें तो नीतिकारों ने उसकी तुलना मलद्वार से की है। ''श्री'' श्री जिनेन्द्र प्रभु को कहते हैं आपके मुख को श्री मुख कहा क्यों आप रोज श्री जी को देखते हो उनकी जय, अर्घ आदि चढ़ाते है इसलिये आपके मुख को श्रीमुख कहा। दर्पण में आप जैसा चेहरा देखते हैं वैसा दिखता है जिनेन्द्र प्रभु रूपी दर्पण में आप जैसा चेहरा देखते हैं वैसा दिखता है। जिनेन्द्र प्रभु रूपी दर्पण में देखा तो आप उसमें दिखाई दिये तो श्री जी का मुख और आपका मुख एक जैसा दिखाई देता है। तो आपका मुख श्री मुख हो गया। तो महानुभाव ! श्री जी के मुख का अवलोकन करते-करते व्यक्ति स्वयं श्री जी की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। तो आपके मुख से ये चार शब्द तो निकलने ही चाहिये। प्रातःकाल उठते ही णमोकार मंत्र का उच्चारण 108 बार करो, न कर पाओ तो 81 बार, नहीं तो 9 बार। यदि 9 बार भी न पढ़ पाओ तो एक बार तो अवश्य पढ़ना ही चाहिये।

पंचपरमेष्ठी की जय, ॐकार का उच्चारण करना, जब भी मंदिर जाओ तो मुट्ठी भर चावल ले जाकर मंदिर में भगवान के सम्मुख स्वाहा कर चढ़ा देना चाहिये। भले ही चुल्लुभर पानी चढ़ाओ पर चढ़ाओं अवश्य। तुम्हारे पास जो है सो चढ़ाओ। पहले राजा-महाराजाओं के पास रत्न-मोती आदि होते थे तो वे वह चढ़ाते थे किन्तु तुम्हारे पास चावल हों तो चावल, बादाम हों तो बादाम जो हो सो चढ़ाकर स्वाहा करो। स्वाहा कहने से कर्म विसर्जित होते हैं कर्म की निर्जरा होती है। आर्य समाज में तो पूजा-पाठ कुछ नहीं है स्वाहा-स्वाहा ही बस ! हवन कराते रहो वही सबसे बड़ी पूजन पाठ है वही धर्म है। यहाँ अपने जैन शास्त्रों में भी हवन का कथन है, और पूजा में भी स्वाहा बोलते हैं। 'स्वाहा' मतलब मैं अपने कर्मों को भस्म करने आया हूँ स्वाहा शब्द मंगलवाची है। स्वाहा का अर्थ नमस्कार के अर्थ में भी होता है। महानुभाव! ये चार शब्द हमें प्रतिदिन अपने श्री मुख से मुखरित करने चाहियें। अगला है-

८. **अनिह्नवाचार**–निह्नव का अर्थ होता है ''छिपाना'' और अनिह्नव का अर्थ है-नहीं छिपाना। तुमने जो विषय जहाँ से पढ़ा है उस ग्रंथ का कभी नाम नहीं छिपाना। तुमसे कोई पूछे भाई ! तुमने ये जीव-अजीव की परिभाषा कहाँ से पढ़ी तो ये कह देना कि हमने ये परिभाषा बचपन में बाल बोध से पढ़ी या किसी छोटी पुस्तक से पढ़ी ये नहीं कहना कि हमने तत्वार्थ सूत्र से पढ़ी या धवला जी से पढ़ी। जहाँ से भी पढ़ी हो वहीं का नाम लेना। कोई विषय यदि किसी छोटे मुनि महाराज से सीखा और नाम ले लिया किसी बड़े आचार्य का जिससे दुनिया बड़ा सम्मान करेगी। तो ऐसे नाम छिपाने से ज्ञानावरणी कर्म का बंध होता है क्षयोपशम घटता है। तुमने कभी भी जिस शास्त्र से पढ़ा है उसका नाम न छिपाओ, जिस गुरु के पास पढ़े उनका नाम न छिपाओ सत्यता का भाव रखो छिपाने का भाव मायाचारी है, और मायाचारी आते ही कषायें उद्दिप्त होती हैं और कषायें ज्यों-ज्यों उद्दिप्त होती हैं त्यों-त्यों मायाचारी ज्ञान को खा जाती है अज्ञान को वह प्रकट करती जाती है जैसे दीपक अंधेरे को खाता है प्रकाश को प्रकट करता है वैसे मायाचारी अंधेरे (अज्ञान) को प्रकट करती है और प्रकाश (ज्ञान) को खाती है।

महानुभाव ! इस प्रकार 8 सम्यग्ज्ञान के भेद हैं इनका नियम से पालन करना चाहिये।

हेय और उपादेय

कः खलु नालं क्रियते, दृष्टादृष्टार्थ साधनपटीयान्।
कण्ठस्थितया विमल, प्रश्नोत्तर रत्नमालिकया॥१॥

कः - कौन **दृष्टा दृष्टार्थसाधन**-दृश्य और अदृश्य पदार्थ

खलु - निश्चय से **पटीयान्**-निपुण / कुशल

न - नहीं **कण्ठस्थितया विमल**-कण्ठ में स्थित नहीं करता है

अलं - बस **प्रश्नोत्तर रत्नमालिकया**-इस निर्मल प्रश्नोत्तर रत्नमाला को

क्रियते-किया जाता है

संसार में ऐसा बुद्धिमान कोई भी नहीं है जो कि इसे याद नहीं करे। तो यहाँ बताया-

दृष्ट और अदृष्ट पदार्थों को जानने में जो बहुत कुशल है प्राज्ञ है, होशियार है, ज्ञानी है, विवेकी है ऐसा व्यक्ति इस प्रश्नोत्तर रत्नमाला को अपने कण्ठगत करेगा ही करेगा, इससे चूक नहीं सकता है।

आचार्य महोदय कह रहे हैं-यह केवल अकेला रत्न मात्र नहीं हैं रत्न उसे कहते हैं जो आकार में छोटा और मूल्य में अधिक होता है। वह श्रेष्ठ वस्तु जिसके बदले बहुत सारी अन्य चीजें खरीदी जा सकें, वह रत्न होता है। जो स्वयं में सर्वश्रेष्ठ हो उसे 'रत्न' कहते हैं उस जाति की श्रेष्ठ चीज रत्न कहलाती है। आप कहते हैं-**''देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार''** तीन रतन सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये रत्नत्रय।

और नीतिकार कहते हैं-

''पृथिव्यां त्रीणि रत्नानिं जलमन्नं सुभाषितं।
मूढ़े पाषाण खण्डेषु रत्न संज्ञा विधीयते॥''

पृथ्वी पर तो तीन ही रत्न हैं-जल अन्न और मीठे बोल।

मूर्ख लोग तो पाषाण के टुकड़ों को रत्न कहते हैं-

तो ऐसे धर्मात्मा कहते हैं-श्रावक के लिये तीन रत्न हैं-''देव शास्त्र गुरु''।

साधु के लिये तीन रत्न-सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। और गृहस्थों के लिये तीन रत्न हैं-जल, अन्न, मीठे बोल।

जिसके पास रतन हैं वह तो अमीर है, शहनशाह है बादशाह है। और जिसके पास किसी अतिथि को पिलाने के लिये पानी भी नहीं हैं, किसी भूखे को देने के लिये भोजन नहीं है और

मीठे शब्द नहीं हैं बोलने के लिये तो वह व्यक्ति संसार का सबसे बड़ा कंगाल है, गरीब है, उस पर दया आती है, तरस आता है कि वह किसी को पानी भी नहीं पिला सकता, वह किसी भूखे को भोजन नहीं खिला सकता। लोग कहते हैं उसकी इतनी फैक्ट्री चल रही है वह अरबपति है। किन्तु वह वास्तव में सबसे बड़ा दरिद्री है उस पर दया करो वह दूसरे व्यक्ति को दे ही नहीं सकता।

एक सेठ जी के पास भिखारी गया-बोला सेठ जीऽऽऽ ! कुछ दे दो सेठ जी कहते हैं-सेठानी जी नहीं हैं तो वह कहता है-मुझे सेठानी जी न चाहिये मुझे तो भोजन पानी चाहिये। पुनः कहता है घर में कोई नौकर चाकर नहीं है तो वह कहता है। मुझे नौकर नहीं भोजन पानी चाहिये, सेठजी पुनः कहते हैं-अभी मेरे हाथ खाली नहीं हैं तो भिखारी कहता है। जब सेठजी आपके हाथ ही खाली हो जायेंगे तो फिर आपसे मांगने कौन आयेगा, भरे हैं तभी तो आये हैं। वह सेठ जी कहते है-चल-चल मेरे पास कुछ नहीं है, तुझे देने के लिये, तो वह भिखारी कहता है-तो सेठ जी! यहाँ क्यों बैठे हो मेरे पास एक कटोरा और है तुम मेरे साथ चलो।

तो महानुभाव ! बात ये है जिसके पास देने के लिये नहीं होता है तो उसकी यही दशा होती है। कोई भी दरवाजे पर आये तो दुतकारो मत, धन दो या न दो किन्तु ''जलमन्नं सुभाषितं'' जल अन्न सुभाषित वचन तो देने ही चाहिये।

एक युवती गाड़ी में बैठकर पति के साथ, गोदी में छोटा बच्चा था, कहीं जा रही थी। उसने एक होटल के पास गाड़ी रोकी वहाँ के मैनेजर से कहा-एक कप दूध मिलेगा क्या ? मैनेजर ने कहा-हाँ मिलेगा 100 रू. का है। युवती ने 100 रू. निकाले उसको दिये और दूध बोतल में डाला और चल दी। शाम को लौटते समय वह गाड़ी आयी, एक जंगल में रोड के किनारे झोंपड़ी थी, दुकान थी, पूछा-बच्चे के लिये दूध मिलेगा क्या-वह बोला जी मिलेगा। बच्चे के लिये दूध दे दिया, पुनः पूछा कितने पैसे हुये ? वह झोंपड़ी का मालिक बोला-हाथ जोड़कर के बहन जी! हम बच्चों के लिये दूध बेचते नहीं यदि आपको रास्ते के लिये चाहिये तो और ले जाओ।

आश्चर्य होता है ! अब ये देखना है कि अमीर कौन है और गरीब कौन ? जो झोंपड़ी में चाय की दुकान लगाकर बैठा है वह या जो 5 स्टार होटल खोलकर बैठा है। वही जिसने 100 रू. लिये वह या जिसने कहा हम बच्चों के लिये दूध नहीं बेचते आपको रास्ते के लिये और चाहिये तो और ले लो। तो अमीर कौन है ?

महानुभाव ! उदारता हृदय से आती है, पैसे से नहीं। किसका हृदय विशाल है, महान है। कौन ऐसा त्याग कर सकता है। तो महानुभाव ! रतन तो वह है कि हम किसे क्या दे सकते हैं भूखे को भोजन, प्यासे को पानी और यदि कुछ भी न दे सकें तो दो मीठे-मीठे शब्द तो दे ही सकते

हैं-''**वचने का दरिद्रता**'' वचनों में इतनी निर्धनता क्यों ? अरे ! तुम्हारे पास देने के लिये कुछ भी नहीं है तो ना सही पर गुड़ जैसे वाक्य तो दे दो। कड़वी बात कहने से तुम्हारा रुतबा नहीं बढ़ जायेगा न तुम महान बन जाओगे कड़वी बात से तुम्हारा अहित ही है। उसका आर्तरौद्र परिणाम हुआ तुम्हें भी पाप का आश्रव हुआ। मीठी बात कहने से तुम्हें भी अच्छा लगा उसे भी अच्छा लगा। इसलिये कवि कहते हैं-

''जीभ घिस गयी होती, कि रुतबा घट गया होता।
जो गुस्से में कहा तुमने, वही हँस कर कहा होता॥''

जीभ तौल लेना मीठा बोलने से जीभ घिसेगी नहीं और कड़वा बोलने से मोटी नहीं होगी। और ऐसा भी नहीं कि मीठा बोलने से रुतबा घट जायेगा, वह तो बढ़ेगा। लोग कहेंगे क्या मीठी वाणी है लोग जिसे सुनने को लालायित रहेंगे, कड़वे बोल वालों से कहेंगे चुप हो जा। मीठी आवाज को सुनने के लिए लोग उसके पैर पकड़ते हैं और कड़वा बोलने वाला दूसरों के कान पकड़ता है अपनी बात सुनाने के लिये। इसलिये मीठा बोलो।

यहाँ पर द्वितीय कारिका का यही अर्थ है-संसार में ऐसा कोई विद्वान नहीं होगा जो स्वयं को विद्वान कहे और प्रश्नोत्तर रत्नमाला को कण्ठस्थ न करे।अगली कारिका है-

भगवन् ! किमुपादेयं, गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम्।
को गुरुरधिगततत्वः, सत्वहिताभ्युद्यतः सततम्॥३॥

भगवान् !-हे भगवान्, **उपदियं किम् ?**-ग्रहण करने योग्य क्या है, **गुरुवचनं**-गुरु के वचन, **हेयं च**-और त्यागने योग्य, **अपि किम्**-भी क्या है, **अकार्यम्**-अकार्य, **कः गुरु**-गुरु कौन है ?, **अधिगत तत्त्वः**-वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञाता, **सततम्**-निरन्तर, **सत्त्वहिताभिः**-जो प्राणियों के हित में, **उद्यतः**-तत्पर है।

भगवन् !-भगवन् शब्द मूल नहीं है मूल शब्द है 'भग्' भग शब्द में 'वन्तु' प्रत्यय लगा दिया। मन्तु और वन्तु प्रत्यय होते हैं संस्कृत में 'वन्तु' जैसे-धनवान्, गाड़ीवान् आदि उस वस्तु का स्वामी उससे सहित वन्तु अर्थ लगता है 'वान्' और 'मन्तु' प्रत्यय का अर्थ जैसे-श्रीमान् श्री संयुक्त, धीमान्-बुद्धि से युक्त। तो भगवान्-भग् माने ''ज्ञान'' भग शब्द में दो अक्षर 'भ' 'ग' भ-जो भरे और 'ग'-गम धातु जाने के अर्थ में और ज्ञान के अर्थ में आती है। यहाँ प्रसंग के अनुसार 'ग' ज्ञान। इसलिये आत्मा को सिर्फ ज्ञान से भर सकते है आत्मा को किसी और से नहीं भरा जा सकता।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने समयसार में लिखा कि-ज्ञान ही एक ऐसा गुण है जिसके माध्यम से आत्मा संतुष्ट होती है, जिसके माध्यम से आत्मा तृप्त होती है, आत्मा मर जाती है

अन्यथा अपनी आत्मा की इच्छाओं को धन से पूरा नहीं किया जा सकता। विषयों से पूरा नहीं किया जा सकता, संसार की कोई भी वस्तु ले लेना, उससे तृष्णा शांत नहीं होती, आपका मन भर नहीं सकता ? मन तो ऐसा है आचार्य गुणभद्र स्वामी कहते हैं–

आशागर्त प्रति प्राणी यस्मिन् विश्व मणुपमं।
किं कस्य कियदायाति, व्यथातो विशैषकः॥

प्रत्येक प्राणी का आशा रूपी गड्ढा इतना गहरा है कि तीन लोक की सम्पत्ति भी एक प्राणी के आशा रूपी गड्ढे में डाल दी जाये तो वह एक अणु के बराबर दिखाई देती है, एक व्यक्ति के आशा रूपी गड्ढे में तीन लोक की पूरी सम्पत्ति डाल दी जाये तो भी पूर्ति नहीं होती इसलिये विषयों के माध्यम से मन को भरना तो व्यर्थ है अनर्थकारी है मूर्खों की चेष्टा है। फिर आचार्य महोदय कुन्दकुन्द स्वामी जी ने कहा–तीन लोक की समस्त सम्पत्ति, समस्त द्रव्य, जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, काल सबको डाल दो एक व्यक्ति के आशारूपी गड्ढे में, तब भी वह नहीं भर सकता। अनंत आकाश के जितने भी प्रदेश हैं उन सभी को डाल दो फिर भी नहीं भर सकता है, आशा रूपी गड्ढा यदि भर सकता है तो सिर्फ और सिर्फ ज्ञान से भर सकता है। तो 'भ' का अर्थ है भरे 'ग'–ज्ञान से–जो ज्ञान से भरता है ऐसे ज्ञान से भरने वाला 'वान' व्यक्ति, वह भगवान कहलाता है। एक छोटी सी बात बतायें आपको–

एक राजा के तीन पुत्र थे क्रमशः ज्येष्ठ, मंझला, लघु। अब ऐसा भी नहीं जो बेटा बड़ा है जिसकी उमर ज्यादा है वह ज्यादा योग्य भी हो, दरअसल में उल्टा ही था राजा की दृष्टि में सबसे छोटा बेटा ज्यादा योग्य था, अब क्या किया जाये राजा को दीक्षा लेनी है व राज्य भार भी योग्य पुत्र को सौंपना है सबसे छोटे बेटे को राज्य देते हैं तो दोनों बड़े बेटे निःसंदेह विद्रोह करेंगे और राजा के लिये संक्लेशता पैदा करेंगे, इसलिये राजा ने पुरोहित जी से पूछा–कहा–पुरोहित जी ! मेरी शंका का समाधान करो मैं तो बहुत उलझ गया हूँ मैं अपने राज्य का राज्याधिकारी किसे बनाऊँ ? योग्यता से देखता हूँ तो छोटा बेटा दिखाई देता है। यदि राजत्व का रूप देखता हूँ तो बीच वाला बेटा दिखाई देता है यदि न्याय की अपेक्षा चलता हूँ तो मेरा बड़ा बेटा अधिकारी है, तो राज्य किसे दूँ। पुरोहित ने कहा–महाराज ! मेरे एक प्रश्न का उत्तर जो बेटा दे दे उसे ही राज्य दे देना चाहिये तीनों से कह देना जो मेरे इस प्रश्न का उत्तर दे देगा वही मेरे राज्य का अधिकारी होगा। पुत्रों को बुलाया, राजा ने प्रश्न किया और कहा उत्तर हम Practical चाहते हैं। ये तीन हॉल सामने बने हैं इनमें से पहला हॉल बड़े बेटे का, दूसरा हॉल दूसरे बेटे का, तीसरा हॉल तीसरे बेटे का है। इन तीनों हॉलों को तीनों पुत्रों द्वारा सूर्यास्त से पहले–पहले तक भर देना चाहिये, सुई की नोंक के बराबर स्थान भी खाली न रहे। तीनों बेटे प्रयास में लग गये बड़ा बेटा दिनभर अपना हाथ गाल पर रखे

रहा और न खाया-पिया सोचता रहा पिताजी की बुद्धि तो सठिया गयी, कैसे भरूँ इस हॉल को, दिये तो हैं 100 रू. इस 100 रू. में भरूँ तो कैसे भरूँ ये तो बड़ा मुश्किल है। शाम हो गयी सूर्यास्त हो गया। पुनः बीच वाले बेटे ने जुगाड़ लगाई नगर पालिका के लोग जो गंदगी लेकर जाते हैं उन ट्रकों को इसी हॉल में खाली करवा लिया, 10-5 ट्रॉली से वह हॉल भरवाया किन्तु वह एक कोने में समा गयी, दिनभर में थक गया किन्तु फिर भी हॉल को न भर पाया। तीसरे भाई के कमरे में दोनों ने झांककर देखा तो अभी वह खाली था, दोनों देखकर खुश थे चलो इसने भी कुछ नहीं भरा, बीच वाला सोच रहा था मैंने कुछ न कुछ तो भरा है तो राज्य तो मुझे ही मिलेगा, बड़ा वाला सोच रहा था कि पिता जी आयेंगे तो मैं पिता जी से कहूँगा आपका प्रश्न ही गलत है। शाम को पिता जी आये। कहा-मैंने आप लोगों को 100-100 रु. दिये इस हॉल को भरने के लिये क्या भर गये ? बड़ा पुत्र बोला-पिता जी आपको क्या हो गया आज के जमाने में 100 रु. में एक कनस्तर न भर पाये आप हॉल को भरने की बात कर रहे हैं। पिता जी सोच रहे थे ये कितना दुष्ट है इसे इतना नहीं दिख रहा कि पिता से कैसे शिष्टाचार से बात करनी चाहिये ये तो अधिकारी है ही नहीं। दूसरे बेटे के हॉल में गये बदबू के मारे बस ! पीछे से ही लौट गये, सिर पकड़ कर बैठ गये मेरे ऐसे पुत्रों को तो धिक्कार है। मंत्री आदि ने समझाया छोटा बेटा अभी शेष है उसके हॉल में और देख लो। फिर तो जो भाग्य में है वही होगा। तीसरा बेटा आया, हाथ जोड़कर बोला-पिताजी ! आइये मैं आपकी इंतजार कर रहा था, आपकी आज्ञानुसार आपने 100 रु. दिये थे किन्तु मेरा काम तो 50 रु. में ही चल गया, आप ये 50 रु. रख लें दोनों बड़े भाई सोच रहे थे इसने 50 रु. में हॉल कैसे भर दिया, छोटा बेटा पिताजी को विनय पूर्वक ले गया, अंदर गया-गेट बंद किये, उसने 50 रु. में क्या-क्या किया-वह एक-एक आने के 100 दीपक ले आया, घी के दीपक जला दिये, सभी जगह अगरबत्ती लगा दी फूल माला लगा दी, जैसे ही कमरा खोला पूरे कमरे में सुगंधी ही सुगंधी। पुष्पों, इत्रों की सुगंध और प्रकाश कहीं छोटी भी संधि नहीं थी जहाँ वह न हो प्रकाश सम्पूर्ण जगह पहुँच गया। वह बोला पिता जी ! आपको यदि कहीं हॉल खाली दिखाई दे रहा हो तो आप बताओ। पिताजी ने छोटे बेटे की पीठ ठोंकी कहा-वाह ! पुत्र तुम ही मेरे राज्य को प्राप्त करने के अधिकारी हो। महानुभाव !

वह पिता जी कौन है ? वह पिता जी हैं-सिद्ध सिद्धत्व उनका राज्य यदि हमें प्राप्त करना है तो वह राज्य कौन प्राप्त कर पायेगा जिसने अपनी आत्मा के हॉल को सम्यग् दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र से भर दिया है वही पिताजी के राज्य को प्राप्त कर सकता है। सम्यक्दर्शन है पुष्प, सम्यक् ज्ञान है-दीपों का प्रकाश और सम्यक्चारित्र है इत्र, अगरबत्ती की खुशबू। जिसके जीवन में रत्नत्रय मिल जाते हैं उसके जीवन में पुष्पों/इत्र की गंध, घी और प्रकाश मानो तीनों मिल गए। जब वह आत्मा में धारण होता है (रत्नत्रय) तब मोक्ष का राज्य मिल जाता है। जो व्यक्ति अपनी

आत्मा के हॉल को विषयकषाय के मल से भर देते हैं उसे सिद्ध स्वरूपी पिता का राज्य (सिद्धालय) नहीं मिलता है जो अपने हॉल को खाली छोड़ देते हैं जैसी जिंदगी चल रही है वैसे ही चलने दो कहीं अज्ञान का अंधेरा, कहीं विषयों की बदबू तो वह भी सिद्धत्व के राज्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये राज्य को प्राप्त करने का अधिकारी कौन है ? जिसने अपनी आत्मा को भर लिया। शब्द था-'भगवन्' जो ज्ञानवान् है स्वपर प्रकाशी है। 'भग' शब्द को पहले रखा आत्मा का लक्षण ज्ञानदर्शन है इसलिये पहले 'ज्ञान' आया। जब ज्ञान होता है तो उससे पहले दर्शन होता है ज्ञान बाद में **''दंसण पुव्वं णाणं''** ''दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है'' तो यहाँ पहले ज्ञान को क्यों कह रहे हैं ? दर्शन पहले कहना चाहिये ? क्योंकि दर्शन को हम कह नहीं सकते दर्शन निर्विकल्प होता है ज्ञान सविकल्प साकार होता है ज्ञान को हम देख सकते हैं ज्ञान का व्यापार होता है। ज्ञान से ही चेतना के अन्य गुणों का परिचय कराया जाता है दर्शन से परिचय नहीं कराया जाता इसलिये ज्ञान ही आत्मा का प्रधान गुण है इसलिये भगवान शब्द कहते हैं। भगवान के लिये सुखवान्, दृष्टिवान् नहीं भगवान कहते हैं, केवली कहते ही दूसरा व्यक्ति भी कह सकता है मैं भी तो सुखी हूँ किन्तु उसे भगवान नहीं कह सकते। तुम्हारी बात का खण्डन हो सकता है। भगवान् ज्ञान गुण की मुख्यता से कथन करते हैं क्योंकि ज्ञान ही मोक्षमार्ग में सबसे बड़ा हेतु है बिना ज्ञान के सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता, बिना ज्ञान के सम्यक्ज्ञान प्राप्त नहीं होता, बिना ज्ञान के सम्यक् चारित्र नहीं होता इसलिये ज्ञान की मुख्यता है भगवान-हिन्दी में है और भगवन् संस्कृत में। आचार्य महोदय से उनका शिष्य पूछ रहा है। या आचार्य महोदय भगवान् से पूछ रहे हैं–

भंते ! इच्छा करता हूँ ''तत्वं श्रणोमि'' तत्व को सुनने की या ''श्रणोतुं'' तत्व को सुनता हूँ। तो यहाँ पर वह पूछ रहा है। हर किसी से प्रश्न नहीं पूछा जाता और हर कोई उत्तर दे नहीं सकता, हर किसी का उत्तर सही नहीं होता। प्रश्न तो सबके सही हो सकते हैं प्रश्न तो कोई भी पूछ सकता है। पृच्छक स्वतंत्र होता है उसके गले में रस्सी नहीं बंधी किंतु उत्तर देने वाले को बहुत सोचना पड़ता है तीन गुप्ति की लगाम, भाषा समिति की लगाम है, वह सत्यमहाव्रत में कैद है बाहर कदम भी नहीं रख सकते, तो प्रश्न पूछने वाला कुछ भी पूछे किन्तु उत्तर देने वाले को सोचना है। प्रश्न पूछने वाला यदि सही व्यक्ति से प्रश्न पूछेगा तो सही उत्तर मिल जायेगा और गलत व्यक्ति से पूछेगा तो सही की उम्मीद कम है गलत की ज्यादा। क्यों कि लाल रंग से कपड़े रंगोगे तो कपड़े लाल ही होंगे हरे न होंगे। मेंहदी जैसी बात नहीं कि दिखने में हरी और रच जाये तो लाल। वह अलग चीज है, कई बार अल्पज्ञानी से भी कोई सीख मिल जाती है कितनी बार ऐसा होता है जिसका उत्तर राजा मंत्री से न बन रहा हो उसको कोई छोटा बालक बता देता है। आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज कहते थे-यदि कोई छोटा बालक भी सही बात कह रहा हो तो अहंकार में आकर के उसकी बात को अस्वीकार नहीं करना, स्वीकार लेना छोटा बालक भी सही और

अच्छी बात कह सकता है। और भूल बड़े-बड़ों से भी हो सकती है ये नहीं सोचना कि बड़ों से भूल नहीं होती, बड़े व्यक्ति सबके सामने अपनी भूल को स्वीकार करना नहीं चाहते क्यों कि उन्हें उसमें अपनी Insult लगती है बड़ों को तो पहले गलती स्वीकार करना चाहिये क्योंकि फिर छोटों में वैसे ही संस्कार आते हैं। तो ''भगवन् किमुपादेयं'' हमें किससे पूछना है? भगवान से ही क्यों पूछना है सुखी से क्यों नहीं, दु:खी से, अज्ञानी से शक्तिशाली से क्यों नहीं पूछना ? क्योंकि हमें सुखिया का सुख, दुखिया का दु:ख, शक्तिवान् की शक्ति न चाहिये और वह हमें दे भी नहीं सकता उसका दर्शन न चाहिये मुझे तो ज्ञान चाहिये, इसलिये ज्ञानवान से पूछूँगा जिसके पास जो है वह वही तो देगा-

न हि शशक विषाणं कोऽपि कस्मै ददाति

खरगोश के पास सींग होते हैं क्या ? खरगोश के पास जाकर अष्टद्रव्य से पूजा करो। कहो हे! खरगोश देवता मुझें सींग दे दो लम्बे से। वह कहेगा अरे पागल जब मुझ पर ही नहीं है तो तुझे कहाँ से दे दूँ, जिसके पास जो नहीं है उसके पास वह मांगने के लिये क्यों आ गये ? ऐसे ही समाधान/उत्तर वहाँ मिलेगा जहाँ होगा। पहला शब्द 'भगवन्' उनके पास जाकर जिज्ञासा समाधान मिलेगा। क्योंकि उनके पास ज्ञान है, ज्ञान का वरदान दो, वे ही इस दान के अधिकारी हैं श्रावक आहारदान, औषधिदान आदि दे सकते हैं भगवन् ही वरदान (ज्ञानदान) दे सकते हैं। तो आगे कहा-

किम्-क्या

उपादेय-उप प्रत्यय लगा दिया, प्रत्यय लगाने से शब्द की कीमत बढ़ जाती है आदेय की कीमत बढ़ गयी उप प्रत्यय लगाने से। उपादेय-विशेष रूप से ग्रहण करने योग्य।

उप शब्द कह रहा है-जिसे कभी छोड़ा नहीं जा सके। आदान के साथ प्रदान, लेना और देना, आदान के साथ निक्षेपण, उठाना और रखना किन्तु उपादेय के साथ हेय शब्द नहीं लगा सकते इसको अब हेय नहीं कह सकते।

आदेय-ग्रहण करने योग्य जो आज आदेय है वह कल हेय भी हो सकता है जो वस्तु रोगी के लिये आज आदेय है कल हेय हो सकती है किन्तु जो उपादेय कह दी, उपादेय को कभी हेय नहीं बनाया जा सकता। तो महानुभाव !

भक्त खड़ा है भगवान के सामने जैसे गौतम स्वामी भगवान् महावीर स्वामी के सामने, या राजा श्रेणिक या अन्य भी कोई। कैसे खड़ा है-''बद्धांजलि'' नतमस्तक होकर पूछ रहा है भगवन् किमुपादेयं-हे भगवान संसार में उपादेय क्या है ? कोई कहेगा-सोना, चांदी, जमीन, गाड़ी आदि, इन सबसे उपादेय वस्तु वह है जो सबसे महत्वपूर्ण है उससे ज्यादा महत्वपूर्ण कुछ है ही नहीं वही

उपादेय हो सकती है वह क्या चीज हो सकती है। जिसके लिये हम अपने प्राण भी न्यौछावर कर दें ऐसी महत्वपूर्ण चीज जिसका जीवन में हमें कभी भी त्याग न करना पड़े, क्या कोई चीज ऐसी है तो बता रहे हैं-

गुरुवचनं–गुरु के वचन ही संसार में सबसे उत्कृष्ट हैं यदि वे वचन तुम्हारी आत्मा में तुम्हारे कर्णद्वार से पहुँच गये तो उन वचनों को नहीं छोड़ देना। गुरुउपदेश संसार में सबसे उत्कृष्ट चीज है इसके ऊपर चक्रवर्ती अपनी नौनिधि और चौदह रत्न न्यौछावर करके फेंक सकता है, सौधर्मइन्द्र गुरुवचनों को सुनने के लिये स्वर्ग से आता है वह स्वर्ग का वैभव छोड़कर आता है। तीन लोक में सौधर्म इन्द्र से ज्यादा वैभवशाली और कोई है क्या ? यहाँ तक कि सभी स्वर्ग के इन्द्र व अहमिन्द्र भी मिल जायें तो उनका वैभव भी सौधर्म इन्द्र के वैभव से ज्यादा नहीं हो सकता है। सौधर्म इन्द्र एक समवशरण में ही चक्रवर्ती की निधि 108-108 बाहर दरवाजे पर ऐसे रख देता है जैसे बाहर जूते-चप्पल उतार कर रख दिये जाते हैं। 108 द्वार के एक साईड में 108 दूसरी साईड में। 216 इस दरवाजे पर, 216 उस दरवाजे पर कुल चार दरवाजे होते हैं। यदि वह चाहे 1700, 17000, 17 लाख करोड़ कितने भी समवशरण हो जाऐं इतनी विभूति उसके पास है कि वह एक साथ इतने समवशण की रचना कर सकता है। उससे ज्यादा विभूति इस तीन लोक में किसी के भी पास नहीं हैं तो ऐसी विभूति वाला सौधर्म इन्द्र भी अपने स्वर्ग की विभूति को छोड़कर दिगम्बर संत के चरण में आकर उनके पैर पकड़ करके अपनी मुकुट में लगी चन्द्रकान्त मणि के उस प्रासुक जल से उनका पाद प्रक्षालन करके उनके मुँह से दो शब्द सुनने को आतुर रहता है। तो संसार में सबसे उत्कृष्ट उपादेय वस्तु क्या है ''गुरुवचनं'' दूसरी बात यहाँ कह रहे हैं-

केवल गुरुवचन सुन लेना मात्र उपादेय नहीं है सुनो-सुनने के साथ-साथ कुछ गुनो। अकेले सुनते-सुनते रहोगे गुनोगे नहीं तो सुनना कपूर की तरह से उड़ जायेगा। ज्यादा देर ठहर नहीं पायेगा। जो सुना है उसे दिनभर गुनते रहो, जुगाली करते रहो अपने सरस्वती के भण्डार को भरते रहो ज्यों-ज्यों खर्चे त्यों-त्यों बढ़े। तो बार-बार सुनो। अब केवल सुनो और गुनो मत उसमें से अपनी शक्ति के अनुसार जो दिखाई देता है उसे चुनो। चुनना भी जरूरी है। सुनना तो सम्यक्त्व का कारण, गुनना ज्ञान का कारण और चुन लेना चारित्र का कारण है। इन तीन से ही तो कल्याण होता है सुनो, गुनो और चुनो। जो व्यक्ति सुनता है, गुनता है, चुनता है ऐसा व्यक्ति निसंदेह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

जीवन में गुरुता को प्राप्त कर लेता है। गुरु कैसे बनेगा ? गुरु वही बनता है जो अकेला लघु नहीं डबल लघु (।।) हो जाये। लघु की एक मात्रा दो हो जाये तो गुरु। लघु तो सामान्य व्यक्ति है लघुता जब जीवन में दुगुनी हो जाती है सामान्य से दुगुनी लघुता गुरुता को प्राप्त कर लेती है। और गुरु-

लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।
चींटी ले शक्कर चली, हाथी के सिर धूल॥

लघुता से प्रभुता मिलती है। यहाँ पर आचार्य महाराज कह रहे हैं ये तीन चीज ग्रहण करो-ये उपादेय हैं, और सुनने से क्या होता है ? चित्त आनंदित होता है यदि चित्त में आनंद नहीं आये तो सुनना बेकार। एक बात बतायें-

जब बारिश होती है तो क्या होता है मिट्टी फूलती है, तो फूलने से क्या होता है जो उसके अंदर का ताप है, विकार है वह निकल जाता है और उसमें सत्व-सत्व रह जाता है और फूलने से उसकी योग्यता प्रकट होने लगती है। बीज यदि बोरे में रखा है तो उत्पन्न नहीं होगा, जब वह शीतलता में जायेगा, फूलेगा तब उसके अंदर से अंकुर फूटेगा। फूलेगा नहीं तब तक अंकुर पैदा हो नहीं सकता, श्रावकों को धर्म का उपदेश ऐसा देना चाहिये जिससे श्रावक अंदर से फूल जाये, कुप्पा हो जाये, उसका मन सरोज खिल जाये, जब उसका मन सरोज खिल जायेगा तो नि:संदेह तुम्हारी आत्मा में कल्याण का बीज उत्पन्न हो जायेगा। सूखी आत्मा कभी उत्पन्न नहीं होती उसे फुलाना जरूरी है। फूलेगा कैसे ? जब आप सुनोगे तो फूलोगे फिर क्या जब गुनोगे तब अंकुर पैदा होगा, अंकुर किसका-संयम का, धर्मध्यान का। स्वयं ही तुम 4 नियम लोगे मैं रोज मंदिर आऊँगा, अभिषेक करूँगा, पुन: चुनना भी प्रारंभ हो जायेगा। कहेगा छोटे-छोटे नियम ही क्या महाराज श्री ये पूरा जीवन ही आपके लिये समर्पित है, जब उसकी आत्मा तृप्त हो जायेगी तब वह स्वयं नियम ले लेगा, किसी को डंडे के जोर से नियम दोगे तो वह कहेगा मैं नहीं लेता बताओ क्या करोगे? देखो सोना एक धातु है। इस सूखी धातु के आभूषण नहीं बनाये जाते, पहले पिघलाना पड़ता है।

सूखी मिट्टी से गागर नहीं बनती पहले मिट्टी को कूट-पीट कर फुलाया जाता है-जब फूल-फूल कर मुलायम हो जाये तब मंगल कलश बनाया जाता है। ऐसे ही श्रावक का चित्त पहले फूल तो जाये, जब फूल जायेगा तब उसमें नि:संदेह फल भी आयेगा। ऐसा नहीं है कि फूल आ रहा है किन्तु फल न आये। उस फूल को तोड़ना नहीं, जल्दी नहीं करना वह फूल गिरेगा तो उसके फल भी आयेंगे उसमें बीज भी होंगे जो दूसरों के काम भी आयेंगे कितने सारे फल बनते चले जायेंगे। तो महानुभाव ! आवश्यक है चित्त का फूलना, जब व्यक्ति फूल जाता है तो उसकी चाल-ढाल सब बदल जाती है। जब खुश होता है प्रसन्नचित्त होता है तो ऐसा लगता है उसका शरीर फूल गया हो, जब दु:खी होता है तब सिकुड़ कर सोता है। फूलने से आकार बढ़ता है, आधार बढ़ता है उसका विचार बढ़ता है, जीवन का आचार भी बढ़ता है। फूलना भी चाहिये किन्तु ऐसे नहीं कि मुँह ही फुला कर बैठ गये। ऐसा नहीं फूलना जिसमें क्रोध के संस्कार हों, क्योंकि इस मुँह फुलाने में क्रोध की अग्नि है और गुरु महाराज के वचनों से जो फूलता है उसमें धर्मामृत

की शीतलता है, बीज जब शीतलता के साथ रहता है तब उसमें अंकुर पैदा होता है और बीज को शीतलता न मिली तो अंकुर उत्पन्न न होगा। बीज को तपते पत्थर पर रखने पर जल जायेगा उत्पन्न नहीं होगा, ऐसे ही चित्त की भूमि का फूलना बहुत जरूरी है, हृदय कमल का खिल जाना बहुत ही आवश्यक है इसलिये पहले क्या करना, क्या सुनना। श्वेताम्बर समाज में एक परम्परा बड़ी अच्छी है वे कहेंगे महाराज श्री ! 'मांगलिक' सुनाओ। वे हाथ जोड़कर बैठ जायेंगे हम सुनायेंगे और वे शांति से सुनेंगे। और हमारे दिगम्बर सम्प्रदाय के लोग क्या करेंगे-हम कहेंगे णमो अरिहंताणं वे कहेंगे णमो सिद्धाणं-अब बोलो क्या बोलोगे, यदि नहीं बोलोगे तो वे कहेंगे णमो आइरियाणं तुम भूल गये देखो हमें याद है। भईया ! जब तुम्हें याद है तो हमारे पास काहे के लिये आये। आये हो तो पहले सुनना सीखो। दौलत राम जी ने भी क्या कहा-

''ताहि 'सुनो' भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।''

जो व्यक्ति सुन सकता है वही व्यक्ति अपना कल्याण कर सकता है बोलने वाले व्यक्ति का कल्याण नहीं है। संसार में सुनने वाले कम बोलने वाले ज्यादा हैं। जो ज्यादा होते हैं उनका महत्व कम होता है ऐसा क्यों ? कारण यह है कि बोलने की शक्ति तो दो इन्द्रिय से लेकर के पंचेन्द्रिय तक सबकी है और सुनने की शक्ति सिर्फ पंचेन्द्रिय की, इसलिये सुनने वाला पंचेन्द्रिय जीव अपना कल्याण कर सकता है बोलने वाला अपना कल्याण नहीं कर सकता। मन स्थिर कर सुनने वाला अपना कल्याण कर सकता है। हम अभी बोल रहे तो बोलते-बोलते हमारा कल्याण नहीं होगा ये पक्की बात है। जब आँख बंद कर बैठ जायेंगे चित्त की आवाज को जब सुनेंगे तब कल्याण है। केवली भगवान भी जब तक उनकी दिव्यध्वनि खिरती है तब तक उनका कल्याण नहीं जब योग-निरोध कर लेते हैं आत्मा की ध्वनि को सुनते हैं तब कल्याण होता है, इसलिये सुनना जरूरी है। सुनने से चित्त आनंदित होता है बोलने से इतना आनंदित नहीं होता, सुनने से ऊर्जा मिलती है, बोलने से ऊर्जा शक्ति खर्च होती है, सुनने से चित्त विकसित होता। जिस चीज में आनंद आता है उसके आनंद से अंतरंग में Energy आती है, शक्ति मिलती है, रोग निरोधक क्षमता बढ़ती है जब व्यक्ति का उत्साह बढ़ता चला जाता है तब छोटे से छोटा व्यक्ति बड़े से बड़ा काम कर लेता है। तो महानुभाव ! दूसरी बात ये भी है सुनने की भी कला होती है कैसे सुनना-इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देना, या मुँह से निकाल देना, नहीं ! सुनकर अंतरंग में ले जाना।

एक राजा के दरबार में एक मूर्तिकार आया तीन मूर्ति लाया बोला एक मूर्ति की कीमत है दो कोड़ी, दूसरी मूर्ति की कीमत है दस हजार, तीसरी मूर्ति की कीमत जितना भी दे दो कम पड़ जायेगा। लोगों ने कहा-भई ! ऐसा कैसा मूर्तिकार है तीनों मूर्तियों एक ही जैसी हैं फिर फर्क क्यों?

वृद्ध मंत्री ने कहा-महाराज ! फर्क है कौन सी मूर्ति 2 कोड़ी की, कौन सी 10 हजार की और कौन सी बेशकीमती है। इसके लिये मंत्री ने धागा लिया एक मूर्ति के एक कान में डाला वह दूसरे कान से पार हो गया, उस मूर्ति की कीमत दो कोड़ी थीा दूसरी में धागा डाला, धागा मुँह से निकला इसकी कीमत दस हजार रु. ग्रहण तो कर लिया किन्तु दूसरे को सुनायेगा अवश्य। और तीसरी मूर्ति में धागा डाला तो धागा न कान से निकला, न मुँह से निकला सीधे अंदर चला गया, तो कहा महाराज इसकी कीमत तो बताई नहीं जा सकती अनमोल है। तो महानुभाव ! सुनना एक कला है, सुनना कैसे है न केवल सुनकर दूसरे कान से निकालना है, न मुँह से निकालना अपितु सुनने के उपरांत उसे अंदर में ग्रहण करना है। जब अंदर में ग्रहण किया जाता है तभी वह सार्थक होता है, अंदर में ग्रहण न किया जाये तो वह सार्थक नहीं, यदि चना डिब्बे के ऊपर रख दिया पानी में नहीं डाला तो क्या वह फूलेगा ? नहीं-यदि उसे पानी में डाल दिया जाये तो वह फूल जायेगा। यदि माना चने पर गीला पोंछा लगा दिया तो क्या फूलेगा, दूर से पानी दिखाने से जैसे चना न भींगेगा न फूलेगा पानी में जाकर डूबकर, अवगाहन कर खुशी से फूल जायेगा तो ऐसे ही शब्द जब तुम्हारे कान से निकल जायें तो तुम्हारी चेतना आनंदित नहीं होगी, दूसरे को सुना भी दो तो भी आनंद नहीं आयेगा जब एकांत में बैठकर चिंतन करेंगे, तो बहुत आनंद आयेगा। महानुभाव ! जब भी हम शब्द सुनते हैं उसे हम अंदर में ले जायें सुनें गुने और योग्य को चुनें तब तो ठीक है अन्यथा सुनना सार्थक व सफल नहीं।

यहाँ पहली पंक्ति में आपने सुना-''भगवन् किमुपादेयं''.... भगवान इस संसार में ग्रहण करने योग्य उपादेय वस्तु सबसे उत्कृष्ट वस्तु क्या है? तो बताया **गुरुवचनं** ''गुरु वचन'' लघु वचन उपादेय नहीं है, गुरु और लघु में अंतर क्या है गुरु वचन वे हैं जो गुरुता का कारण हैं, प्रभुता का कारण हैं। प्रभु परमात्मा की वाणी गुरुवचन कहलाती है तीर्थंकर पंचपरमेष्ठी की वाणी, आत्मकल्याण के वचन गुरुवचन कहे जाते हैं। गुरु वचन कहो या प्रवचन कहो। प्रकृष्टवचन 'प्रवचन' ही गुरु वचन हैं। लघुवचन-संसार के बोलचाल के जो वचन हैं वे लघु वचन है जो संसार में डुबाने वाले हैं इसीलिये यहाँ कह रहे हैं कि संसार में यदि उपादेय हैं तो गुरुवचन हैं लघुवचन नहीं। भारी भरकम बात हो, हल्की फुल्की बात के लिये कहते हैं अरे ! ये तो ऐसी हल्की फुल्की बात करते रहते हैं। जब कोई व्यक्ति कम बोलता है तो उसकी एक बात भी भारी भरकम बहुत महत्वपूर्ण होती है और जो सुबह शाम बोलता रहता है तो अरे ! इन्हें तो आदत पड़ गयी है ये तो बोलते ही रहते हैं। मशीन की तरह से टेप-रिकॉर्डर चालू हो गया है बंद होने का नाम ही नहीं है तो ऐसे वचनों का लाभ नहीं।

आगे की कारिका को कल देखेंगे।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

(50)

सद्गुरु कौन ?

आगे कह रहे हैं–

हेयं किं अकार्यं–हेय क्या है–अकार्य। पहले जानें कार्य क्या है ? कार्य शब्द जो बना है वह इय प्रत्यय लगाने से बना है कार्य-अर्थात् करने योग्य। संसार में हेय वस्तु क्या है ? छोड़ने के योग्य क्या है ? मल, विकार, अकार्य, दुर्वचन, दुर्चेष्टायें, दुरावस्था ये सब हेय हैं ये ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं इन सबको छोड़ो।

एक बात ध्यान रखना कार्य और अकार्य एक साथ नहीं चल सकते, तुम सोचो एक साथ एक ही बर्तन में ठंडा और गरम पदार्थ रख जाये तो न चलेगा सब गड़बड़ हो जायेगा। पहली बात है यदि अच्छाई चाहिये तो सबसे पहले बुराई की नींव को उखाड़ फेकों। यदि कच्ची ईंट से नींव भर दी है और पुनः बड़े-बड़े पत्थरों से महल बनाना चाहो तो न चलेगा तो ऐसे ही जीवन की नींव पुख्ता होना चाहिये। पुख्ता नींव का आशय है सम्यक्दर्शन और पुख्ता दीवारों, पिलर का आशय है सम्यग्ज्ञान। और पुख्ता छत है चारित्र Finishing करने में बहुत टाईम लगता है जिसका नाम है सम्यक्तप खर्चा बहुत आता है उसके उपरान्त जब तैयार हो गया अब उसे सजाना है इसका नाम है ध्यान। ध्यान बिल्कुल अंत की चीज है। लोग आते हैं कहते हैं महाराज जी ध्यान करना सिखाओ कैसे आत्मा का ध्यान करते हैं। अभी नींव खुदी नहीं मकान सजाने लगे अर्थात् ध्यान तो बाद की चीज है उससे पहले बहुत कुछ करना है सम्यक्त्व की नींव खोदो, ज्ञान के पिलर लगाओ, चारित्र रूपी छत डालो उसके बाद में अच्छा भवन बनाओ सामर्थ्यानुसार टाईल आदि लगाओ अर्थात् शक्तिनुसार तप आदि करो पुनः घर में सामान की सेटिंग कहाँ टी.वी., कहाँ ए. सी. फिट करना है। कैसे सजाना है अर्थात् क्रमशः चलो तभी ठीक है। 'अकार्य हेयं' जो अकार्य हैं वे न करने के योग्य हैं और जो कार्य हैं वे करने के योग्य हैं। अकार्य क्या हैं-सप्तव्यसन, पाँच पाप हिंसादि भाव, कषाय इत्यादि। जिन कार्यों के करने से, जिन वचनों के बोलने से, जिन विचारों का चिंतवन करने से आत्मा संसार में भ्रमण करती है दुर्गति में जाती है वे सब अकार्य हैं इस सयानी सी, भोली सी सच्ची सी आत्मा को उन अकार्यों को छोड़ देना चाहिये और यदि वह नहीं छोड़ेगी तो वह कभी दुःखों के जाल से मुक्त नहीं हो सकेगी।

अगली पंक्ति में क्या कह रहे हैं-

'को गुरु' - गुरु कौन है ?

गुरु शब्द का अर्थ इतना हल्का नहीं है जितना कि आजकल बना दिया गया है, गुरु शब्द का अर्थ है बहुत भारी ! जिसके सामने पर्वत भी झुक जाये। जिसके सामने आकाश भी छोटा पड़

जाये, समुद्र भी स्वयं में शरमा जाये और वह समुद्र भी चुल्लुभर पानी में डूबने को तैयार हो जाये गुरु के सामने। गुरु वह है जिसकी दृष्टि में पूरी वसुधा छोटी पड़ जाये उसकी दृष्टि और आगे चली जाये। गुरु का अर्थ होता है जो गुणों में भारी है, श्रेष्ठ है वह गुरु होता है। वह जिसने हमारे अंतरंग के नेत्रों को उद्घाटित किया है आप पढ़ते हैं–

''अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अज्ञानतिमिरान्धानं–अज्ञान का अंधकार आप कहेंगे अभी तो महाराज श्री आप तीन प्रकार के अंधकार कह रहे थे, बात ये है कि बीच वाले को पकड़ लो तो आजू–बाजू वाले स्वयं पकड़ में आ जायेंगे। अज्ञान बीच का है एक साईड में मिथ्यात्व एक साईड में असंयम। बीच वाले को पकड़ो यदि किसी व्यक्ति का धड़ पकड़ लो तो दांया–बांया हाथ अपने आप पकड़ में आ जाता है। जहाँ अज्ञान है वहाँ मिथ्यात्व और असंयम दोनों ही आ जाते हैं जैसे जहाँ सम्यग्ज्ञान है वहाँ सम्यक्दर्शन आ जाता है और सम्यग्ज्ञान है वहाँ सम्यक्चारित्र आ जायेगा आज नहीं तो कल आ जायेगा। तो ''अज्ञानतिमिरान्धानां'' जिन्होंने अज्ञान के तिमिर को नष्ट किया है ''ज्ञानांजनशलाकया'' ज्ञान का कज्जल लेकर 'शलाकया' नेत्रों को उन्मीलित कर दिया क्योंकि उस कालिमा से कालिमा को निकाला जाता है जो चीज होती है वह उसी को खींचती है काजल लगाने से अंदर की कालिमा निकल जाती है– Money begets money धन से धन आता है।

एक व्यक्ति चाँदी का सिक्का लेकर सेठ की हवेली के सामने जहाँ चांदी का ढेर लगा था वहाँ गया। वह प्रवचन सुनकर आया था Money begets money धन से धन आता है, वह एक रुपया लेकर चांदी के ढेर के पास खड़ा हो गया उस ढेर को रुपया दिखाता जा रहा था और कह रहा था आजा–आजा। उसने सोचा ऐसे नहीं आयेगा इस सिक्के को ढेर में डाल दूँ तो ये बहुत सारे सिक्कों को अपने साथ ले आयेगा, और उसने वह सिक्का उस ढेर में डाल दिया जैसे ही सिक्का ढेर में फेंका त्यों ही उस हवेली का मालिक बाहर निकल के आ गया, अब वह व्यक्ति उस मालिक से बोला आपके ढेर में मेरा चांदी का सिक्का है। मालिक बोला अरे ! यहाँ कहाँ से आ गया तेरा सिक्का। वह व्यक्ति बोला–तो क्या महाराज झूठ बोल रहे थे, वह मालिक बोला–क्यों क्या कह रहे थे, बोला–वे कह रहे थे कि–Money begets money पैसे को पैसे खींचता है मैं अपने पैसे के द्वारा ये पैसे खींच रहा था वह तो खींचा ही नहीं वह बोला–मेरे धन ने तेरा धन खींच लिया चल भाग यहाँ से। तो Money begets money जो बड़ा होता है वह छोटे को खींचता है। यदि चूहा फंस जाये तो बिल्ली उसे खींच सकती है और यदि हाथी फंस जाये तो चूहा थोड़े ही ना खींचेगा उसे दलदल में से। छोटा बड़े को कैसे खींचेगा। तो बात यह है कि–'को गुरु' गुरु

कौन जो गुणों में भारी है गुणों में भारी वह जिसके पास रत्न है, बड़ा व्यक्ति कौन है जो अमीर हो धन सम्पत्ति वाला हो यदि गुरु के पास कुछ भी नहीं है कंगाल हैं तो वास्तव में वे हेय हैं। दुनिया तो अपेक्षा करेगी ही करेगी, गुड़ में मिठास होगी तो आपको Invitation Card छपवाने की आवश्यकता नहीं है चीटीं अपने आप आ जायेगी, फूल में खुशबू होगी तो आपको कहीं पत्रिका डालने की जरूरत नहीं भंवरे स्वयं अपने आप आ जायेंगे, ऐसे ही गुरु में जहाँ गुरुता होगी आपको बुलाने की आवश्यकता नहीं हैं जो गुणों का ग्राहक होगा वह अपने आप आ जायेगा बिना बुलाये आ जायेगा, धक्का देंगे तब भी आयेगा। तो गुरु की यहाँ बात कही–जो रत्नों से सहित है जो मालामाल है **''धनवाले कंगाल है गुरुवर आप हो मालामाल''** जिसे तुम धन मान रहे हो वास्तव में तो वह धन है ही नहीं उस धन को प्राप्त करके तो लोग निर्धन हो जाते है क्यों ? क्योंकि उस धन को प्राप्त करके हम अपने असली धन को भूल जाते हैं प्राप्त ही नहीं करते उसके चक्कर में पड़कर के निर्धन हो जाते हैं। **''श्रुतं व्रतं तचो येषां धनं परम दुर्लभं''** जिसके पास श्रुत व्रत और तप है यही परम दुर्लभ धन है और जिसके पास ये नहीं है तो-

ते नरा धनिनां प्रोक्ता शेषा निर्धनिना मता।''

वे व्यक्ति धन्य है जिनके पास श्रुतं-सम्यक्ज्ञान व्रतं-सम्यक्चारित्र और तपं-तपस्या ये 3 जिसके पास हैं वही वास्तव में धनिक है शेष सभी तो निर्धन हैं गरीब हैं, कंगाल हैं, भिखमंगे हैं। जो नंगे नहीं हैं वे शेष सभी भिखमंगे हैं। और जो अंतरंग से और बहिरंग से नंगे हो गये वे ही वास्तव में चंगे हैं, उनका मन चंगा है **''मंनचंगा तो कटौती में गंगा''** जो अंदर बाहर से नग्न नहीं हैं तो अपनी आत्मा में मग्न नहीं हैं जो अपनी आत्मा में मग्न नहीं है उसके जीवन में विघ्न ही विघ्न हैं वह तो गरीब है। देखो ! यदि तुम्हें कोई लोहे की कटोरी दे रहा है। फ्री में, तो तुम कहोगे फ्री में मिल रही है तो कौन बुरी है, लेकिन कोई दूसरा व्यक्ति कहे तुम इस स्टील की कटोरी को फेंक दो तो मैं तुम्हें पीतल की कटोरी दूँगा, तुम सोचोगे लोहे की तो 2 रु. की कटोरी फेंक दो क्या फर्क पड़ता है। पीतल की ले लो 5-10 रु. की तो होगी और यदि तीसरा कोई आकर कहे पीतल की कटोरी फेंक दो मैं तुम्हें चांदी की कटोरी दूँगा तो तुम जानते ही हो चांदी की कीमत। तो पीतल ने लोहा फिकवा दिया, चांदी ने पीतल फिकवा दिया, और कोई व्यक्ति कहे मैं तुम्हें सोने की कटोरी दूँगा किन्तु शर्त यह है कि चांदी की कटोरी फेंक दो अब कोई सोने की जगह Platinum की दूँगा ऐसा कहे तो, वह सोने को फेंक देगा, अगर कोई कहे तुम इसे फेंको मैं तो तुम्हें शुद्ध हीरे का कटोरा दूँगा तो वह उस पहले वाले को फेंक देगा। कौन फेंकेगा ?-लोहा किसने फेंका जो उस लोहे व पीतल के अंतर को जानता है। पीतल किसने फेंकी-जो पीतल के स्वभाव गुण रूप मूल्य को जानता है, चांदी किसने फेंकी ? जिसने स्वर्ण चांदी के मूल्य के अंतर का ज्ञान कर रखा हो और सोना भी किसने फेंका जिसे प्लेटिनम का ज्ञान है। प्लेटिनम किसने

फेंकी जिसे हीरे का मूल्य पता है। तो जब बहुमूल्य वस्तु मिल जाती है तो अल्प मूल्य वाली वस्तु का त्याग करने में कोई कष्ट नहीं होता। लोग कहते हैं-श्री आदिनाथ, शांतिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर भगवान आदि सब ने इतना वैभव छोड़ दिया कैसे छोड़ दिया ? माता बहिनें कहती हैं-महाराज कैसे छोड़ दिया आपने घर द्वार हमसे तो टूटी-फूटी झोंपड़ी नहीं छोड़ी जाती आप कैसे छोड़कर आ गये ? तो भईया ! छोड़ा नहीं प्राप्त किया है। प्राप्त करने में निकृष्ट वस्तु अपने आप छूट जाती है। जैसे आप आगे बढ़ते हो तो पीछे वाला पैर जिस जगह रखा था उस जगह को छोड़ दिया नहीं छोड़ते तो तुम्हारा पैर आगे नहीं जाता। पीछे की भूमिका का त्याग किये बिना कभी आगे की भूमिका की प्राप्ति नहीं हो सकती। तो जो आगे की भूमिका प्राप्त करना चाहते हैं उनकी पीछे की भूमिका स्वतः छूट जाती है तो भगवान महावीर स्वामी ने छोड़ा नहीं अंतर के दिव्य शाश्वत वे रत्न प्राप्त कर लिये। तो बाहर की मिट्टी छोड़ दो ये तो कूड़ा-कचरा है। जिसको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी, आत्म ज्योति प्राप्त हो गयी उसके लिये संसार का वैभव तो कूड़ा कचरा है आप पढ़ते हैं-

चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग।
जीरण तृण सम गिनत हैं सम्यग् दृष्टि लोग॥

काक विष्टा नहीं कहना चाहिये क्योंकि पुण्य के फल को हम काकविष्टा नहीं कह सकते अन्यथा तीर्थंकर के पास जो वैभव है चाहे गृहस्थ जीवन में चाहे साधु अवस्था में समवशरण आदि बाह्य लक्ष्मी को काक विष्टा नहीं कह सकते है। उसे जीर्ण तृण सम, तिनका कह सकते हैं जिससे आत्मा का सरोकार नहीं जीर्ण तिनके से तो दांत भी नहीं कुरेदे जा सकते तिनका थोड़ा ठीक हो तो दांत कुरेदे जा सकते हैं तो राज-पाट ऐसे त्याग दिया कि अब कुछ काम का नहीं रहा। जब ये मेरे काम का था तब मैं किसी काम का नहीं था और जब ये मेरे किसी काम का नहीं रहा तब मैं वास्तव में काम का बन गया, अब मैं आतम राम का बन गया हूँ पहले तो मैं विषय भोगों का दास था अब मैं राम की दृष्टि में काम का हूँ पहले मैं दुनिया की दृष्टि में काम का था पहले दाम के काम का था, जो राम के काम का होता है वह दाम के काम का नहीं रहता एक पैसा भी नहीं कमा पाता, त्यागी व्रती बन गये क्या करना पैसे का छाती पर रखकर ले जायेंगे क्या ? अब तो भगवान का नाम जपना है। राम का नाम। आप कहेंगे महाराज जी आप राम का नाम लेने को कह रहे हैं ऐसी क्या बात है देखो राम से और आम से बहुत प्यार है क्योंकि राम में हमारे सभी तीर्थंकर समाये है राम कहते हैं तो ऋषभदेव से महावीर तक और आम कहते हैं तो आदिनाथ से महावीर तक सब दिखाई दे जाते हैं इसलिये राम को याद कर लेते हैं। महानुभाव ! जो व्यक्ति दाम के काम का हो और ध्यान रखना एक अच्छी बात कहूँ कड़वी बात कहूँ-वैसे मैं कहता नहीं मीठी ज्यादा कहता हूँ किन्तु मीठी में कड़वी कह देता हूँ-आप लोग यदि वैराग्य

लेना चाहें तो आपके घर वाले आपको स्वीकृति नहीं देंगे क्यों ? अभी तुम्हारा शरीर कुछ दाम कमाने लायक है जब शरीर तुम्हारा बूढ़ा हो जायेगा, चला-फिरा नहीं जायेगा तुम्हारे परिवार वाले, पुत्र पुत्रवधू तुम्हें घर के बाहर निकाल देंगे दादा जी अब आप आश्रम में चले जाओ, अब तुम दाम के और काम के नहीं रहे तो निकालकर अलग कर दिये जाओगे। यदि युवा बालक दीक्षा लेता है तो दीक्षा नहीं लेने देते वह दाम के काम का है कमाकर के खिलायेगा और बूढ़ा कोई दीक्षा लेता है तो कहते हैं अच्छा है महाराज जी इनकी सुधर गयी। अभी तक इन ने कमा-कमा कर हमें खिलाया अब बूढ़े हो गये। संसार बड़ा स्वार्थी है कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाये वह काम न कर पाये तो कौन सेवा करे, कमाता भी नहीं, जा रहा है दीक्षा लेने तो चलो जाने दो। और जो कामवाला होगा तो कहोगे-क्यों जाते हो ? घर में क्या कमी है अच्छे से रहो, सभी मनायेंगे तो जब तक ये शरीर किसी के दाम के काम का रहता है तब उसे छोड़ते नहीं हैं और जब दाम के काम का नहीं रहता तब छोड़ देते हैं। एक बात और कहें कड़वी है चिरायते के काढ़े जैसी किसी बाप के चार बेटे हैं, एक बेटा बहुत कमाई करता है, दूसरा बेटा बिल्कुल निठल्ला है अनर्थकारी उपद्रवकारी है, तीसरा बेटा न अनर्थकारी है न उपद्रव करता है शान्त रहता है चौथा बेटा जो है वह पिताजी की हाँ में हाँ मिलाता है जो एक कमेरा (कमाने वाला) बेटा है और पूरा परिवार खाता है यदि युवा अवस्था में उसकी मृत्यु हो जाये तो ! माता-पिता पूरा परिवार छः महीने तक आँसू रोक न पायेगा, दिन-रात नींद न आये बस ! वही तो एक कमेरा था हम भी मर जाते तो अच्छा रहता, और जो निठल्ला बैठा है वह मर गया तो कहेंगे-अब क्या करें महाराज भगवान के आगे कौन की चलनी है उसकी आयु पूरी हो गयी तो बताओ अब क्या कर सकते हैं, चार दिन चर्चा करेंगे फिर वैसे ही रहने लगेंगे। कड़वी बात है कि नहीं, आप ही बताओ ! बेटे चारों उसी के हैं। पर एक बेटा जो पूरे परिवार, नातेदार समाज वालों के लिये कर रहा है तो उसे सब चाहते हैं यदि जब किसी के लिये नहीं करे तो क्या कहेंगे तुझसे भला तो वह मिट्टी का आदमी है जिसे खेत में खड़ा कर दो कम से कम पक्षी से रक्षा तो होगी तू तो उससे भी गया बीता है यहाँ पड़ा-पड़ा खाट तोड़ता है न काम का न काज का ढाई सेर अनाज का। तो महानुभाव ! ये कड़वी बातें है जब व्यक्ति का शरीर दाम के काम का दिखाई देता है तो संसार उसे छोड़ना नहीं चाहता और जब राम के काम का होता है तो उसका मन दाम कमाने में नहीं लगता। महानुभाव !

''को गुरु'' - गुरु कौन है ?

अधिगत तत्व-जिसने तत्व को अपने अधिकार में ले लिया है जिसने अपने अधिकार में जमीन ले ली जायदाद ले ली वह सब बेकार पर जिसने अपने अधिकार में तत्व को ले लिया है। तत्व मतलब 'स्वभाव'-जो स्वभाव को जान चुका है किसका क्या स्वभाव है जो जान गया है वास्तव में वही गुरु है, जो स्वभाव को नहीं जान पाया कि संसार के पदार्थों का क्या स्वभाव है

इसे जो नहीं जानता है वह मूढ है, पर्यायों में उलझा हुआ है। **''पज्जय मूढा पर समया''** जो पर्याय में मूढ़ है वह पर समय है वह स्व समय हो ही नहीं सकता, ज्ञानी हो ही नहीं सकता। तो 'को गुरु'-गुरु की दो बात कही-एक तो-अज्ञान तिमिरान्धानां.... जिसने नेत्रों को उद्घाटित किया केवल ज्ञान को दिया, अरे ! ज्ञान के साथ दर्शन और चारित्र तो मिल जाता है कैसे-यदि तुम दुकान पर शक्कर लेने गये तो शक्कर क्या वह तुम्हें हाथ में देगा नहीं पैकेट में देगा ऐसे ही जब ज्ञान दिया जाता है तो वह सम्यक्दर्शन के पैकेट में रखकर दिया जाता है। तो सम्यग्ज्ञान जब गुरु देते हैं तो उसके आधार रूप सम्यक्दर्शन तो देते ही हैं उसके उपरांत जब तुमने सम्यक्ज्ञान ले लिया जब उस वस्तु को खाओगे, चखोगे, भोगोगे तो वह चारित्र है सम्यग्ज्ञान का भोगोपभोग करना ही सम्यक्चारित्र है। सम्यग्ज्ञान में चित्त की एकता ही ध्यान है संयम है तप है, तो गुरु ज्ञान का प्रकाश ही नहीं देते उन्होंने केवलज्ञान का प्रकाश ही नहीं दिया श्रद्धा का विश्वास भी दिया है और संयम का उजास भी दिया है, ये सब कुछ देते हैं। इसीलिए कुंदकुंद स्वामी वट्टकेर आचार्य ने मूलाचार में लिखा है-आप सब कुछ देते हो इसीलिए देओ, दूसरा कहेगा भगवान तो वीतरागी हैं कुछ देते ही नहीं।

''आरोग्ग बोहिलाहं दिंतु समाहिं च मे जिण वरिंदा।''

ये पढ़ते हैं। तो वे भगवान देते हैं क्या? हाँ देते हैं। अरे ! देते हैं तो तुम्हारे भगवान सरागी हो गये, तुम कैसे वीतरागी को मानते हो? और नहीं देते हैं तो फिर इतने बड़े आचार्य कैसे कहते हैं-आरोग्ग बोहि लाहं.....अथवा दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ.....। भगवान मझे आरोग्य की प्राप्ति हो, बोधि की प्राप्ति हो। इतने बड़े आचार्य क्यों मांग रहे हैं। भाई ! ये भक्ति की भाषा है, वैकल्पिक भाषा है वे जानते हैं किंतु जब भक्ति उत्कृष्टता को प्राप्त होती है तब अनायास ही उसके फल की प्राप्ति अर्थात् उन जैसा बनने की भावना होती है। फिर भक्त उनका गुणगान करते हुए अपने दुखों का भी निवेदन कर देता है अथवा भक्ति में बाधक साधनों से बचने की भी प्रार्थना करता है।

भक्ति करते समय कोई मुक्ति का लक्ष्य बनाता है तो कोई भुक्ति का। जो जैसा लक्ष्य बनाता है वो वैसा फल पाता है। तो गुरु महाराज सम्यक्दर्शन भी देते हैं, सम्यक्ज्ञान भी देते हैं और सम्यक्चारित्र भी देते हैं गुरु वे जिन्होंने तत्वों को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया जो अधिकार में ले लेता है फिर उसका ही होल्ड रहता है तो गुरु का अधिकार हो गया किस तत्व का कैसा स्वभाव है वे सब जानते हैं इसलिये उन्हें पर वस्तु छोड़ने में कभी कष्ट नहीं होता। तो 'को गुरु' 'अधिगत तत्व:'-जो चीज अपने अधिकार क्षेत्र में हो उसका कभी दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि अधिकार तब तक ठहरते हैं जब तक कर्तव्य की भूमि होती है कर्तव्य की झोली में ही

अधिकार के पुष्प संभालकर रखे जा सकते हैं। कर्तव्य की भूमि पर ही अधिकार के वृक्ष उगाये जा सकते हैं बिना कर्तव्य के आधार के अधिकार सुरक्षित नहीं रहते।

अधिकारं परम्प्राप्तं नोपकारं करोति यः।
अकारा लोपमाप्नोति ककारा द्वित्व मुच्यते॥

''अधिकारं परम प्राप्तं'' अधिकार के पद को प्राप्त करके ''नोपकारं करोति यः'' जो दूसरों का उपकार नहीं करता है तो ''अकारालोपमाप्नोति''-उसके जीवन में से अकार का लोप हो जाता है, ''ककाराद्वित्व मुच्यते' और ककार द्वित्व हो जाता है। ऐसा व्यक्ति क्या हो जाता है। अधिकार में से 'अ' निकाल दो और दो 'क' लगा दो तो क्या हो जायेगा धिक्कार हो जायेगा। यदि ऐसा करते हैं तो वह धिक्कारने के योग्य हो जाता है इसलिये तुम्हारे अधिकार क्षेत्र में जो चीज है उसका दुरुपयोग मत करो उसके द्वारा दूसरों का उपकार करो। तो गुरु के पास क्या है अधिकार क्षेत्र में-''तत्व'' है। इसलिये गुरु महाराज दूसरों को तत्व का ज्ञान देते हैं, जो बात तथ्य की नहीं है वे सब नहीं कहते। अच्छा ! तो महाराज जी आप ये इतनी सारी बातें कह रहें हैं तो क्या वे सभी तथ्य की बातें हैं। देखो भाई ! आपकी बात ठीक है। जितनी बातें हम कह रहे हैं वे सभी तो तथ्य की नहीं है। किन्तु तथ्य को देने के लिये हमें कुछ अतथ्य की बातें कहनी पड़ती हैं। बात ये है कि जब तुम दूध को गरम करोगे तब दूध को गैस पर नहीं डाला जाता उस पर बर्तन रखा जाता है। इसलिये हम तुम्हें तथ्य की बात को अतथ्य के बर्तन में रखकर दे रहे हैं यदि तुम सोने की अंगूठी लेने के लिये गये दुकान पर, तो क्या सुनार वह अंगूठी तुम्हें सोने की पेटी में रखकर देगा क्या ? नहीं ना, वह डिब्बी तो अलग से होगी, तो ऐसे ही तत्व को देने के लिये तत्व की पेटी में नहीं अतथ्य की पेटी में रखकर देंगे। अतत्व अलग है क्योंकि तुम अनादिकाल से अतत्व पर मोहित हो गये हो तुम्हें अतत्व का परिचय हो गया है। इसलिए तुम्हें उसी पेटी में रखकर देना पड़ेगा। जैसे बालक औषधि नहीं खाता है तो बालक को औषधि देने के लिये उसे पता है कि बताशा मीठा होता है। तो माँ उस औषधि को बताशे में रखकर देगी, लड्डू के बारे में पता है तो माँ उस औषधि को लड्डू में मिलाकर के देगी, जिस चीज को तुम जानते हो आप सोच रहे होंगे महाराज जी घंटे दो घंटे बोलते हैं तो क्या सब तत्त्व की बातें बोलते हैं ? भईया! पहले हम तुम्हें अतत्व से मोहित करते हैं। फिर उस अतत्व की पुड़िया में तथ्य की बात को रखकर देते हैं जब घर जाकर खोलोगे तब तुम्हें लगेगा कि हाँ ये तो वास्तव में बड़े तथ्य की बात है। तो ऐसे ही जब तक तुम्हारा परिचय रतन से नहीं हुआ अब तक अतत्व की सोने की पेटी ही देनी पड़ती है आपको तथ्य की बात रोटी में घी की तरह चुपड़ के दे रहे हैं वैसे ही घी खा नहीं सकते, तो कुछ तो तुम्हारे जीवन में तथ्य पहुँचे, रोटी भी आवश्यक है। अकेले घी से काम नहीं चलेगा क्या समझे ? कोई व्यक्ति 10 करोड़ का हीरा गले में लटका कर चला जाये और वस्त्र धारण न करे,

पहुँच जाये सभा में तो क्या सम्मान को प्राप्त होगा ? हीरा 50 करोड़ का है तो क्या यदि कपड़े 5000 के भी पहन कर आ जाता तो हीरा तुझ पर शोभा देता। तो उस हीरे के लिये वेश भी तो चाहिये। ऐसे ही हम तुम्हें तथ्य की बात तो बताते हैं किन्तु आपके मतलब के जो अतत्व है जिनसे आपका परिचय है उसी कागज की पुड़िया बनाकर के देते हैं, यदि नये कागज की पुड़िया बनाकर देंगे तो आपको करंट लगेगा लेने से घबराओगे, इसलिये हम आपकी चिरपरिचित डिब्बी में रखकर दे रहे हैं। तो महानुभाव गुरु कौन ? जिन्होंने तत्वों को जान लिया है अगली बात-

सत्वहिताभ्युद्यतः सततम्-

सत्व-प्राणी मात्र **हित**-कल्याण **अभिउद्यतः**-चारों तरफ से तैयार **सततं**-निरंतर-जो प्राणी मात्र का कल्याण करने के लिये निरंतर तत्पर हैं वह गुरु हैं।

वह गुरु ऐसा दीपक है जिस दीपक में वह अपने वैभव को भी जान रहा है देख रहा है भोग रहा है जो दूसरों को भी दिव्य प्रकाश देकर दूसरों के बुझे दीपकों को जलाने में समर्थ हो। गुरु वो दर्पण है जिसके सामने जाकर हमें अपना चेहरा दिखाई दे जाता है। गुरु ऐसा कल्पवृक्ष है जिसकी छाया में बैठकर के हमारा पाप और ताप शमित होने लगता है, गुरु वह सरिता है जिसमें अवगाहन करने से हमारा मल, हमारे विद्यमान रागद्वेष की दलदल धुल जाती है कलकल मिट जाती है और पल-पल में आनंद की अनुभूति होने लगती है। गुरु तो वह सरिता का छलछल-कलकल करता हुआ बहाव है, प्रवाह है एक मिनट के लिये भी उसके सामने खड़े हो जाओगे तो तुम्हारे चित्त पर लगी राग-द्वेष की कीचड़ भड़भड़ाकर धुल जायेगी तुम्हारी चेतना निखर जायेगी किन्तु तुम उस मोटी धार के सामने खड़े होने के लिये तैयार कहाँ होते हो, किनारे पर खड़े होकर देखते हो वाह ! कितना अच्छा पानी बह रहा है। अरे बीच राह में तो वही खड़ा हो पायेगा जिसमें कुछ दमखम होगी जो गुरु की नदी में, सिन्धु में, सागर में अवगाहन करेगा आज नहीं तो कल वह भी गुरु जैसा बन जायेगा।

महानुभाव ! यहाँ गुरु के बारे में इतनी बात कही गुरु के गुणों का बखान करना असंभव है संक्षेप में यही है कि हमारे पाँच गुरु हैं अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। नीतिकार की अपेक्षा से पाँच गुरु-1. मां 2. पिता 3. शिक्षक, 4. दीक्षा देने वाला 5. समाधि कराने वाला। ये पाँच गुरु हैं जिन्होंने अपने जीवन में गुरु का चयन नहीं करा या जिसे नहीं मिले वे हीन पुण्यात्मा हैं 5 में से किसी को 4, किसी को 3, किसी को 2, किसी को एक मिलते हैं किसी को एक भी नहीं मिले, जिसे 5 के 5 गुरु मिल जाते हैं निः संदेह वह आज नहीं तो कल पंचमगति को प्राप्त कर लेता है। जिसे नहीं मिले वह पाँच पापों में डूब जाता है जिसे एक भी नहीं मिला, वह पंचपरावर्तन में भ्रमण करता रहता है। पाँच गुरु के अभाव में जीवन में पाँच महाव्रत भी नहीं आते,

पाँच समिति भी नहीं आती, पंचेन्द्रिय निरोध भी नहीं आते, पंचगुरु के अभाव में कुछ भी तो नहीं है। और खुद की भी पंचगुरु रूप अवस्था प्राप्त नहीं होती, इसलिये जो पंचगुरु है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी के शब्दों में-पुलाक वकुश कुशील, निर्ग्रंथ, स्नातक इन पाँच गुरु के द्वारा ही हमारा कल्याण होने वाला है यदि पांच गुरु की शरण पकड़ ली तो आज नहीं तो कल पंचकल्याण रूपी विभूति की प्राप्ति हो जायेगी। महानुभाव यहाँ गाथा तीन पूरी हुयी।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

विद्वानों का कर्तव्य

त्वरितं किं कर्त्तव्यं विदुषां संसार सन्ततिच्छेदः।
किं मोक्ष तरोर्बीजं, सम्यग्ज्ञानं क्रिया सहितं॥४॥

विदुषां-विद्वानों को, **त्वरितं** शीघ्र, **किं कर्त्तव्यं**-क्या कर लेना चाहिये **संसार संतति छेदः**-संसार की संतति का छेद कर देना चाहिये अन्यथा आगे समय नहीं है। भरोसा नहीं आज श्वांस चल रही है कब रुक जाये। गर्भ से ही यह मान कर चलो कि रिजर्व डीजल पर हमारी गाड़ी चल रही है टंकी तो खाली है इसीलिये पहले वह काम कर लेना चाहिये जो बाद में न किया जा सके। आत्म कल्याण का कार्य सिर्फ और सिर्फ मनुष्य अवस्था में किया जा सकता है बाद में नहीं, देव बन गये तब भी नहीं, नारकी बन गये तब भी नहीं, पशु पक्षी बन गये तब भी नहीं कर सकते, भोगभूमि चले गये तब भी नहीं कर सकते इसलिये हम कह रहे हैं जब तक श्वास रूपी लाइट नहीं जा रही तब तक अपने चित्त में प्रकाश कर लो। अपने चित्त में ज्ञान का अमृत भर लो तब तक ऐसा काम कर लो जिससे तुम्हारा कल्याण हो जाये, तुम्हारी गाड़ी की लाइट ठीक-ठाक है तब तक इस अंधेरे रास्ते को पार कर लो यदि फुक गयी तो फिर रात भर बैठना पड़ेगा गाड़ी तुम्हारी चलेगी नहीं। तुम्हारे जीवन की लाइट जब तक आ रही है तब तक मोक्षमार्ग में चार कदम चल लो नहीं तो लाइट चली गयी तो मुश्किल हो जायेगी इसलिये 'विदुषां' विद्वानों के लिये कह रहे हैं उपदेश किसके लिये होता है-भव्यों के लिये, विद्वानों के लिये। मूर्खों के लिये उपदेश नहीं होता। नीतिकार कहते हैं-

सीख ताहि दीजिये जाको सीख सुहाय,
बन्दर सीख क्या दीजिये घर बया को जाये॥

बया पक्षी ने बन्दर से कहा-

मानव जैसे हाथ पैर, मानव जैसी काया,
चार माह निकल गये ग्रीष्म काल के, छप्पर तक नहीं बनाया॥

बन्दर बोला अच्छा ! मुझे सीख देने के लिये आयी कहीं की चाची।

वह पानी में भींगता रहा जैसे ही पानी बंद हुआ बया की डाली पर आया और उसके घौंसले को फेंक दिया, मुझे सिखाती हो।

इसीलिये नीतिकारों ने कहा-

यदि तुम किसी अनाड़ी को सीख दोगे तो वह तुम्हारे जीवन में सौ दोष निकालेगा, निर्दोष वस्तु में दोष लगा देगा यदि मूर्ख व्यक्ति को सीख देगें तो। मूर्ख को सीख देने से मनःताप मन

को संताप मिलता है, समय की बरबादी होती है, परिणाम संक्लेशित होते हैं इसलिये उपदेश देते समय आचार्यों ने कहा-भव्यात्मा ! भव्य बंधुओं, धर्मानुरागी महानुभावों, आत्मकल्याण के जिज्ञासुओं, मुमुक्षुओं जिन्हें मोक्ष जाने की इच्छा है, उन्हीं को उपदेश दिया है और उनको क्या जिन्हें कल्याण की इच्छा ही नहीं।

मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिले विरंचसम।
फूले-फलें न बेंत जदपि मेघ बरसे सुधा॥

यदि बादल अमृत की वर्षा भी कर दे, तो जो बेंत की लकड़ी होती है जिसमें फूल-फल नहीं आते। जिन पेड़ पौधों पर फूल-फल नहीं आते उन्हें अमृत से भी सींच दो तब भी फूल आ नहीं जायेंगे और जो मूर्ख व्यक्ति है उसे बृहस्पति जैसा गुरु, तीर्थंकर जैसा गुरु भी मिल जाये तब भी उसके चित्त में आनंद नहीं हो सकता, कल्याण नहीं हो सकता, वह तो मारीच की तरह से भागकर के चला जायेगा।

जो व्यक्ति नरकायु का बंध कर लेता है, वह भगवान के समवशरण तक पहुँच कर भी व्रतों को ग्रहण नहीं कर पायेगा। जो व्यक्ति विद्वान है, जिसकी भवितव्यता अच्छी है, होनहार अच्छी है, कल्याण होने वाला है उसे कहीं न कहीं से अच्छा निमित्त मिल ही जायेगा। जिसकी होनहार अच्छी नहीं है उसे अच्छा निमित्त नहीं मिलेगा। देखो संसार में कमी नहीं है।

सकल पदारथ हैं जग मांहि, कर्महीन नर पावत नाहिं॥

अच्छे को अच्छा, बुरे को बुरा जो जैसा है उसे वैसा ही मिल जाता है लोहे की चुम्बक लोहे की ऑलपिन को ही उठायेगी सोने की कीलों को न उठायेगी, और सोने की चुम्बक सोने को उठायेगी लोहे की कील न उठायेगी, तो संसार में जैसी चुम्बक है उसको वैसी चीज मिल जाती है। कमी किसी की नहीं, इस संसार में सब प्रकार की अवस्था है जो पुण्य का फल तीर्थंकर, चक्रवर्ती ने भोगा था वह आज क्यों नहीं है क्योंकि आज वैसे पुण्यात्मा नहीं हैं, यदि ऐसे पुण्यात्मा होते तो वैसी चीज आज भी मिल जाती, जैसे पुण्यात्मा आज हैं वैसी चीज भी उन्हें मिल रही है। तो महानुभाव ! यहाँ कहा-कि निरंतर जो प्राणी मात्र के कल्याण में संलग्न हैं ऐसे गुरु की जो संगत करता है हे विद्वान ! हे मुमुक्षु, हे कल्याण इच्छुक, हे दु:खों से डरने वाले! हे आत्म हितार्थी ! हे सुखों की वांछा रखने वाले ! तुम्हें तुरंत ही संसार की संतति का छेद कर देना चाहिये ये इसी मनुष्य पर्याय से संभव है। दूसरी बात कही-

''किं मोक्ष तरोर्बीजं'' - मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज क्या है।

सम्यग्ज्ञानं क्रिया सहितं-सम्यक्ज्ञान है परंतु कौन सा, क्रिया के साथ

सम्यग्ज्ञानं क्रिया सहितं-

यहाँ आचार्य सम्यग्ज्ञान पर जोर दे रहे हैं, किन्तु सम्यक् शब्द भी लगा रहे हैं और क्रिया भी लगा रहे हैं। तीनों प्रकाशों की ओर दृष्टि कर रहे हैं, एक भी अंधेरा नहीं चलेगा न मिथ्यात्व का, न अज्ञान का और न असंयम का अंधेरा। तीनों तरफ से प्रकाश होना चाहिये, कहीं एक तरफ से भी प्रकाश नहीं है तो संभव है उधर से ही खतरा आ सकता है इसलिये यहाँ पर बताया कि क्रिया सहित थोड़ा सम्यग्ज्ञान भी पर्याप्त है और क्रिया रहित बहुत सारा ज्ञान भी अपर्याप्त है, बेकार है, जो व्यक्ति कुछ करे ही नहीं उसके लिये बताना बेकार है, और जो व्यक्ति करना चाहता है उसके लिये थोड़ा सा इशारा ही काफी है। न करने वाले के लिये सहारा देना भी बेकार है और करने वाले के लिये इशारा भी पर्याप्त है। महानुभाव ! जो व्यक्ति अपने मन का, तन का, वचन का, धन का सदुपयोग करना जानता है प्रकृति उसे उत्कृष्ट से उत्कृष्ट वस्तु देना चाहती है। जो व्यक्ति अपने तन मन धन वचन या अन्य वस्तु का दुरुपयोग करता है तब प्रकृति भी उससे उन वस्तुओं को छीन लेती है, हमने जिस चीज का आज सदुपयोग किया है वह चीज हमें दुबारा भी मिल सकती है जिसका हमने दुरुपयोग किया है वह हमें जीवन में दुबारा कभी न मिलेगी।

किं पथ्यदनं धर्मः कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।
कः पण्डितो विवेकी, किं विषमवधीरिता गुरवः॥५॥

किं पथ्यदनं धर्म-रास्ते का कलेवा क्या है ? और बुद्धिमान तो वही है जो अपना कलेवा साथ में लेकर चले, ''बगल में तोसा तो फिर किसका भरोसा'' जो अपने साथ में लेकर के चलता है फिर उसे किसी दूसरे का चेहरा नहीं देखना पड़ता, यदि आप कहीं कदाचित् पहुँचे, वहाँ पर तुम्हारा समुचित सम्मान नहीं हुआ, कोई न पूछे तो फिर क्या होगा ? तुम्हें दूसरे का चेहरा तो ताकना पड़ेगा न, अगर अपने पास है तो ताकने की आवश्यकता नहीं। दूसरी बात यह भी है कि जब अपने पास होता है तो सौ लोग पूछते हैं और जब पास नहीं होता है तब पूछने वाले भी नहीं पूछते। ऐसा कई बार होता है जब घर से खाकर के चलोगे तो दुनिया पूछेगी और घर से जिस दिन भूखे निकल गये, शाम तक घर आ जाना कोई पूछेगा भी नहीं। जब है अंदर में तो बाहर भी तुम्हें मिलेगा और अंदर में खाली है तो बाहर में भी कुछ न मिलेगा। किन्तु पेट को उतना ही भरो जिससे तुम्हारा अहित न हो, पेट को खाली उतने ही समय रखो जिसमें तुम्हारा और दूसरे का अहित न हो, ज्यादा पेट भर जाता है तो दूसरों का अहित होने लगता है और पेट ज्यादा खाली होता है तो अपना अहित हो जाता है। इसलिये रहीम को लिखना पड़ा-

रहिमन कहतसू पेट सों क्यों न भयो तू पीठ।
रीते मान बिगाड़ हि भरे बिगाड़े दीठ॥

तो जब तू खाली होता है तब तेरा कोई मान सम्मान नहीं करता, वह भी मान सम्मान नहीं करते जिनको तुम्हारा मान-सम्मान करना चाहिये, वह भी नहीं करते जिन्होंने अभी तक तुम्हारा मान-सम्मान किया है। जब खाली पेट है तब सब निगाहें फिर जाती हैं, यदि तुम खाली पेट जाओगे तो व्यक्ति तुम्हें देखने से इन्कार कर देगा भोजन कर रहा होगा तुम पहुँच गये तो हो सकता है तुमसे पीठ कर के बैठ जाये कहीं ऐसा न हो इससे कहना पड़े कि बैठ जा भोजन करने के लिये और जो भोजन करके आया है उससे वह व्यक्ति भी पूछता है जिस पर स्वयं के भोजन के लिये भी नहीं है। क्योंकि मालूम है इसका पेट भरा है। ये भोजन करेगा ही नहीं, तो पूछने में क्या हर्ज है। पूछ कर ही वाह-वाह लूट लो। तो महानुभाव ! निःसंदेह जब खाली पेट होता है तो सम्मान नहीं मिल पाता और जब पेट ज्यादा भर जाता है तो अहित प्रारंभ हो जाता है दृष्टि फिर जाती है। प्रमाद आता है।

प्रमाद सब पापों की जड़ है। जब भी पेट ज्यादा भर जाता है तब सद्कार्यों में व्यवधान आता है। आलस्य उन सद्कार्यों में जाने नहीं देता रोक देता है। इसलिये कहा-भोजन तो करो पर उतना ही करो जितना इस मशीन के लिये आवश्यक है। यदि आपने किसी गाड़ी में डीजल-पेट्रोल ज्यादा भर दिया तो इसका आशय यह नहीं कि वह गाड़ी तुम्हें ज्यादा जल्दी पहुँचा देगी वह तो उतनी ही स्पीड से चलेगी, ज्यादा नहीं। तो जीवन की गाड़ी के लिये ज्यादा भी हानिकारक है और कम भी। खाओ जीवन की गाड़ी चलाने के लिये, खाने के लिये जीवन की गाड़ी न चलाओ। संसार में दो तरह के प्राणी होते हैं एक जीने के लिये खाते हैं और एक खाने के लिये जीते हैं। जो जीने के लिये खाते हैं वे आज नहीं तो कल संसार सागर से तिर जाते हैं और जो खाने के लिये जीते हैं वे संसार सागर से कभी तिर नहीं पाते, तो ''किं पथ्यदनं'' पथिक के लिए खाने योग्य पदार्थ क्या है ? शरीर के लिये तो अन्न है, मिष्ठान्न, फल, दुग्धादि है किन्तु आत्मा के लिये है 'धर्म'। धर्म ही आत्मा के लिये सबसे अच्छा भोजन है यही उत्कृष्ट भोजन है उसे ग्रहण किये बिना आत्मा कभी तृप्त नहीं होती, यह भोजन ग्रहण करना परम आवश्यक है इस धर्म के कई रूप हैं जैसे अन्न के कई पदार्थ बनाये जा सकते हैं ऐसे ही धर्म के कई रूप हैं जो रूप जिसको पसंद आ जाता है वह अपनी आत्मा की तृप्ति के लिये, आत्मा की क्षुधा का शमन करने के लिये धर्म के उस स्वरूप को स्वीकार कर लेता है और आत्मा को तुष्ट करना चाहता है। यह धर्म का ही रूप है चाहे श्रद्धा है, चाहे सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है, चाहे वैराग्य है, तप है, त्याग है उत्तमक्षमादि भाव ये सभी धर्म के रूप हैं। कोई भी रूप धर्म का स्वरूप प्राप्त कर लो वह आत्मा को तृप्त कर सकता है, कोई भी पगदंडी जो मंजिल तक जाती है यदि सौ पगदंडी मंजिल तक जाती है तो 100 में से किसी एक को पकड़ लो तो मंजिल तक पहुँच जाओगे। और जो मंजिल तक नहीं जाती हैं ऐसी हजार पगदंडियों पर भी चलते रहो तो जीवन में कभी मंजिल तक पहुँचोगे ही नहीं।

जो पहुँचाने वाली है वह एक भी पर्याप्त है और न पहुँचाने वाली हजार पर भी घूमने से कोई लाभ नहीं पगदंडी तो पगदंडी है। तो संसार से पार होने के लिये किसी एक को पकड़ लो, धर्म के इतने रूप है। एक के साथ सब जुड़े हुये हैं वृक्ष की जड़ है, एक जड़ जो मुख्य जड़ होती है और फिर सहायक होती है किन्तु सभी का एक दूसरे से सम्पर्क है, वृक्ष के लिये सभी उपयोगी हैं। कोई भी अनुपयोगी या दुरुपयोगी नहीं है ऐसे ही तुमने एक पगदंडी पकड़ ली उसी पर चलते जाओ जैसे कोई व्यक्ति वृक्ष की वृद्धि के लिये जड़ को सींचता है फलों को, पुष्पों को, तनों को, पत्तों को सींचने की आवश्यकता नहीं।

एके साधें सब सधें सब साधें सब जाये।
जो तू सींचे मूल कू फूलें फले अघाय॥

तो एक को पकड़ो। कभी व्यक्ति सोचता है मेरा कल्याण जाप के लगाने से हो जायेगा, फिर सोचता है पूजा करने से हो जायेगा, फिर कहता है पूजा करने से भी क्या होगा, स्वाध्याय करने से होगा, अरे ! इससे भी क्या होता है तीर्थ यात्रा से होगा, अरे इसे भी छोड़ो ध्यान से होगा, उपवास से होगा आदि-आदि सोचता है, एक को सोचता है एक को छोड़ता है और ऐसे ही पगदंडी पर चार कदम चलता है फिर लौट कर आता है, फिर चार कदम जाता है भले ही सब पगदंडिया सम्यक् हों। सही मंजिल तक पहुँचाने वाली हों किन्तु जो उस पगदंडी पर पूरा पहुँचेगा ही नहीं 99 सीढ़ी चढ़कर वापिस आ जायेगा तब भी मंजिल उसे मिलेगी नहीं, पहले पहली सीढ़ी से लौटे या 99वीं सीढ़ी से लौटे जब तक 100वीं सीढ़ी पर नहीं पहुँचेगा तब तक मंजिल कैसे मिलेगी, ये ही बात हमारे जीवन में होती है जो किसान की तरह होती है, किसान का खेत सूख रहा है पानी के अभाव में, पूरे खेत में कुँआ खोदा एक खोदा, दो खोदे, चार खोदे, दस खोदे किन्तु पानी कहीं नहीं किसान परेशान हो गया, किसी भले आदमी ने पूछा-भाई क्या बात है ? बोला मैंने कुँआ खोदने का बहुत प्रयास किया, बहुत कुऐं खोदे किन्तु पानी नहीं निकला, पूछा कितना खोदा कुँआ तुमने, बोला-चार हाथ, अच्छा ! तुम्हारे नगर में पानी कितने हाथ पर है बोला-16 हाथ पर, तो फिर चार हाथ पर कैसे निकलेगा, मैं जब वह कुँआ खोद रहा था तब सामने वाला एक व्यक्ति आया बोला-मूर्ख ! यहाँ कुँआ खोद रहा है यहाँ तो पानी है ही नहीं, फिर मैंने दूसरा खोदा, पुनः एक व्यक्ति आया-कहा यहाँ पानी नहीं है, ऐसे करके मैंने इतने सारे कुयें खोद डाले। दुनिया की बात सुनने और मानने से कभी चित्त में धर्म का अमृत पैदा नहीं होता। धर्म का अमृत तो तब पैदा होता है जब एक ही लगन से व्यक्ति एक ही रास्ते पर चलता चला जाता है, एक ही लगन हो, तब तो वह व्यक्ति सफलता को प्राप्त कर सकता है, एक ही कुँआ यदि तूने खोद लिया होता तो 100 कुयें खोदने की आवश्यकता नहीं पड़ती, जिस व्यक्ति के जीवन में एक ही गुण आ आये, अंजन चोर तो सप्त व्यसनी था उसने सिर्फ निष्ठा का परिचय दिया, श्रद्धा का

परिचय दिया और एक ही बार में सारी रस्सियाँ काट दीं उसे विश्वास था कि श्रद्धा से कल्याण होगा और सब बातें छोड़ो, श्रद्धा से ही उसका कल्याण हुआ।

श्रद्धा से सब ही तिरे, क्या साधु क्या चोर।
अंजन भयो निरंजना, सेठ वचन के जोर॥

एक चीज से यदि तुम्हारी आत्मा तृप्त नहीं हो रही है तो संभव ये है कि वास्तव में वह चीज तुम्हारी आत्मा तक पहुँची नहीं, यदि तुम्हें प्यास लगी है तो कोई भी कुयें का पानी तुम्हारी प्यास बुझा सकता है किन्तु तुम्हारी मन की प्यास यदि वास्तव में नहीं बुझ रही है तो समझो तुम पानी नहीं पी रहे मृगमरीचिका पी रहे हो, यदि तुम्हें सही में पानी उपलब्ध हो गया होता तो तुम्हारी प्यास बुझ गयी होती तुम्हें कुयें के पानी का स्वाद भी आ गया होता। महानुभाव !

तो आचार्य महोदय कह रहे हैं-''किं पथ्यदनं'' पथिक के लिये खाने के लिये पाथेय, कलेवा क्या है। ''धर्मः'' धर्म है। धर्म को जो स्वीकार नहीं करता है उसे तो फिर भूखा रहना ही पड़ता है धर्म को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा, संसार में जितने भी भव्य जीव हैं उन्हें धर्म स्वीकार करना ही पड़ेगा अब ये आप पर निर्भर करता है चाहे आज स्वीकार कर लो चाहे कल कर लो, चाहे अगले भव में करो, चाहे 100 भव के बाद करो, अपनी आत्मा को मुक्ति तक पहुँचाना है तो धर्म रूपी रथ का सहारा तो लेना पड़ेगा, देख लो कब लेना चाहते हो, जब जाग जाओ तभी सवेरा यदि तुम सहारा आज लेने के लिये समर्थ हो तो आज ही ले लो कल पर मत डालो, क्योंकि कल का भरोसा नहीं है कल कभी आता नहीं धर्म का सहारा लेना बहुत जरूरी है और धर्म का सहारा वही व्यक्ति ले सकता है जिसका मन पवित्र हो। **''कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धं''**-कौन पवित्र है जिसका मन शुद्ध है। शुद्ध मन में ही धर्म का अमृत ठहर पाता है जिसका मन खंडित है धर्म का कितना ही अमृत भरो वह निकलता चला जायेगा। सछिद्र अंजली में जैसे जल नहीं ठहरता है ऐसे ही खंडित मन में, टूटे मन, टूटे हुये दिल में प्रीति नहीं ठहरती, निष्ठा नहीं ठहरती, विनय, भक्ति नहीं ठहरती, त्याग, तपस्या, संयम और ज्ञान नहीं ठहरता है इसलिये जिसका मन खण्डित है, जिसका दिल एक बार टूट गया फिर उससे प्रीति जुड़ती नहीं है चाहे किसी का मन किसी प्रकार टूटा, जैसे दूध फट जाता है फिर उसे दुबारा से दूध नहीं बनाया जा सकता। हाँ बुद्धिमान व्यक्ति है तो फटे दूध का उपयोग किया जा सकता है छैना बनाया जा सकता है, किन्तु उसका दुबारा दूध नहीं बनाया जा सकता है। ऐसे ही यदि किसी व्यक्ति का मन फट गया है तो पुनः उससे वैराग्य धारण किया जा सकता है, आत्म कल्याण किया जा सकता है संसार से पुनः प्रीति नहीं जोड़ी जा सकती किन्तु वह उस व्यक्ति को छोड़कर दूसरी वस्तु से प्रीति जोड़ता है वहाँ मन फट जाता है तो तीसरी से जोड़ता है ऐसे जोड़ते जोड़ते कितने प्रयास किये किन्तु ये मन प्रीति से कभी शांत नहीं होता, ऐसे परवस्तु के प्रेम से मन कभी शांत नहीं होता।

प्रेम की गंगा को बहा के देख लिया,
प्रेम की गंगा में नहा के देख लिया।
प्रेम की गंगा में न मिला सुख किंचित् भी,
आज प्रेम की गंगा को सुखा के भी देख लिया॥

ये प्रेम की गंगा तुम्हारे जीवन में एक ऐसा जहर है खारा पानी जितना पीयो, जितना भी पीयो उतनी प्यास बढ़ती चली जाती है क्या विषय-भोगों को भोगकर आज तक कोई तृप्त हुआ है जिसका मन खण्डित हुआ है वह खंडित मन वाला व्यक्ति अपने मन पर मरहम लगाता है। किन्तु वह टूटा हुआ मन जैसे कुम्हार का टूटा हुआ वह घड़ा पुनः जुड़ता नहीं है कितना भी जोड़ने का प्रयास करो ऐसे ही खण्डित मन वाला व्यक्ति कितनी ही धर्म की शरण में आता है वह धर्म का अमृत उसमें से रिस जाता है भरते भरते ही निकल जाता है पूरा भर भी नहीं पाता, तो सछिद्र मन में धर्म का अमृत ठहर ही नहीं सकता।

एक श्रेष्ठी किसी महात्मा के पास पहुँचा, कहा-महात्मन् मैं संसार में बहुत दुःखी हूँ लोग मुझे बड़ा सुखी मानते हैं कि मैं धनाढ्य हूँ, नगर सेठ कहलाता हूँ किन्तु बड़ा दुःखी हूँ क्योंकि मेरे अंतरंग का हाल तो मैं ही जानता हूँ। महात्मा बोले देखो ! दुःख एक रोग है उसको दूर करने की औषधि है धर्म स्वीकार करो। बोला-महात्मन् ! मैं धर्म तो बहुत करता हूँ ऐसा लगता है कि इस संसार में मुझ से बड़ा धर्मात्मा कोई नहीं है। महात्मा बोले तो इसका आशय यह है कि तुम्हें धर्म पर श्रद्धा नहीं है। महात्मन् श्रद्धा तो है, तो फिर शंका है हाँ शंका हो सकती है पर इससे क्या फर्क पड़ता है, महात्मन् ने समझाया, देखो ! ये ही फर्क पड़ता है कि आज तक तुम सुखी नहीं हो पाये। सेठ ने कहा-मेरी श्रद्धा पूरी है हाँ थोड़ी सी शंका है पर इससे क्या फर्क पड़ता है। महानुभाव ! आचार्य शिवकोटि जी महाराज ने लिखा-जो व्यक्ति पूरे द्वादशांग पर श्रद्धान करता है केवल सिर्फ एक अक्षर पर श्रद्धान नहीं करता तो वह व्यक्ति भी मिथ्यादृष्टि है, श्री नेमिचंद्राचार्य ने भी लिखा-जो व्यक्ति अज्ञानता के साथ यदि सच्चे मुनि के निमित्त से कोई गलत बात नहीं मानता और पूरा द्वादशांग जानता है तब भी वह मिथ्यादृष्टि है। तो उस सेठ को महात्मा ने समझाया-देखो ! श्रद्धा के समुद्र में शंका का छोटा सा सूई के बराबर छेद भी श्रद्धा के पूरे सागर को खाली कर सकता है इसलिये सेठ जी तुम्हारे चित्त को शांति नहीं मिल रही है तुम जितना भी धर्म करते हो तुम्हारे मन में हमेशा शंका रहती है शंका का कांटा पैर में चुभा हो आर-पार हो रहा है और पूरे शरीर को सुख मिले इसलिए ए.सी. में बैठा है, यथेष्ट खाने को मिल रहा है तो सुख मिलेगा क्या ? जब कांटा आर-पार हो गया पैर में से फिर शरीर को कितना ही आराम दो, अच्छे आभूषण पहना दो, पुष्पों की माला पहना दो वह तड़प रहा है। कांटा उसे बैचेनी कर रहा है। सेठ जी देखो इसी तरह से धर्म कितना भी करो मन में शंका रहती है तो वह धर्म शंका

सहित होते हुए अपने सम्यक् फल को देने में असमर्थ होता है। सेठ ने कहा-मैं इस बात को नहीं मानता कि एक सुई के बराबर छेद भी समुद्र को खाली कर सकता है। ठीक है मैं बताता हूँ, समझाता हूँ-तुम समझने के लिये आये हो मैं कुछ भी करूँ तुम बोलना नहीं, तुम श्रेष्ठी हो सीखने आये हो शिष्य बनकर रहना मेरे गुरु मत बनना, मुझे सिखाना मत, सीख लो। महात्मा जी ने रस्सी उठायी, बाल्टी उठायी, मटका उठाया चल दिये नगर के बाहर की ओर पहुँच गये जंगल में और उन्होंने एक रस्सी से बाल्टी को बांधकर के कुयें में डाला और पानी खींचना प्रारंभ किया वे पानी खींचते गये मटके में भरते गये इस प्रक्रिया को कई बार दोहराया पर जब उस सेठ से नहीं रहा गया-तब वह बोला महात्मन् ! बेचारा कुछ बोला ही था तब तक महात्मन् शांत रहो तुमसे कहा है न ! सेठ बहुत देर तक खड़ा रहा देखता रहा, मन नहीं माना बोला-महात्मन् ये मटका ऐसे नहीं भरेगा महात्मा ने कहा शांत रहो तुमसे किसने पूछा-तीसरी बार उसने कहा-मुझे नहीं पता था कि तुम इतने बड़े मूर्ख हो मटके को भरना चाहते हो, ऐसे मटका नहीं भरेगा, महात्मन् बोले-जब इतनी बुद्धि तेरे पास थी तो मेरे पास क्यों आया ? जब तू ये जानता ही है कि मटका नहीं भरेगा तो बता मेरे मटके में क्या कमी है ? क्या मेरे मटके में छेद है। मटके में कोई छेद नहीं है, क्या मैंने मटके को उल्टा रखा है, नहीं, तो फिर बता मटका क्यों नहीं भरेगा ? क्या कुयें में पानी नहीं है ? नहीं कुएं में पानी तो है लबालब पानी कुयें में है, मटके में छेद भी नहीं है मैं बाल्टी की बाल्टी निकालता जा रहा हूँ, मटके में डालता जा रहा हूँ तब भी बता मटका क्यों नहीं भरेगा ? वह बोला क्योंकि जिसके लिये हम इतनी मेहनत कर रहे हैं उस बाल्टी में पेंदा नहीं है, उस बाल्टी में जब पेंदा ही नहीं है तो मटका भरेगा कैसे ? तो जिसकी श्रद्धा में शंका का छेद होता है समझो उसकी बाल्टी में पेंदा ही नहीं है। बिना पेंदे की बाल्टी से कोई मटके भरते हैं क्या ? महानुभाव ! हम अपने जीवन में देव शास्त्र गुरु के प्रति निशंकित हो जायें तब हमारा चित्त आनंद से भर जायेगा। जब तक हमारे चित्त में शंका बनी रहेगी तब तक शंकित चित्त हमारे हृदय को आनंद से भर नहीं पायेगा। यदि गुब्बारे में हवा भरते हैं और गुब्बारा यदि लीकेज हो तो इधर से भरी उधर से निकलती चली जायेगी, वह कभी भर नहीं पायेगी, ऐसे ही चित्त में जो शंका का छेद है कई बार हमारा चित्त भर जाता है शंका से-अरे ये ऐसे भगवान ये मेरे भगवान, ये भगवान हमारे संकट को दूर करेंगे, वे भगवान हमें शांति देंगे, ये भगवान ऐसा कर देंगे, शनिवार को मुनिसुव्रत नाथ भगवान का पूजन करेंगे तभी शनि का प्रकोप दूर होगा वैसे तो होगा नहीं ? क्यों ? बस ! ये धारणा बनाकर बैठ गये, ये धारणा ही क्यों बनाना ? वीतरागी सर्वज्ञ देव की पूजा करनी है क्या उनके चरणों में माथा रखने से पाप नहीं कटेगा ? अवश्य कटेगा ? मुनिसुव्रत नाथ की मूर्ति नहीं है। आदिनाथ की पूजन कर लो शनि अमावस्या को, तो पाप नहीं कटेगा क्या ? ये धारणा ही क्यों बनाना कि नवग्रह की आपत्ति के लिये नवग्रह की मूर्तियाँ अलग-अलग हों तभी वह संकट दूर होगा, यदि

अन्य और किसी तीर्थंकर, अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी की भक्ति करोगे तो क्या आपका वह पाप कटेगा नहीं ?

''पूज्येषु गुणानुरागो भक्तिः'' पूज्य पुरुषों के गुणों में अनुराग करना भक्ति है किसी मुनि महाराज के चरणों में तुमने माथा टिका दिया तो क्या तुम्हारा पाप नहीं कटेगा ? ये पाषाण की मूर्ति वीतरागी मुद्रा के आगे माथा झुकाने से पाप नहीं कटेगा क्या ? कटेगा अवश्य कटेगा। अपनी श्रद्धा को उल्टी-सीधी क्यों धकेल रहे हो। ये बहाना बना लिया कि व्यक्ति शनि आदि के मंदिर जा रहा था उसे वहाँ जाने से रोकने के लिये अपने स्तर का समझा दिया तो उसे उल्टा क्यों समझाना ? सीधा सीधा समझाओ न ! कि भैया वीतरागी भगवान की पूजा करोगे तो पुण्य से अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी। यदि तुमने खाई में से निकाल करके पुनः नदी में पटक दिया तो काहे का काम यहाँ से वहाँ पटक दिया। आप कहते हैं महाराज जी हमने उसे ऐसा समझा दिया, अरे समझाया ही था तो अच्छे से समझा देते। महानुभाव ! हमें अपने धर्म के प्रति कहीं शंका नहीं करना है ये सिखाना-कि भईया यदि तुमने सपने में भी अरिहंत की पूजा की है तो नवग्रह तो क्या कितने भी ग्रह हों उनकी पीड़ा पास में नहीं आ सकती, सीता ने जब अग्नि परीक्षा दी तो कोई अलग-अलग तीर्थंकर की पूजा की थी क्या ? पंचपरमेष्ठी का ध्यान किया था, अलग से कहने की आवश्यकता ही नहीं, ठीक है 24 तीर्थंकर की पूजा करो कोई बात नहीं Individual किन्तु आज इनकी नहीं उनकी पूजा करेंगे, आज मूलनायक भगवान की पूजा नहीं करेंगे। अरे! मूलनायक भगवान की पूजा आज नहीं करेंगे यदि ये भाव मन में पहले ही आ गया तो सबसे पहले तो अविनय ही कर दी। तो ये भाव अंतरंग का तुम्हारा कहीं न कहीं यही संकेत कर रहा है कि तुम्हारा मन खण्डित तो है, सछिद्र तो है कहीं न कहीं द्विगल तो है। महानुभाव! हम सम्यक् राह पर चलें, सम्यक् राह पर काँटे मिल सकते हैं किन्तु काँटों से डरकर के अनुचित राह पकड़ लेना मेरी समझ से तो यह बुद्धिमानी नहीं है। तुम्हारा भाग्य है, तुम्हारी भावना सही है तो किसी भी (भगवान) परमेष्ठी की पूजा करो तो पाप का क्षय हो सकता है। गर भावना सही है तो धातु और पाषाण की मूर्तियाँ भी तुम्हें सम्यक् फल दे सकती हैं, भावना गलत है तो साक्षात् तीर्थंकर के समवशरण में पहुँचकर भी वहाँ पर पुण्य का अर्जन न कर पाओ हो सकता है लौटकर आ जाओ समवशरण में भव्य जीव ही जाते हैं जो मिथ्यादृष्टि होते हैं वे 12 सभा के बाहर ही घूमते रहते हैं, नाट्यशाला में, कल्पभूमि, लता भूमि अन्य-अन्य भूमियों में घूमते रहते हैं, वापिकाओं में स्नान करते रहते हैं। महानुभाव ! जब तक व्यक्ति की दृष्टि निर्मल नहीं होती, जब तक उसकी दृष्टि में कोई खोट होता है तो प्रभु का भी उसे सहारा नहीं होता है। वह श्रेष्ठी जो गया था महात्मा के पास तो महात्मा ने कहा-जब मेरी बाल्टी में पेंदा नहीं है तब मटका नहीं भर सकता चाहे कितने भी वर्ष निकल

जायें वैसे ही तुम्हारी श्रद्धा की बाल्टी में छेद है पेंदा नहीं है इसलिये तुम भी अपने चित्त को आनंद के अमृत से भर न सकोगे, तो यहाँ पर आचार्य महोदय जो बात कह रहे हैं-

''**कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धः**''-मानस जिसका शुद्ध है। वहीं वास्तव में संसार में पवित्र है।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

पंडित वही जो विवेकी हो

महानुभाव,

कल कारिका के 2 चरण देखे थे उन्हें जानने, समझने का प्रयास किया था। अब आगे देखते हैं आचार्य महाराज कहते हैं-

''कः पण्डितो विवेकी''–संसार में पण्डित कौन है ? जो स्वाह-स्वाहा कराना सीख जाये? पण्डित वह नहीं जिसके पास मात्र शब्दों का आडम्बर हो। पण्डित कौन है-

मातृवत् परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सद्भूतेषु, यः पश्यति सः पण्डितः॥

''जो परायी स्त्री को माता के समान समझता है, पराये धन को मिट्टी के समान समझता है, और परायी आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझता है वह पण्डित है।''

परमानंद स्तोत्र में कहा–जो अपनी आत्मा अनात्मा में भेद समझता है वह पण्डित है।

''परमाह्लाद सम्पन्नं रागद्वेष विवर्जितम्।
सोऽहंतं देहमध्येषु, यो जानाति स पंडितः॥

अर्थ-जो परम आह्लाद से सम्पन्न है, रागद्वेष से वर्जित है, ''वह मैं हूँ'' देह के मध्य में, जो यह जानता है वह पंडित है।

आचार्य शिवकोटी महाराज ने कहा-पण्डित कौन-''मुनिमहाराज''। ऐलक जी, क्षुल्लक जी, प्रतिमाधारी वे बाल पण्डित हैं, जो प्रतिमाधारी नहीं हैं वे केवल बाल हैं, मिथ्यादृष्टि बाल-बाल। तो-जिसने निश्चय रत्नत्रय को प्राप्त कर लिया वह पण्डित है।

आचार्यों ने कहा–

अनित्यं यौवनं रूपं, जीवितं द्रव्य संचयः।
ऐश्वर्यं प्रिय संवासो, मुह्यैत तत्र न पंडितः॥

जो व्यक्ति नश्वर क्षणिक यौवन को संवारने में, रूप को निखाने में, जीवन को द्रव्य (धन) संचय में, ऐश्वर्य में व मोह में लगा देता है वह पण्डित नहीं है।

यहाँ भी कह रहे हैं पण्डित कौन ? **'विवेकी'** विवेकी की परिभाषा-''जिसकी प्रत्येक क्रिया में ज्ञान झलके।'' जिसकी एक भी क्रिया अज्ञानता के साथ हो रही है वह विवेकी नहीं है, जो जागरूक है, सावधान है, सचेत है, हर छोटी-बड़ी क्रिया में जिसका विवेक झलक रहा है, वही पण्डित है। जिसकी क्रिया अज्ञान के साथ, अविवेक के साथ हो रही हो-जैसे-कोई व्यक्ति कहे

मैं जानता हूँ अग्नि जलाती है, और अग्नि में हाथ डाल रहा हो तो क्या वह जानता है, क्या वह ज्ञानी है ? मैं जानता हूँ यह जहर है मृत्यु का कारण है फिर भी खाये तो विवेकी है क्या ? नहीं, विवेकी वही है, ज्ञानी वही है जो अहित से बच जाये हित में प्रवृत्ति कर जाये।

आचार्य श्री माणिक्यनंदी महाराज ने लिखा है-

''हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थंहिप्रमाणं ततो ज्ञान मेव तत्''

जो हित की प्राप्ति अहित का परिहार करे वही ज्ञान है उस प्रमाणिक ज्ञान को धारण करने वाला व्यक्ति ही विवेकी है, ज्ञानी है, पण्डित है। और जो ज्ञान उसे अहित से न बचा सके, हित में न लगा सके वह न तो ज्ञान है और न विवेक है और न वह पण्डित है।

बहुत सारे आचार्यों ने परिभाषायें दी–आ. कुलभद्र स्वामी ने, आ. इन्द्रनंदी जी स्वामी आदि ने कई-कई परिभाषायें दी। हम भी चाहते हैं कि आप पंडित बनें। पंडा कहते हैं बुद्धि को, **''भेदविज्ञान बुद्धि पंडा''** जिसके पास भेद विज्ञान की बुद्धि है वही पण्डित है यदि आत्मा अनात्मा का ज्ञान नहीं तो ऐसी बुद्धि से रहित पण्डित नहीं हो सकता। तो पंडिया वह है जिसके पास ऐसी प्रज्ञा है कि आत्मा अलग-शरीर अलग। ऐसा जानकर के जिसने शरीर में से अपना राग हटा दिया है। आत्मा में राग जोड़ दिया है वह पण्डित है।

''पण्डिता खण्डिता सर्वे ते वर्जितः विवेकिनः
पण्डिता मण्डिता सर्वे रत्नत्रय विशुद्ध सन्॥

जो विवेक से रहित हैं, वे सभी पण्डित खण्डित हैं जिनके चित्त में रत्नत्रय नहीं वे ही पण्डित हैं जो रत्नत्रय से मण्डित हैं, शोभनीय है वे ही वंदनीय हैं।

पंडित शब्द का अर्थ आचार्य अमोघवर्ष मुनि महाराज अब किस अर्थ में लेना चाह रहे हैं वह अव्रती को भी पण्डित कह रहे हैं, वह सम्यक्दृष्टि भेदविज्ञान से सहित है और पाँचवें गुणस्थान वाले को भी आचार्य ने पण्डित कहा था जिसके पास देशव्रत है, और छटवें से लेकर बारहवें तक को भी पंडित कहा क्योंकि 11वें तक पण्डित मरण को प्राप्त होते हैं 12वें में तो मरण होता ही नहीं 13वें में भी नहीं होता 14वें में होता है तो पण्डित-पण्डित।

तो महानुभाव ! ''कः पण्डितो विवेकी'' विवेकी पंडित है। आगे कहा-

''किं विषमवधीरता गुरवः''

कितना अच्छा शब्द कहा, यदि इतना सा शब्द किसी के चित्त में बैठ गया तो वह व्यक्ति जीवन में कम से कम 90 प्रतिशत पापों से बच जायेगा। मेरी ऐसी धारणा है। क्योंकि व्यक्ति प्रायःकर के अपने पूज्य पुरुषों की निन्दा करने लगता है और जिससे बड़े व्यक्तियों की निंदा हो

जाती है। तो छोटों की निंदा करना तो उनके लिये आसान सी बात है, बड़े पुरुष की निंदा करने के लिये बहुत साहस चाहिये। यह तो सागर को पार करने जैसा है। किन्तु यहाँ कह रहे हैं-निंदा तो किसी की भी नहीं करना है। क्या निन्दनीय की भी नहीं ? क्या बुराई की भी नहीं ? हाँ। नहीं करना। पाप की भी नहीं, पापी की भी नहीं ? हाँ, उनकी भी नहीं करना। महाराज जी आप कैसी बात कर रहे हो ? ठीक कह रहे हैं। निंदा करने से अशुभ आश्रव होता है, इसलिए किसी की भी निंदा नहीं करना। जानना चाहते हैं शुभाश्रव किससे होता है ? गुणों की चर्चा करने से। दोषों की निंदा करने से नहीं होता। दोषों को छोड़ने से शुभाश्रव हो सकता है। निंदा करने से नहीं। निंदा करना अपने वचन का दुरुपयोग करना है, आचार्य महाराज कहते हैं-बुरे व्यक्ति की भी बुराई नहीं करना चाहिये। बुरा व्यक्ति कह रहा है-मैं बुरा हूँ तो बुरा ही सही तू मेरी बुराई कहकर के अपनी जीभ को खराब क्यों करता है ? मैं बुरा हूँ बुरा ही सही तू अपनी बुद्धि को, आत्मा को खराब क्यों करता है। जो जैसा है वैसा बना रहने दो। क्या कभी चन्द्रमा ने चाण्डाल के घर से अपनी रोशनी को सिकोड़ा है, क्या सूर्य कभी पापी व्यक्ति के घर में प्रकाश नहीं देता, क्या गाय पापी व्यक्ति को दूध नहीं देती ? क्या वृक्ष पापी व्यक्ति को फल नहीं देती, क्या नदी पानी नहीं देती, इसी प्रकार यदि आप संत पुरुष हैं, सज्जन पुरुष हैं तो तुम्हें किसी की निंदा करने का अधिकार नहीं है। हाँ ये सारे अधिकार दुर्जनों के खाते में हैं। ये केवल दुर्जन ही कर सकता है, सज्जन तो अपकारी का भी उपकार करता है।

उपकारिषु यः साधु, साधुत्वे तस्य को गुणा।
अपकारिषु यः साधु स साधु सद्भि रुच्यते॥

उपकारी का जो उपकार करे उसमें साधुता का कौन सा गुण है यह तो व्यापार है यदि तुमने हमारा उपकार किया-बदले में व्यवहार में भी होता है। किन्तु जो अपकारी व्यक्ति का भी उपकार करता है वास्तव में वह साधु कहलाता है। कमठ ने उपसर्ग किया था पार्श्वनाथ पर, पार्श्वनाथ ने फिर भी क्या किया ? अपनी ऋद्धियों से आँख खोलकर भस्म कर दिया था क्या ? नहीं क्षमा धारण करते हुए ध्यान में लीन रहे। कमठ ने उपसर्ग किया तब भी कल्याण हो जायेगा। जिन-जिन ने भी महापुरुषों पर उपसर्ग किया वे भी संसार में डूबे नहीं पार हो गये, महापुरुषों की कृपा दृष्टि उन्हें भी मिली, ऐसा नहीं कि नहीं मिली ऐसा व्यक्ति आपको संसार में नहीं मिलेगा जिसने किसी महापुरुषों पर उपसर्ग किया हो, कष्ट दिया हो तो वह संसार में डूब गया हो। महापुरुष के सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति भी तिर गया। चाहे चंदन की लकड़ी से कोई अपने माथे पर तिलक लगाये और चाहे तो चंदन की लकड़ी को कुल्हाड़ी से काटे चंदन अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। कुल्हाड़ी भी सुगंधित होती है। माथा भी सुगंधित होता है। महानुभाव ! जो साधु पुरुष की निंदा करे, सही कहा इससे बड़ा तो जहर कोई हो ही नहीं सकता, इससे बड़ी दर्दनाक घटना तो कोई

ही नहीं सकती, जो व्यक्ति इस प्रकार का दुस्साहस करता है मानो अग्नि के दरिया में कूद रहा है। जो अग्नि की एक चिंगारी के ताप को सहन नहीं कर सकता वह उसके दरिया में कूद रहा है, वह कैसे अपनी आत्मा की सुरक्षा कर पायेगा। महानुभाव ! जहाँ पर रहता है, जिस वृक्ष के नीचे आत्मा क्षण भर के लिये शीतलता प्राप्त करती है उसी वृक्ष को गिरा रहा है, कैसे शीतलता मिले। जिस नदी के चुल्लू भर पानी पीने से आत्मा तृप्त हो जाये उसी नदी को सुखा रहा है, कैसे उसका हित हो सकता है, तो महानुभाव इसलिये कहा-''किं विषमवधीरिता गुरवः'' गुरुओं की अवहेलना, अवमानना, निन्दा, अवधीरता, अविनय, तिरस्कार के शब्द तो बहुत दूर हैं चेतना में भाव भी आ गया तो भावों से ही कर्मों का बंध होता है, क्रिया तो बाद की चीज है, क्रिया गलत है और भाव सही है तो सही बंध होगा और क्रिया सही है किन्तु भाव गलत है तो गलत ही बंध होगा। जिनवाणी पढ़ रहे हो पर सोच रहे हो इसमें ये गलत है ये ठीक है। तुम्हें किसने बनाया मजिस्ट्रेट, जिनवाणी में काँट-छाँट करने का अधिकार तुम्हें दिया किसने आगम का एक शब्द तुम छिपा नहीं सकते, एक अक्षर को भी अन्यथा कर नहीं सकते तुमको किसने अधिकार दे दिया, तुमको विश्व का विधायक किसने बना दिया ? तुमने ये अनधिकारी चेष्टा की है, जो तुम्हारा अधिकार नहीं हैं वह कार्य तुमने किया है इसका दण्ड तुम्हें भोगना पड़ेगा। यदि राम ने भी अनधिकारी चेष्टा की तो राम को भी कष्ट भोगने पड़े, स्वर्ण मृग होता नहीं फिर भी बातों में आकर दौड़ गये, तो उन्होंने मर्यादा का उल्लंघन किया, सीता ने मर्यादा का उल्लंघन किया तो सीता भी दुःख को प्राप्त हुयी जिसने भी उल्लंघन किया है उसने कष्ट को तो भोगा है। महानुभाव ! जिनवाणी में यदि हम कोई दोष निकालते हैं-कहते हैं प्रथमानुयोग में तो कथा कहानी है इनके पढ़ने से थोड़े ही कुछ होता है, तो किसके पढ़ने से होता है। तीर्थंकर की वाणी पढ़ने से कल्याण नहीं होता तो क्या तुम्हारी वाणी से कल्याण होगा क्या ? कल्याण होगा कषाय की मंदता से, और मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जिसकी कषाय मंद हो गयी है वह स्वप्न में भी किसी की निंदा नहीं कर सकता, जब भी किसी की निंदा होती हैं वह कषाय के आवेग में ही होती है, मंद कषायी तो कभी निंदा कर ही नहीं सकता। ठंडे पानी ने किसी के शरीर पर फफोले कर दिये हों तो बताओ जब भी शरीर पर फफोले पड़े होंगे तो गर्म पानी से ही पड़ेंगे। ठंडे पानी से नहीं फफोले गर्म से आये इसका मतलब कहीं न कहीं कषाय का आवेश तो है। किन्तु ये तुम्हारी कुशलता है कि कषाय के आवेग को भी दबा गये और निंदा को भी प्रकट कर गये, कषाय प्रगट नहीं होने दी मुस्करा-मुस्करा कर, तुम ये न सोचो कि पैर पकड़ कर सिर्फ विनय का प्रदर्शन होता है, अहंकार का पोषण भी किया जा सकता है, व्यक्ति कई बार अपनी कषाय दबाकर भी मन वचन काय से कहीं न कहीं से निंदा का भाव ले आता है। कि अरे आचार्यों ने इतने क्लिष्ट ग्रंथ लिख दिये, समझ तो आते नहीं। अरे भइया उन्होंने क्या किया, क्या नहीं किया।

उन्होंने अपने आत्मध्यान में से समय निकालकर के ग्रंथों की रचना की, आश्चर्य है तुम उनकी निंदा कर रहे हो, तुमको किसने अधिकार दिया गुरुओं के बारे में कुछ कहने का वे क्या कर रहे हैं, क्या कह रहे हैं तुमको इससे क्या, पर कहने वाले ने तो अपनी औकात बता दी। कहने वाले ने बता दिया मैं कौन हूँ कहने वाले ने स्वयं का परिचय दे दिया, सामने वाला सही है या गलत ये बात छोड़ो, अपनी बात कहते ही अपनी औकात समझ में आ जाती है जब भी मुँह से बात निकलती है तो सामने वाला तुम्हारी बात को बाद में पकड़ता है तुम्हारी औकात को पहले पकड़ता है, तुम्हारे मुंह से क्या शब्द निकल रहे हैं तुम कितने गहरे पानी में हो। कई बार व्यक्ति के मुख से शब्द निकल जाते हैं कि ऐसा नहीं ऐसा। अरे कोई आचार्य अपने शिष्य को डांटे, फटकारे, प्रायश्चित दे कुछ भी करे तो आचार्य को तो अधिकार हो सकता है। किन्तु ये अधिकार किसी भक्त या शिष्य को दिया है ऐसा तो आगम में नहीं पढ़ने में आया है, कि वह कुछ भी टीका टिप्पणी कर सकता है। जब नहीं दिया तो अनधिकारी चेष्टा जीवन में सबसे बड़े दु:ख का कारण है, जीवन में दु:ख के बस दो ही कारण हैं तीसरा कोई नहीं है पहला कारण है-अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करना, दूसरा कारण है अनधिकारी चेष्टा करना। यदि जीवन में से ये दो बुराईयाँ निकल जाये तो व्यक्ति की निगाह कभी नीची नहीं होती और जो अपने अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करता है उस व्यक्ति को कोई पराजित नहीं कर सकता। जो अधिकार का सदुपयोग करना जानता है वह कर्त्तव्य में कभी चूक नहीं करता, ऐसे व्यक्ति को पराजित करना असंभव है। चाहे कितनी बड़ी सेना ही क्यों न हो जो जानता है कहाँ मेरा कौन सा कर्त्तव्य है उस का पालन करता है उसे कौन परास्त कर सकता है व्यक्ति बाहर से पराजित बाद में होता है, पहले तो अंदर से पराजित होता है। अपने कर्त्तव्य की चोरी करके सबसे पहले तो अपनी आत्मा की दृष्टि में गिर गया कि मैंने अपना कर्त्तव्य नहीं किया जो कि मुझे करना चाहिये था पहले तो वह वहीं हार गया। बाहर से जीत भी जाये तो क्या होता है, बाहर की जीत अंदर की हार को जीत में थोड़े ही बदल देगी। यदि अंदर से मन टूटा है तो बाहर की चिकनी-चुपड़ी बातों की मरहम लगाने से मन साबुत नहीं हो जायेगा, तो महानुभाव बात ये है कि मन कैसा है हमारा। मन की परीक्षा लेनी है। यहाँ पर आचार्य महाराज ने एक-एक पद में इतना ज्ञान का सागर भर दिया है कि यदि उसके बारे में सोचें चिंतन करें तो लगता है वास्तव में आचार्यों ने हमारे अंदर के नेत्र खोल दिये, अभी हम कहाँ भटक रहे थे कौन से नशे में घूम रहे थे, चार शब्दों की शराब क्या पी ली कि वे शब्द इतने भयंकर हो गये कि जो नशा शराब की बोतल नहीं दे सकती वो नशा चार शब्द दे सकते हैं। हो सकता है शराब पीकर व्यक्ति भगवान की निंदा न कर पाये, हो सकता है व्यक्ति अफीम-गांजा का सेवन करके देव-शास्त्र-गुरु की निंदा न कर पाये किन्तु जिनवाणी के चार शब्द सुनकर पढ़कर के उसके मुख से यदि कोई ऐसा शब्द निकल जाये तो बहुत आश्चर्य की बात होती है। मुझे तो उस पर

तरस आता है कि उसके इतने पाप का उदय कैसे आ गया कि उसके मुख से ऐसे शब्द निकल जाये कि वह जिनवाणी की विनय न कर पाये, वह प्रभु परमात्मा की विनय न कर पाये। पहले स्वाध्याय करते थे पढ़ते-पढ़ते मुनिमहाराज का नाम भी आ जाता था तो सभी के हाथ जुड़ जाते थे, स्वाध्याय करते-करते भगवान का नाम आ जाता था तो स्वाध्याय वाचन रोक कर के भगवान की जय बोलते थे, हाथ जोड़कर नमस्कार करते थे तब स्वाध्याय आगे बढ़ाते थे। पहले आपने देखा होगा जब राजा-महाराजाओं को कोई समाचार भी मिला कि मुनिमहाराज पधारें हैं अभी देखे नहीं कौन से मुनि महाराज हैं, कैसे हैं, सात कदम आगे आसन से चलकर के साष्टांग नमस्कार करते थे। वे कौन हैं, कैसे हैं ये तो बाद की बात है किन्तु यहाँ तो उसने पुण्य कमा लिया। तो यहाँ कहा-''किं विषमवधीरता गुरवः'' यहाँ अकेला गुरु कहा पंचगुरु अपने होते है-अरिहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधु तीन ही नहीं बल्कि पाँचों परमेष्ठी लेना है। आचार्य कुंदकुंद स्वामी जी, आचार्य पूज्यापाद स्वामी जी ने भक्तियाँ लिखीं उनमें पाँच गुरु माने हैं उनमें से किसी की भी निंदा की है तो वह निः संदेह जहर के समान है। तो महानुभाव ! आप जानते हैं सच्चे गुरु कौन से होते हैं-''कुछ लोग एक शब्द कहते हैं-

वीतराग ही पूज्य है वीतरागता ही धर्म है-क्या यह वाक्य वीतरागता ही पूज्य है। सही है ? क्या यह वाक्य जिन आगम का है ? क्या कहती है आपकी आत्मा ? क्या कहता है आपका मन ? क्या कहता है आपका ज्ञान ? ये दो वाक्य वीतरागता ही धर्म है वीतरागता ही पूज्य है ये वाक्य आगम के नहीं है। क्यों नहीं है यह हम पहले तर्क से सिद्ध करेंगे-

वीतरागता ही पूज्य है यदि हम ऐसा कहते हैं तब बाधा क्या आ जायेगी ? बाधा यह आयेगी कि जैन दर्शन में सिर्फ अरिहंत और सिद्ध भगवान ही पूज्य रहेंगे और कोई पूज्य न रहेगा। क्यों? क्योंकि वीतरागता तो अरिहंतों का लक्षण है। भगवान का लक्षण है। कोई आपसे सच्चे देव का लक्षण पूछे तो आप कहते हो-जो सर्वज्ञ हो, वीतरागी हो, हितोपदेशी हो वे सच्चे देव हैं, वीतरागता गुरु के लक्षणों में नहीं आती, वीतरागता आचार्य, उपाध्याय का लक्षण नहीं साधु का लक्षण नहीं अरिहंतों का लक्षण है। आपने कहा-वीतरागता ही पूज्य है तो केवल अरिहंत सिद्ध पूज्य है। आचार्य, उपाध्याय, साधु नहीं। वीतरागता ही धर्म है तो भगवान महावीर स्वामी के आधे धर्म का खंडन हो जायेगा उन्होंने दो धर्म कहे थे श्रावक धर्म, श्रमण धर्म। और श्रमण धर्म तो वीतरागता और सरागता दोनों के साथ है। श्रावक धर्म में तो पूरी सरागता ही सरागता है। तो यदि यह कह देते हैं कि वीतरागता ही धर्म है तो मुनियों का धर्म लुप्त हो जायेगा, छटवें गुणस्थावर्ती मुनियों का धर्म, धर्म नहीं कहलायेगा। श्रावक के धर्म की तो गिनती ही नहीं फिर यदि इन दोनों बातों को मानेंगे तो इन दोनों बातों से हमारे जैनागम का खण्डन हो जायेगा और हम जैनागम का खण्डन करने के लिये पैदा नहीं हुये हमने जैन कुल में जन्म लिया है तो जैन धर्म से अपनी आत्मा को

मण्डन करना है और जो व्यक्ति जैन आगम से अपनी आत्मा को मण्डित करता है, उसका तो कल्याण निश्चित है। और आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने रयणसार की 2-3 गाथा में लिखा-

मदसुदणाणबलेण जो सच्छंदं बोल्लदि जिणुद्दिद्दट्ठं
एसो होदि कुदिट्ठी ण होइ जिण मग्गलग्गरओ॥

जो व्यक्ति मति श्रुत ज्ञान के बल से जैनागम का विरोध करता है तो ऐसा व्यक्ति मोक्षमार्गी नहीं है वह जैनागम का खण्डन करने वाला है। तो महानुभाव ! हमें इस बारे में सोचना है।

आप हमारी बात का बुरा नहीं मानना आप हमारे अपने हो। हर बाप अपने बेटे को समझाता है यदि बाप के हृदय में बेटे के प्रति वात्सल्य है तो। नहीं है तो जो करना है सो करे जीये मरे, अपनी बला से, किन्तु जब तक करुणा रहेगी तब तक समझायेंगे।

महानुभाव ! हर गुरु हर भव्य जीव को समझाने का प्रयास करते हैं क्योंकि वे करुणा का भंडार होते है कि हे भव्यजीव ! तुम पापों से बचो। तुम धर्म की बात सुनो। आप छःढाला में पढ़ते है।

''जे त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहें दुःख तें भयवंत।
तातें दुःखहारी सुखकार कहें सीख गुरु ''करुणाधार''॥

करुणा को धारण करके दुःखों से बचाने वाली सुख की सीख देते हैं।

''ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण''

हो सकता है हमारी आवाज तुम्हें चिरायते की तरह कहीं-कहीं पीड़ा दे रही हो, हमारा पीड़ा देने का भाव नहीं है। डॉक्टर ऑपरेशन करता है वह इसलिये कि गांठ निकल जाये कैंसर की ताकि व्यक्ति का जीवन बच जायेगा। ऐसे ही गुरु महाराज भी कई बार तुम्हारी आत्मा का, चित्त का ऑपरेशन करते हैं जिससे तुम्हारे चित्त में भूली भटकी पड़ी कहीं कोई गंदगी पड़ी हो तो वह बाहर निकल कर आ जाये। तो महानुभाव ! यहाँ पर आचार्य महाराज ने बात बताई कि यदि अपने चित्त को शुद्ध करना है तो कभी भी, कहीं भी, किंचित भी, स्वप्न में भी जिनवाणी की निंदा न हो जाये। देखो ! वास्तव में सत्यता तो यह है कि माँ से ज्यादा क्षमाशील तो इस संसार में कोई है ही नहीं चाहे लौकिक माँ हो या पारमार्थिक माँ। महानुभाव ! बेटा भले ही कपूत हो जाये किन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती है, तो जिनवाणी माँ ऐसी माँ है जिसकी पवित्र गोदी में पहुँच करके आत्मा के सुख का अनुभव करना है माँ की गोदी में बैठकर माँ की गोदी को कलंकित नहीं करना, माँ का आंचल पान करके उसे काटना नहीं है दुग्धपान करना है, जो बेटा माँ के आंचल को काट ले वह मेरी दृष्टि में सपूत तो नहीं हो सकता, यदि हम जिनवाणी में कुछ मिलावट करते हैं तो

समझो माँ के आंचल को काट रहे है दूध नहीं पी रहे। माँ के आंचल से जो दुग्ध निकला है वह सहज ही मिष्ट होता है, पुष्टिकारक होता है। गाय भैंस बकरी का दूध किसी बालक को हानिकारक हो सकता है किन्तु माँ का दूध हानिकारक नहीं होता। तो महानुभाव ! माँ जिनवाणी तो हमारी चेतना को पुष्ट करने वाली है। ऐसा अमृत पिलाने वाली है। अब आगे देखते हैं-छटवें नं की कारिका-

किं संसारे सारं, बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव।
मनुजेषु दृष्ट तत्वं, स्वपर हितायोद्यतं जन्म॥६॥

यहाँ पर आचार्य महोदय कह रहे हैं-

किं संसारे सारं-संसार में सार भूत अवस्था क्या है, **बहुशोपि विचिन्त्यमान**-बहुत बार सोचा चिंतन, मनन किया, तो क्या अवस्था निकलके आयी

मनुजेषु दृष्ट तत्वं-मनुष्य अवस्था को प्राप्त करके तत्त्वों को देखो और फिर **स्वपर हितायत उद्यतं जन्म**-स्व और पर के हित के लिये उद्यत रहो, इसी के लिये मनुष्य जन्म मिला है। आचार्य महोदय कह रहे हैं-

संसार में कुछ भी सार नहीं है-

यह संसार असार न करना पलभर राग सयाने,
यहाँ जीव ने अब तक पहने हैं कितने ही बाने।
पिता पुत्र के रूप जनमता, बैरी बनता भाई,
देह त्याग कर पुत्र कभी बन जाता सगा जमाई॥

संसार की दशा तो ये है, इह संसार में पल भर के लिये भी राग नहीं करना, यह जीव कभी कोई बाना बदल कर आता है कभी कोई, पिता कभी पुत्र हो जाता है, पुत्र कभी पिता हो जाता है, कभी पुत्र ही मृत्यु को प्राप्त कर सगा जमाई भी बन सकता है, कभी माँ पुत्री, पुत्री पत्नी बन जाती है कौन क्या-क्या नहीं बनता ? इस संसार की दशा बड़ी विचित्र है, इस संसार में किससे तो तुम राग कर रहे हो और किससे द्वेष समझ में नहीं आता, तुम्हारी ये भ्रम बुद्धि है आज तुम जिससे राग कर रहे हो कल वह तुम्हारा बैरी भी बन सकता है। आज तुम जिनके लिये अपने प्राण देने को तैयार हो, कल उसके ले भी सकते हो। आपने सुना होगा उस भद्रमित्र के बारे में जिसकी माँ उससे बहुत राग करती थी। जिसके पाँच रत्न सत्यघोष ने रख लिये थे। रामदत्ता रानी की प्रेरणा से सिंहसेन महाराज ने उसे वे रत्न वापिस दिलवा दिये, वह सत्यघोष मरकर के सर्प हुआ और सिंहसेन को डस लिया, रामदत्ता आर्यिका बन गयी, रामदत्ता के पुत्र सिंहचन्द्र, पूर्णचन्द्र भी मुनि

बने, वह भद्रमित्र भी मुनि बन गया, उसकी माँ ने बहुत समझाया भद्रमित्र मुनि मत बन। उसकी माँ आर्त्तध्यान से मरकर सिंहनी हुयी और अपने पुत्र को खाने को तैयार हो गई। सुकौशल की माँ भी सिंहनी बन कर पुत्र को खा रही है उसके पति समझा रहे हैं हे सिंहनी जिस पुत्र के लिये जरा सा लाल निशान भी दिखता तो तेरी आँखों में आँसू आ जाते, आज तू उस पुत्र का भक्षण कर रही है कितनी रक्त की धार बहा रही है। यह सुनकर सिंहनी की आँख से आँसू बह गये और तभी सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है तो कौन किसका पुत्र, कौन किसका भाई, कौन किसके माँ बाप। ये चार क्षण की जिंदगी है जब तक आपकी आँखों पर मोह का परदा पड़ा है तब तक लगता है ये मेरा-ये मेरा, ये अपना ये पराया, और जब मोह का परदा हट जाए तो मालूम चल जाये कोई कुछ नहीं है। जब मंच पर रोल करते हैं तब तुम्हें लगता है मैं राजा हूँ ये रानी है, ये मंत्री है, ये सेठ है, ये पुरोहित है परदे के अंदर देखा तो सभी वहीं बालक हैं एक साथ रहने वाले, कौन क्या है ? जब तक मोह का परदा है तब तक तुम्हें अपना वेश दिखाई दे रहा है और मोह का परदा हटते ही कुछ नहीं। एक माटी के सब खेल खिलौने।''

किससे राग करना-अपने शरीर से-प्राण निकल जायेंगे लोग घर में रखना न चाहेंगे जल्दी से फूंक देगें, अपने नाम से-मेरा नाम लिख जाये पत्थरों पर, पत्रिका में, पुस्तकों में, प्रशस्ति में, जिस नाम के लिये आज तुम लड़ रहे हो हो सकता है कल उसी जगह जन्मों और उसी नाम को मिटाने को तैयार हो जाओ ये नाम क्यों लिखा है ? मेरा नाम लिखो आज जिस नाम को लिखाने के लिये लड़े थे कल उस नाम को मिटाने के लिये भी लड़ सकते हो क्या पता कल तुम किस रूप में जन्मो, क्या तुम्हारा नाम हो क्या आत्मा का कोई नाम होता है।

यह शरीर राख है, इस मिट्टी की पूजा कब तक करते रहोगे, चेतना की पूजा एक बार तो करके देख लो, इस मिट्टी पर कब तक रीझते रहोगे, एक बार तो चेतना पर सीझ जाओ, अपनी चेतना को पहचान लो, तो महानुभाव ! संसार के बारे में बार-बार खूब चिंतन किया, एक संसार भावना को व्यक्ति अच्छी तरह समझ ले तो मैं समझता हूँ व्यक्ति जीवन में कभी पाप नहीं कर सकता, वैसे तो बारह की बारह भावना ही वैराग्य वर्द्धिनी हैं किन्तु संसार भावना में पंचपरावर्तन समझने लायक है, आँख बंद करके सोचे मैंने संसार में अनादिकाल से कितने पाप किये हैं कहाँ नहीं गया, ऐसी कौन सी जगह है जहाँ मैं नहीं गया, ऐसा कौन सा भाव नहीं रह गया जिन भावों के कारण मैंने दु:ख प्राप्त नहीं किया, महानुभाव ! चिंतन करें अकेले में बैठ करके। किन्तु पापी जीव कभी अकेले में बैठ नहीं सकता, और जो जितना ज्यादा पुण्यात्मा होगा वह उतना ज्यादा भीड़ से बचेगा अकेले में जाने का प्रयास करेगा। पापी जीव जब-जब भी अकेले में बैठता है तब-तब अपनी क्रियायें, अपने वचन, अपने मन के विचार दिखाई देते हैं उसके स्वयं के पाप उसे काटने को दौड़ते हैं इसीलिये पापी जीव कभी अकेला नहीं रह पाता उसे नींद नहीं आती उसे डर

लगता है, कुछ नहीं तो मित्र के यहाँ चला जायेगा, या टी.वी. खोलकर के बैठ जायेगा, अखबार पढ़ेगा, कुछ गुनगुनाने लग जायेगा अकेले में अपने अंतरंग और बहिरंग से नग्न होकर के पापी व्यक्ति क्षण भर के लिये बैठ नहीं सकता। महानुभाव! जो जितना अपनी आत्मा के निकट होता है वह उतना ही पर से दूर भाग जाता है। जो अपनी आत्मा के निकट जाना नहीं चाहता, वह दूर जाता है और व्यक्तियों की भीड़ में घुसता चला जाता है क्योंकि अकेले में एकान्त उसको खलता है। चुभता है इसलिये अकेले में तो वह बैठ ही नहीं सकता, और जो व्यक्ति अपनी आत्मा के निकट है चाहे वन हो या जंगल, पर्वत हो या नदी का किनारा वह तो एकांत में ध्यान कर रहा है। मस्त है-कहीं दूसरा व्यक्ति आ जाये-आचार्य पद्मनंदी जी ने पद्मविंशतिका में लिखा है-कोई मुनिमहाराज अपनी ध्यान साधना में, तप में, संयम में लीन है, शांति से बैठे है और कोई व्यक्ति आ जाये तो वे मुनिराज क्या समझते है- वे सिर पकड़ते हैं हे भगवान् ! ये आफत आ गयी-मूल श्लोक में है कि आपत्ति आ गयी, यदि कोई धनिक व्यक्ति आ जाये तो महाविपत्ति आ गयी, यदि वह अहंकारयुक्त हो, अपने धन वैभव की चर्चा करने लग जाये तो मानो अकाल मृत्यु आ गयी। योगी जब-जब सोचता है अकेले में बैठूँ तो होता यह है कि जिस योगी में कहीं मिठास होती है भव्य जीवरूपी चींटी चीटें तो आयेंगे ही, कितना ही बचे किन्तु ये बात ठीक है योगी को पीछे मुड़कर के नहीं देखना, पीछे मुड़कर देख लिया तो योगी की योगता घट गयी और भोगी को योगी का पीछा नहीं छोड़ना है, भोगी यदि योगी के पीछे पड़ जायेगा तो अपना कल्याण कर लेगा और यदि योगी भोगी के पीछे पड़ गया तो अपना अकल्याण कर लेगा। साधु कभी श्रावक के पीछे नहीं पड़े। सिर्फ 24 घंटे में एक बार वह समय आता है जब साधु को श्रावक के पीछे चलना पड़ता है, जब साधु को श्रावक के हाथ के नीचे अपना हाथ करना पड़ता है उस समय साधु खेद करते हैं कि आज यदि क्षुधा वेदनीय नहीं होती आज हमारा संहनन होता तो मैं भी बाहुबली की तरह नियम ले लेता कि जीवन में कभी आहार ग्रहण करूँगा ही नहीं। आहार करने जाते हैं तब श्रावक आगे-आगे साधु पीछे-पीछे अन्य सभी समय में महाराज आगे-आगे श्रावक पीछे-पीछे और उस समय जब आहार होता है चाहे तीर्थंकर ही क्यों न हो और आहार देने वाली वह अबला चंदन बाला ही क्यों न हो आहार लेने वाले को हाथ नीचा रखना ही पड़ता है और देने वाले का हाथ सदैव ऊँचा रहता है। महानुभाव ! साधक के हाथ आशीर्वाद के लिये सदैव ऊपर रहते यदि आहार न करें तो चौबीसों घंटे ही ऊपर रहें किन्तु आहार करने जाना पड़ेगा तो हाथ नीचे करना ही पड़ेगा। तो महानुभाव ! कहने का आशय है कि श्रावक तो योगी के लिये आपत्ति है। घने संकट के बादल हैं और श्रावक के लिये कह दिया चाहे कुछ भी हो जाये मरते दम तक योगी का पीछा न छोड़ना। मरते दम तक पीछे रहना जैसे किसी को भूत सवार हो जाता है ऐसे ही तू भी लग जा तेरा कल्याण पक्का। देखो ! साधु से तो कह रहे है चाहे चक्रवर्ती भी आ जाये पीछे मुड़कर भी नहीं देखना

और श्रावक से कह रहे कि कुछ भी हो जाये मरते दम तक पीछा नहीं छोड़ना तो महानुभाव ! श्रावक का कल्याण साधु के पीछे लगने में है साधु से जुड़ने में है और योगी का कल्याण श्रावक को छोड़ने में है। श्रावक से दूर रहने में, यदि श्रावक योगी से पीठ कर बैठ जाये तो श्रावक का पतन हो जाता है और योगी श्रावक की तरफ मुख करके बैठ जाये तो उसका पतन हो जाता है। अत: योगी तो अंतरंग की आँखों से अंदर वाले को ही देखे तभी योगी का कल्याण है। बाहर का पदार्थ पहुँच गया तो योगी भी बहिरात्मा हो जायेगा।

महानुभाव ! यहाँ संक्षेप में यही कहा है कि मनुष्य अवस्था प्राप्त की है तो तत्त्वों को देखो, जानो समझो और स्वपर के कल्याण में संलग्न हो जाओ इसके लिये ही तुम्हें मनुष्य जन्म मिला है भोगने के लिये नहीं मिला।

आये थे हरिभजन को औटन लगे कपास

सत्यता तो यही है संकल्प तो यही लेकर आये थे इस नरकावास से, गर्भ से आते ही 8 वर्ष के होते ही कल्याण कर लेंगे। हे भगवान् दुबारा इसमें न आयेंगे किन्तु व्यक्ति यहाँ की चकाचौंध में सब भूल जाते हैं। तो महानुभाव इस संसार का बार-बार चिंतवन करना है।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

संसार बंधन

मदिरेव मोह जनकः कः स्नेहः के च दस्यवः विषयाः।
का भव वल्ली तृष्णा, को बैरी नन्वनुद्योगः॥७॥

कल आपने बहुत विचार किया, बहुत सोचा, और सार निकाला जैसे दूध का सार घी है ऐसे ही आपका सार ये निकलकर आया कि ये मनुष्य जन्म स्वपर कल्याण के लिये ही मिला है, इसके अलावा यदि और कुछ कार्य कर रहे हो तो वह जीवन की सफलता सार्थकता के लिये नहीं व्यर्थता के लिये है, तो यहाँ यह बताया आगे 7वीं कारिका में-

मदिरेव मोह जनकः कः—इस संसार में मदिरा के समान मोह को उत्पन्न करने वाला क्या है **स्नेहः**-विषयानुराग, कषायानुराग, अघानुराग, **के च**-और कौन कौन, **दस्यवः**-चोर हैं, **विषयाः**-इन्द्रिय और मन के विषय, **भववल्ली का**-संसार की बेल क्या है ? **तृष्णा**-तृष्णा, **ननु बैरी कः**-यथार्थ शत्रु कौन है ?, **अनुद्योगः**-अकर्मण्यता। मदिरा अर्थात् शराब शर के आव का कष्ट इतना नहीं होता जितना कष्ट शराब का होता है। ''शर का आव'' शर अर्थात्-बाण और आव-'पानी' आपा से बना है ऊर्दू भाषा में आपा का आव हो गया। जो शर के आव का, बाण की जो तीक्ष्ण नोंक होती है वह बाण यदि चुभता है तो इतना कष्ट नहीं देता, क्योंकि वह कष्ट तो सामने दिखाई देता है, आर-पार छेद कर देता है। किन्तु शराब छेद नहीं करती आत्मा के प्रत्येक प्रदेश को मोहित कर देती है। जो शर के आव का कष्ट नहीं है उससे ज्यादा कष्ट है शराब का। तो शराब एक-एक आत्मा के प्रदेश को घायल करती है, मोहित करती है। एक-एक प्रदेश को मूर्च्छित करती है और बेहोश व्यक्ति कितना भी शक्तिशाली हो कुछ नहीं कर सकता, होश वाला व्यक्ति चाहे उसका हाथ कट गया है, वाण चाहे पैर में लगा, हाथ में लगा, जिसके ऊपर शर का प्रभाव है वाण का प्रभाव है उसको तो युद्ध करते देखा गया और उस शर से घायल व्यक्ति ने अपने शत्रु को जीत लिया किन्तु शराब से घायल व्यक्ति कभी अपने शत्रु से जीत नहीं सकता। महानुभाव! ये शराब तो ऐसी खराब है जिसका घोर अंधकार है जिसने मोह की शराब पी है उसके लिये तीनों अंधकार है। मिथ्यात्व का अंधकार, अज्ञान का अंधकार, असंयम का अंधकार उसके जीवन में अंधकार ही अंधकार है और अंधकार में पड़े मूर्च्छित व्यक्ति को वस्तु तत्व का ज्ञान कैसे हो सकता है, कोई उपाय है कि मूर्च्छित व्यक्ति को वस्तु तत्व का ज्ञान करा दिया जाये। कैसे कराओगे ? होश में तड़प रहा हो, प्राण कंठ में आ गये हों तो ज्ञान कराया जा सकता है किन्तु बेहोश व्यक्ति को ज्ञान कैसे कराया जा सकता है जिसकी चेतना मानो मुर्दे की तरह पड़ी हो उसको कैसे ज्ञान कराओगे। बाहर की बेहोशी अंदर का होश होने पर ज्ञान के चांस हैं उसे तत्व का उपदेश दिया जा सकता है, अपनी निधि को जान सकता है किन्तु जो अंदर से ही बेहोश पड़ा है तो बाहर से कोई चेष्टा

भी कर रहा हो तो ज्ञान नहीं करा सकता। मोही प्राणी बाहर से तो चेष्टा करते दिखाई देते हैं चल रहे हैं, बैठ रहे हैं, खा रहे हैं, पी रहे हैं किन्तु उनकी आत्मा बेहोश पड़ी है और जिसकी आत्मा बेहोश है उसे तत्वोपदेश देना व्यर्थ है पहले आत्मा को होश में लाने का प्रयास करो, उस मोह मदिरा को दूर करो, उस मदिरा जैसा नशा देने वाली चीज संसार में क्या है, तो बता रहे हैं ''स्नेह'' प्रेम यह ढाई अक्षर का प्रेम इस तीन लोक को अपने धागे में लपेट लेता है, ये दो अक्षर का राग विश्व को अपनी आग में जला रहा है ये किसका प्रेम ? विषयानुराग, कषायानुराग, रागानुराग इस जीव को राग से भी राग हो गया है अब तक राग से राग करता रहा एक बार विरागता से राग हो जाये, वीतरागता से राग हो जाये तो उसका वह राग भी सफल और सार्थक हो जायेगा। महानुभाव ! आवश्यकता है अब वीतरागता व वीतरागी से राग करने की, यदि तुम राग को नहीं छोड़ सकते तो कोई बात नहीं वीतरागी से राग कर लो, तुम भी वीतरागी बन जाओगे। फूलों से दोस्ती करने वालों के ही वस्त्रों से खुशबू आती है और कोयले की दोस्ती हाथों को काला बनाती है, कांटों का व्यापार हाथों को लहूलुहान करता है और चन्दन चूरे का व्यापार सुगंधित बना देता है। बात ये है कि आप यदि वीतरागता के चरणों में पहुँच गये तो आपके अंदर से भी वीतरागता की खुशबू आने लगेगी, यदि साधु के पास पहुँच गये तो आपके शरीर से भी साधुता झलकेगी, संगति का प्रभाव तो पड़ता ही है। तो महानुभाव! वीतरागी प्रभु के पास तुम कैसे भी तो पहुँच जाओ, चाहे राग से पहुँच जाओ, चाहे द्वेष से पहुँच जाओ तुम्हारा बेड़ा पार है। निःसंदेह जो व्यक्ति चलती नाव में बैठ गया चाहे नाविक को मारने के लिये, चाहे नाविक को तारने के लिये, उस कुशल नाविक की नाव में बैठा है चाहे प्यार के साथ चाहे दुश्मनी के साथ नाव पार होगी तो वह भी पार हो जायेगा। जहाज की छत पर बैठा हुआ कौआ हो या हंस क्या फर्क पड़ता है जहाज पार होगा तो वह भी पार हो जायेगा। तो वीतरागी से जिसने राग किया उसका भी बेड़ा पार हो जाता है और जिसने द्वेष किया उसका भी बेड़ा पार हो जाता है। पुष्प को देखो जो सूंघता है उसे भी खुशबू देता है और जो उसकी कली को कुचले तो उसके भी हाथ खुशबू से युक्त हो जाते हैं। गुड़ स्वयं खाये या दूसरों को खिलाये गुड़ तो गुड़ है स्वयं खाये तो स्वयं को आनंद आयेगा, दूसरा खायेगा तो उसको आनंद आयेगा, तो यह विषयों का राग, मोह का राग, पापों का राग यह निःसंदेह चेतना की निधि को जलाने वाली तीक्ष्ण आग है इससे बच पाना कठिन है ये झुलसाती रहती है, चित्त को सम्पूर्ण नष्ट तो नहीं करती किन्तु झुलसाती अवश्य रहती है, गुणों को जलाती रहती है। अगली बात कह रहे हैं आचार्य महोदय-**के च दस्यवः विषयाः**-वे कौन-कौन से दस्यु/बदमाश हैं जो तुम्हारी संयम रूपी निधि को लूट रहे हैं, आप पढ़ते हैं-

विषय चोर बहु फिरत हैं-वे पंचेन्द्रिय के विषय ही हैं चोर, ऐसे चोर हैं मीठे बदमाश, ठग हैं, भेष बदल कर आते हैं कभी मित्र का भेष बनाकर आते हैं, कभी स्वजन का रूप बनाकर आते

हैं यदि दुश्मन-दुश्मन के रूप में आ जाये तो तुम्हारी पहचान में आ जाये, किन्तु दुश्मन मित्र का रूप धारण करके वार करता है, हम उसकी शरण में जाते हैं तुम हमारी रक्षा करना और वही हम पर वार करता है, जिन विषयों की शरण में आज तक हम गये, उन्हीं विषयों ने विष देकर हमें आज तक मारा है, वे विषय यमरूप से विष का काम करते रहे, इसलिये हमें उन विषयों से अब बचना है। प्रारंभ में ये विषय बहुत अच्छे लगते हैं, लुभावने, भोले-भाले, सीधे-साधे लगते हैं किन्तु वे भोले नहीं बारूद के गोले हैं और वास्तव में भाले नहीं वे तो भार की तरह से हैं भाले का काम करने वाले है। भाले का अर्थ होता है भाला विषय भोग तो चेतना को छेदने वाले भाले की तरह से हैं। तो महानुभाव ! उन विषयों से बचना है। जो कोई भी वस्तु आपको अच्छी दिखाई देती है आप उस पर रीझ जाते हैं, जो पदार्थ आपको अच्छा लगता है उसे भोगने की कामना मन में कर लेते हैं चाहे वस्तु मिले या न मिले, तो अपने मन को रोकना है। क्योंकि जितने पदार्थ दिखते हैं सबको भोगने की इच्छा करती है, हे जीव तेरा जीवन इतना है नहीं कैसे भोगेगा, और भोग भोगकर तू भोग नहीं सकता ये पदार्थ ही तुझे भोग लेंगे और तेरे शरीर को जीर्ण शीर्ण कर देंगे। जैसे गन्ना चूस कर फेंक दिया जाता है ऐसे ही तुझे भी फेंक दिया जायेगा ऐसे ही ये विषय भोग हैं समझदार व्यक्ति इन्हें छोड़ देते हैं। और जो नासमझ होते हैं उन्हें विषयभोग फेंक देते हैं। विषयों की और आत्मा की लड़ाई है जो बलवान होगा वह जीत जायेगा। अभी तक तो विषय जीतते रहे अनादि काल से, एक बार तुम साहस कर लो, अनादिकाल से कुछ नहीं कर पाये तुम एक बार भी जीत जाओगे तो जीवन में उन विषयों को दुबारा कभी न पाओगे, वे कभी अपना मुँह न दिखा सकेंगे उनका मुँह ऐसा काला कर दो कि जीवन में कभी तुम्हारे पास न आ सकें। तुम्हारा मुँह तो उन्होंने हजारों बार, लाखों बार, अनंतों बार काला किया किन्तु फिर भी तुम बेशरम बनकर उनके चंगुल में आते रहे, अब आप उन विषयों को ऐसे पछाड़ दो कि वे जीवन में कभी तुम्हारे पास आ न सकें। ये सबसे बड़े बदमाश हैं कोई भी बदमाश तुम्हारा इतना अहित नहीं कर सकता, कोई भी अड़ौसी-पड़ौसी तुमसे बैर बांधकर तुम्हारा अहित नहीं कर सकता, जब तक तुम अपना अहित न करना चाहो। तुम्हारा अहित तुम्हारा विषयानुराग है, तुम्हारा ही पापानुराग है, कषायानुराग है, तुम्हारा अहित करने वाला तुम्हारा मोहानुराग है, तुम्हारा सुख दु:ख तुम्हारी करनी कर्मों की करतूत पर आधारित है किसी और पर नहीं। जैसे तुम कर्म करोगे वैसे ही तुम्हें फल मिलेंगे अन्यथा नहीं। तो यहाँ कह रहे है संसार में सबसे बड़े दस्यु ये विषय चोर हैं आगे कह रहे हैं-

का भव वल्ली-संसार की बेल क्या है **''तृष्णा''** तृष्णा ही ऐसी बेल है उसके रहते संसार सूख नहीं सकता। यह तृष्णा निशदिन सिंचन करती है, वह तृष्णा ही तो कर्मों को आमंत्रण पत्र देती है लोभों के आदेश पर, वह लोभ का आदेश टाल नहीं सकती, लोभ अपने मोह रूपी राजा

का ऐसा विश्वस्त Superwiser है जो गलत काम नहीं होने देता, उसके यहाँ कार्य करने वाले सैल्समैन में तृष्णा भी है, मायाचारी है और भी अन्य-अन्य विकारी भाव हैं। ये सब उसके संकेतानुसार कार्य करते हैं। तो क्या कहा-का भववल्ली संसार की बेल क्या है।

तृष्णा ही संसार को बढ़ाने वाली है, दीपक तब तक जलता है जब तक बाती में तेल रहता है, यदि तेल खत्म हो गया तो बाती ज्यादा जल न सकेगी, वह बाती भी जल्दी जल जायेगी। वह तेल जब तक रहता है उस बाती को जलने नहीं देता स्वयं जलता रहता है, किन्तु जैसे ही तेल खत्म होता है बाती भी जल जाती है। तो संसार का तेल भी यदि है तो वह तृष्णा है, बल्व जलता है यदि लाईट हो। तृष्णा की लाईट यदि आत्म प्रदेशों में न हो तो संसार की वृद्धि होना रुक जायेगी। लोभ कहते किसे हैं ? जो लोक में भटकाये, भ्रमण कराये वह लोभ है और जिसने लोभ का उल्टा कर दिया, वह भलो आदमी है। और लोभ ने जिसको उल्टा कर दिया वह बुरा आदमी हो गया लोक में भटकने वाला हो गया, भलो आदमी बनना है तो अपने लोभ को उल्टा कर दो, लोभ को उल्टा करते ही तुम्हारी चेतना इस अवस्था में भलो को प्राप्त हो जायेगी। आगे कह रहे है **''को बैरी''**–संसार में तुम्हारा सबसे बड़ा दुश्मन कौन है ?

ननु अनुद्योगः–निश्चय से उद्यम हीनता, अकर्मण्यता यही तुम्हारी सबसे बड़ी शत्रु है, दुश्मन है, सबसे बड़ी बैरी है। जो व्यक्ति उद्यमी होता है, पुरुषार्थी होता है, प्रयत्न करने वाला होता है वह हिम्मत करके कहीं न कहीं अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, किन्तु जो प्रयास ही न करे, वह लब्ध वस्तु का भी लाभ नहीं ले सकेगा। पुरुषार्थी व्यक्ति अलब्ध वस्तु का भी लाभ ले लेता है और पुरुषार्थ हीन व्यक्ति लब्ध वस्तु का भी लाभ नहीं ले पाता। जीवन में पुरुषार्थशील बनो! पुरुषार्थ जानते हो किसे कहते है ? किसे कहते हैं पुरुष ? ''पुरु'' माने आत्मा पुरु का अर्थ होता है श्रेष्ठ गुण **'पुरुगुणभोगे सेदे'** आचार्य श्री नेमीचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने कहा जो श्रेष्ठ गुणों को भोगने वाला है वह पुरु है, और श्रेष्ठ गुणों को कब भोगे ? जब कषाय को शमन करे, कषायों के साथ भोगे तो पुरुष नहीं वह कर्म के कोष को नष्ट करके यदि गुणों को भोगता है दुःखों के कोष को नष्ट करके भोगता है, कषायों के कोष को नष्ट करके भोगता है वह पुरुष है और पुरुष का ''अर्थ'' प्रयोजन है मोक्ष को प्राप्त करना, शांति को प्राप्त करना, अपने हित को प्राप्त करना, यही पुरुष का प्रयोजन है। जो अपने प्रयोजन को प्राप्त करने के लिये तत्पर है वह पुरुषार्थी है। अपने प्रयोजन को, श्रेष्ठ गुणों को भोगने का जो प्रयोजन है, आत्मा के स्वाभाविक गुणों को भोगने का जो प्रयोजन उसे प्राप्त करने में जो तत्पर है वह पुरुषार्थी है जो आत्मा के गुण-स्वभाव को प्राप्त करने में तत्पर नहीं है वह पुरुषार्थी नहीं है। अर्थी यानि प्राप्त करने वाला, चाहने वाला तीव्र जिज्ञासु। आचार्य महोदय कहते हैं जब तक अर्थी निकले उसके पहले पुरुषार्थी बनकर के अपने अर्थ को सिद्ध कर लो पुरु का जो अर्थ है, प्रयोजन है उसे सिद्ध करो, अन्यथा अर्थी निकलने

में कोई देर नहीं लगती। जो परमार्थी होते हैं उनकी अर्थी नहीं निकलती जो विद्यार्थी, ज्ञानार्थी, धर्मार्थी होते हैं उनकी अर्थी नहीं निकलती वे तो अर्थों के अर्थी होते है, अर्थों के परमार्थी होते हैं उनका जीवन सार्थक होता है। जिन्होंने अपने अर्थ को सिद्ध कर लिया उनका जीवन वास्तव में सार्थक है अन्यथा व्यर्थ और निरर्थकारी हो सकता है तुम्हारा जीवन व्यर्थ न हो, अनर्थक न हो, निरर्थक न हो, सार्थक हो जाये, सफल हो जाये और सार्थक वही है जो प्रयोजन को सिद्ध करने वाला हो, जिस प्रयोजन से आये थे वह प्रयोजन यदि सिद्ध हो गया तो तुम्हारा आना सार्थक है, सफल है। जिस अर्थ को लेकर आये थे वह अर्थ आपका सिद्ध नहीं हुआ तो आपका आना व्यर्थ है तो महानुभाव ! आचार्य महोदय यहाँ बता रहे हैं निरंतर उद्यमशील रहो, प्रयत्न करते रहो।

विदेशी साहित्यकार, अन्वेषक कहते हैं भारत एक गरीब देश है पूछा क्यों ? बोले-क्योंकि वह उद्यमहीन है। विदेशों में कोई व्यक्ति उद्यमहीन नहीं है वहाँ प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी कार्य में लगा ही रहेगा, और जो व्यक्ति व्यस्त होता है वह व्यक्ति स्वस्थ्य रहता है जीवन में अस्त-व्यस्त नहीं होता, लस्त-पस्त नहीं होता। तो जो व्यक्ति अपने किसी कार्य में पुरुषार्थी है, व्यस्त है वास्तव में उसी का जीवन ईजी है। अन्यथा जीवन रोगी हो जाता है यदि स्वस्थ रहना चाहते हो तो अपने आपको व्यस्त रखो नहीं तो डॉ. क्या कहता है सबसे पहले बेड रेस्ट। वह गुड रेस्ट कभी नहीं कहता और धर्म हमेशा कहता है गुड रेस्ट तो, धर्म का सहारा लो, पूजा पाठ करो। पहले स्त्रियाँ गर्भवती होती थीं तो घर के लोग कहते थे बेटा चक्की चला, घर का काम कर जिससे डिलीवरी अनुकूलता से हो जाये परेशानी न हो पर अब क्या कहता है डॉ. जाओ पलंग पर। तू बीमार तो नहीं है पर हम तुझे बीमार करेंगे, तुझे बीमार न करेंगे तो हमारे बाल-बच्चे कैसे पलेंगे इसलिये तुझे बेड रेस्ट करना है। तो इससे बीमारी बढ़ती है। जो व्यक्ति जितना निकम्मा रहता है उतना ज्यादा रोगी रहता है और जो जितना काम करता है वह उतना ही स्वस्थ रहता है। क्या किसानों को कभी हार्ट अटैक होते देखा, वे इतनी मेहनत करते हैं उनको इतनी बड़ी परेशानी कभी होती है क्या डायबिटीज की बीमारी या थॉयराइड बढ़ गया हो या बी.पी. कम-बढ़ कर रहा हो कभी देखा सुना है क्या ? जो दुकान पर बैठे हैं लाला जी बने, मूंछों पर ताव देकर पेट पर हाथ फेर रहे हैं और कहते हैं कुछ खाया ही नहीं, भूख लगती नहीं, तोंद निकली मटके जैसी, जैसे कुछ खाया ही नहीं। ''आज खाये, कल खायें ताके ऊपर ब्याज खायें।'' आलू खायें प्याज खायें यहाँ से खाये वहाँ से खायें दिनभर बकरी जैसा मुँह चलता ही रहता है, फिर कहते है महाराज जी ये कुछ खाते ही नहीं, खाओगे कहाँ से किसान जैसी मेहनत तो करो भूख अपने आप खुल जायेगी। जब ए.सी. में बैठे रहोगे तो कहाँ से भूख लगेगी। तुम्हारी जठराग्नि मंद पड़ी है जब काम करोगे तब तुम्हारी जठराग्नि उद्दीप्त होगी, भूख लगेगी। जो व्यक्ति व्यस्त रहता है वह स्वस्थ रहता है। जो उद्योग नहीं करता, परिश्रम मेहनत नहीं करता तो ऐसा व्यक्ति स्वस्थ नहीं रहता।

एक बार एक राजा अस्वस्थ हो गया, नगर के सभी वैद्य, हकीम आये किन्तु राजा ठीक न हो सका, एक अनाड़ी व्यक्ति आया जो जंगल में रहता था, आते ही दावे के साथ कहा मैं राजा को स्वस्थ कर सकता हूँ, पूरे देश में खबर फैल गयी, ऐसा कौन सा व्यक्ति है जिसे कभी वैद्यगिरी करते देखा नहीं वह राजा को स्वस्थ करेगा।

राजा ने कहा-बताइये मैं कैसे ठीक होऊँगा। वह पुड़िया में थोड़ी सी राख लाया था, बोला महाराज ये दवाई है, इस दवाई की गोली बनाकर खाना है-पूछा गोली किसमें बनाना है दूध में, घी में कि शक्कर में, बोला न दूध में, न घी में न शक्कर में, इस दवाई में बहुत कीमती भस्म है। आपके धवल माथे पर जब पसीने की बूंदे आये उससे इसकी गोली बनाना है और एक सुबह, एक शाम को खाना है। राजा बहुत प्रयास करता है पसीना लाने का पर ए.सी. में कहाँ से आये तीन दिन तक उसे पसीना नहीं आया, चौथे दिन वह सीढ़ियाँ चढ़ता है उतरता है, कई बार दौड़ लगायी तब जाके थोड़ा बहुत पसीना आया, उस पसीने को लिया, थोड़ी सी राख ली गोली बनाई ऐसा उसने एक सप्ताह तक किया, राजा बिल्कुल स्वस्थ हो गया। वह लड़का आया-बोला-कहो राजा कैसा रहा, राजा बोला-वैद्यराज आपकी औषधि तो बिल्कुल रामबाण औषधि है इसका तो कोई तोड़ ही नहीं है। आप तो हमारे राज्य के राजवैद्य हैं अन्यों को अलग करो। उसने कहा-महाराज राजवैद्य तो वहीं है मैं नहीं मैंने तो आपकी मानसिकता देखी देखकर आपके लिए यही कारगर औषधि लगी सो दे दी। एक बार दूसरे राजा को रोग हो गया, उसके घुटनों में बहुत तीव्र दर्द, न उससे खड़ा हुआ जाये न बैठा जाये। घुटने सीधे ही न हो, अब तो राजा पलंग पर पड़ा है उसको वहीं उठाते-बैठाते हैं वहीं भोजन-पानी कराते हैं सब व्यवस्था वहीं। सभी परेशान, सभी डॉ. हकीम आये किन्तु राजा को स्वस्थ न कर पाये। एक व्यक्ति ने आकर भरे दरबार में दावा किया कि मैं राजा को ठीक कर सकता हूँ। राजा दरबार में बैठा, वह व्यक्ति आया सम्मान के साथ आसन पर बैठा। राजा ने पूछा-क्या तुमने कभी ऐसा रोग किसी का ठीक किया है जो कि तुम इतने दावे के साथ कह रहे हो। बोला हाँ महाराज लोगों ने कहा-हमने तो इसे ऐसा करते कभी नहीं देखा। राजा ने पूछा किसका किया ? बोला महाराज आपके देश के बाहर एक चाण्डाल है उसे यह रोग था। राजा बोला-मेरे रोग की बराबरी उस चाण्डाल से कर रहा है राजा गुस्से में आकर उसे मारने के लिए जैसे ही दौड़े राजा के पैर सीधे हो गये, वह सीधा भागा, और कहने लगा राजन् यही मेरी औषधि थी। आपके पैर सीधे हो गये।

एक दामाद अपनी ससुराल पहुँचे। शाम को सास ने कहा-भोजन कर लो, नहीं-नहीं नहीं। जब तक 10 बार न कहें तो भोजन कैसे कर लें। हाथी जैसी प्रवृत्ति, दामाद हाथी बनकर अर्थात् अति स्वाभिमानी बनकर जाता है ससुराल। जैसे हाथी की 10 बार खुशामत करनी पड़ती है ऐसे ही उसकी भी करनी पड़ती है, कुत्ते की नहीं करनी पड़ती वह तो पूंछ हिलाकर स्वयं आ जाता

है। परन्तु दामाद तो दामाद है, कई बार कहा-बोले भूख नहीं है। ससुराल में तो एक या दो पीस खायेगा मेरी तो भूख ही नहीं मैं तो देवगति से आया हूँ। अब क्या किया, शाम को तो नहीं खाया खूब दिखा रहा था रात को भूख लगी बड़ा मुश्किल। देखा यहाँ वहाँ सब सो रहे हैं। गया कुछ तो मिले खाने को। उसने चावल का बोरा देखा, और मुट्ठी भर चावल लिये मुँह में, तब तक ससुर वगैरह जग गये बोले चोर-चोर, वह उतनी जल्दी चावल तो खा नहीं सका मुँह भर गया हनुमान सा, सोच रहा था क्या करना चाहिये, सबने देख लिया अब तो वह मुँह ही न खोले वैद्य को बुलाया, वह बोला लगता है मुँह में कीड़े पड़ गये अब तो बड़ा मुश्किल, उसने चावल धीरे-धीरे नीचे ले लिये खा लिए किन्तु ये बात फैल गयी कि दामाद साहब को कैंसर हो गया, और मुंह टेड़ा सा हो गया, सबने उपाय किये कई बार वैद्य आया बोला आओ मेरे पास, उसने सिगड़ी मंगाई, दो लोहे की छड़ मंगाई और संड़ासी मंगाई, दामाद सोच रहा है क्या होने वाला है समझ नहीं आ रहा, चार व्यक्ति बुलाये दो से हाथ पकड़वाये, दो से पैर पकड़वाये सिर पकड़वाया, और सड़ासी से लाल कील उठायी और मुँह की ओर ले गया, वह इतनी तेज चीखा कि मुँह सीधा हो गया। महानुभाव ! यह भी ट्रिक है रोग दूर करने की।

तो उद्यमहीनता ही सबसे बड़ा रोग है और उद्यमशीलता सबसे बड़ी औषधि है तुम्हारी आत्मा में भी जो रोग लगा है वह उद्यमहीनता का रोग है।

उद्यमहीनता, अनुद्यम ही आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु है। आज बस इतना ही।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

(87)

सच्चा शूरवीर

महानुभाव !

आ. अमोघवर्ष महाराज बड़ी करुणा बुद्धि से अल्पाक्षरों में जीवन को सफल और सार्थक करने वाली सूक्तियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं, यदि इन्हें चित्त में धारण किया जाये तो चित्त में 'अक्षर' अवस्था की प्राप्ति होगी, चित्त में वे गुण उत्पन्न होगें जो कभी क्षय को प्राप्त न हो। 'अक्षर' का अर्थ ही होता है जिसका अभाव है ''अभावे क्षरं इति अक्षरं'' इसलिये केवल ज्ञान भी इस अपेक्षा से अक्षर ज्ञान है उसका कभी क्षर नहीं होता श्रुत ज्ञान के अक्षर भी क्षर से रहित हैं ''सिद्धोवर्णसमाम्नायः'' वर्णों की आम्नाय अनादि काल से सिद्ध है, चाहे कोई भी काल रहा हो किन्तु वर्णों की आम्नाय अनादि काल से सिद्ध है, चाहे कोई भी काल रहा हो किन्तु वर्णों की अनुभूति अनादि काल से है। हर काल में भाषा रही, हर काल में ध्वनि रही बिना भाषा, ध्वनि के व्यवहार नहीं चल सकता। चाहे भोगभूमि हो चाहे कर्मभूमि, चाहे ऊर्ध्वलोक हो या मध्य लोक, देव हो या नारकी, यहाँ तक कि तिर्यंच पशुपक्षियों की भी भाषा होती है। बिना भाषा के व्यवहार कैसे चलेगा भाषा एक माध्यम है अपने विचारों को, भावों को, योजनाओं को दूसरों तक पहुँचाने का। यदि भाषा रूपी माध्यम न हो, भाषा रूपी सेतु न हो तो कर्ता के विचार, भाव, योजनायें, संकल्प, विकल्प और अनुभूतियाँ श्रोता तक, जिज्ञासु तक कैसे पहुँचे और कैसे पहुँचे जिज्ञासाकार की जिज्ञासायें समाधानकर्ता के पास। इसलिये शब्दों का सहारा लेना तो बहुत जरूरी है, शब्द ही सेतु है दूसरों तक विचारों को पहुँचाने के लिए इनके बिना बाह्य जगत का काम चल नहीं सकता। यहाँ तक कि निश्चय में लीन होने के लिये भी पहले शब्दों का सहारा लेना पड़ता है, फिर बाद में शब्द छूट जाते हैं और अर्थ-अर्थ रह जाता है। कोई भी हवाई जहाज जब उड़ान भरता है तब एयरपोर्ट पर पट्टी पर चलता है तीव्र गति के बाद में वहाँ से उठता है। पहले चलना होता है, चलने के लिए शब्दों का मार्ग चाहिये, अक्षरों की, शब्दों की वह हवाई पट्टी चाहिये तभी ध्यान का हवाईजहाज उड़ सकता है।

महानुभाव ! यदि उन शब्दों की हवाई पट्टी नहीं होगी तो कभी भी हम आध्यात्मिक जगत में उड़ान नहीं भर सकेंगे। पक्षी भी जब उड़ता है तो जहाँ बैठा होता है उसके पहले वहाँ अपने पंखों को खोलता है तब पक्षी उड़ता है। बिना पंख खोले उड़ना प्रारंभ नहीं करता, तो पंखों को खोलने का आशय है शब्दों का सहारा लेना, और शब्द भी दो प्रकार के होते हैं, एक शुभ रूप निमित्त वाले दूसरे अशुभ रूप निमित्त वाले। यह शब्दों पर कम, शब्दों को ग्रहण करने वाले पात्रों पर ज्यादा निर्भर करता है क्योंकि वही शब्द किसी के लिये शुभ और किसी के लिये अशुभ रूप निमित्त बन जाते हैं। शब्द वास्तव में न तो शुभ होते हैं और न अशुभ। शुभ और अशुभ होता है

हमारा मनोभाव। यदि कोई व्यक्ति मीठे-मीठे शब्द बोलकर तुम्हें ठगने का प्रयास कर रहा है, उसका मनोभाव गलत है तो वे मीठे-मीठे शब्द भी तुम्हें चुभेंगे, और माँ प्यार के साथ में अपशब्द भी बोल रही है तब भी वे शब्द चुभते नहीं है। माँ आँखों से नेह बरसाती हुयी कहती है ''चल जा यहाँ से, परेशान कर रखा है, नहीं होता तो ठीक था, मर जा'' उसकी आत्मा से पूछो क्या वास्तव में ही मर जाता तो ठीक था। वह शब्द तो कह रही है, हो सकता है क्षणिक क्रोध के आवेश में कह रही हो किन्तु वे शब्द पुत्र को अच्छा बनाने के लिये है, वह प्रतारणा दे रही है, कई बार तो कटु वाक्यों का प्रयोग करके व्यक्ति के मन को नया मार्ग दिया जा सकता है और दिया जाता है और कई बार मीठे शब्द बोलकर के शहद लपेटी तलवार की तरह से खाक भी किया जा सकता है। विश्वासघात करने के लिये शहद लपेटी तलवार होना जरूरी है बिना विश्वास जताये विश्वास घात कैसे करोगे ऐसे ही शब्दों में कोई शक्ति नहीं होती जैसी जान डाल दो वैसी ही जान आ जाती है वे तो ढोलक की तरह से हैं जैसी थाप मारोगे वैसी आवाज निकलेगी, उसकी कोई गलती नहीं, शब्द तो ऐसे हैं जैसे पानी में, जैसा रंग डाल दो वैसा उसका रंग हो जायेगा।

देखो जैसे रंग का पानी करता संग, रंगहीन उस नीर का वैसा होता रंग॥

ऐसे ही शब्द शुद्ध हैं, तटस्थ हैं आ. समन्तभद्र स्वामी जी ने वृहद्स्वयंभू स्तोत्र में भगवान आदिनाथ की स्तुति की, कहा-आप तो निर्दयी हो। आचार्यश्री समन्तभद्र स्वामी की आत्मा से पूछो क्या वे अपने भगवान को निर्दयी कह सकते हैं कोई भी व्यक्ति अपने आराध्य को निर्दयी कह सकता है। वो तो कहता है-आप तो दया की मूर्ति हो किन्तु फिर भी वह स्तुति है। वह कह रहा है आप मोह के प्रति निर्दयी बन गये थे, इसलिये आपने अपना कल्याण कर लिया, मैं अपने प्रति निर्दयी बन गया हूँ जो मोह पर दया करता-फिरता हूँ, उल्टा कर दिया है। कई बार ऐसा भी देखने में आता है कि व्यक्ति पैर पूजने वाले से संतुष्ट कम होता है और निंदा करने वाले से ज्यादा संतुष्ट हो जाता है, हो सकता है संत महात्मा निंदा करने वाले को पहले स्थान दें, पैर पूजने वाला पीछे बैठे। उसकी कितनी भक्ति है उसे हर व्यक्ति नहीं समझ सकता। (एक लौकिक दृष्टांत है तथ्य को पकड़ने का प्रयास करना है।)

एक पंडित पुजारी था शिवजी की प्रतिदिन पूजा करता घंटी बजाता, फल फूल पत्र चढ़ाता, जल चढ़ाता सब कुछ करता। संयोग की बात एक दिन वह पुजारी मंदिर जा रहा था। पूजा करने उसके पहले एक ग्वाल आया और सुबह-सुबह न जाने क्या उसको सूझी, उसकी कोई भावना पूरी नहीं हो रही थी। आकर शिव जी के ऊपर बैठ गया। शिवजी प्रकट हुए तब उतर के आया। शिव जी ने कहा माँग ले जो वरदान माँगना चाहता है। चर्चा चल ही रही थी कि जब तक पुजारी आ गया। वह कहता है नहीं, ये अन्याय है पक्षपात है मैं वर्षों से आपकी पूजा कर रहा हूँ मुझसे आप

नहीं बोले। ये ग्वाल आपको डंडा मारता है और आप इससे चर्चा कर रहे हैं इसे वरदान देने की बात कर रहे है, मैं नहीं आया होता तो आपने तो इसे वरदान दे ही दिया होता। बोले-दे दिया होता तब भी और नहीं भी दिया होता तो भी दूँगा, ऐसा कैसे ? मैं आपको इतने फल पुष्पमाला चढ़ाता हूँ तो आपने मुझे कुछ नहीं दिया और न वरदान मांगने की बात कही। आज इसको कह रहे हो वरदान माँग ले। वे बोले-तूने तो मुझे जल, चंदन, अक्षत, पुष्प चढ़ाये हैं इसने तो पूरा जीवन ही मेरे ऊपर चढ़ा दिया। भावना की बात है कौन किसका क्या अर्थ लेता है, उसने अविनय की सिर पर चढ़ करके इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि उसने अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया हो।

एक बालक अपने दादाजी के दाढ़ी मूंछ के बाल नोंच रहा है तो दादाजी खुश होंगें या तमाचा लगायेंगे, वे तो और ज्यादा लाड़ लड़ायेंगे। उन्हें उस बालक की चेष्टायें अच्छी लग रही हैं किन्तु वही दाढ़ी मूँछ कोई दूसरा व्यक्ति खींच ले तो तलवार निकल जायेंगी, युद्ध हो जायेंगे। यहाँ पर हम चर्चा कर रहे थे अल्पाक्षरों की शब्दों की। अल्पाक्षर में कभी न क्षर होने वाले ज्ञान के बारे में संकेत कर रहे हैं। हमारे आचार्य भगवन् अमोघवर्ष ऋषिराज जो मोघ नहीं है जिसे कभी नष्ट नहीं किया जा सकता, जिसके वचन पत्थर पर खींची गयी लकीर के जैसे अकाट्य हैं, अमोघ का अर्थ होता है, जिसे कभी नकारा न जा सके, वर्ष का अर्थ होता है-क्षेत्र ऐसा क्षेत्र, ऐसा द्रव्य जो कभी काट्य नहीं रहा, कभी झुका ही नहीं, जो अमोघ रहा। **''अमोघं साधु वचनं''** साधु के वचन अमोघ होते हैं **''अमोघं जिनबिम्ब दर्शनं''** जिनबिम्ब के दर्शन अमोघ होते हैं **''अमोघं सूर्य उदय स्यात्''** सूर्य का उदय अमोघ होता है चाहे कुछ भी हो जाये पूर्व से ही उदय होगा पश्चिम से नहीं हो सकता।

जो कर्म बांधा है उसकी उदीरणा करो, चाहे संक्रमण करो उस कर्म को ज्यों की त्यों नष्ट कैसे करोगे ? जो द्रव्य आ गया आत्मा से चिपक गया वह तो निर्जीर्ण होगा ही होगा उसका क्या करोगे कभी भी उस द्रव्य को नष्ट नहीं किया जा सकता पर्याय बदली जा सकती है, तो अमोघवर्ष 'ऋषि' हैं। ऋषि का अर्थ होता है 'ऋद्धिसम्पन्न'। ऋषि का अर्थ होता है 'उपलब्धि'। तपस्या की उपलब्धियाँ चतुर्थ काल में अलग होती थी आज पंचम काल में शक्तिअनुसार कुछ अन्य प्रकार की होती हैं किन्तु उपलब्धि अवश्य होती हैं। तपस्या किसी भी काल में, किसी भी क्षेत्र में निष्फल नहीं जाती है। और अहंकार के लिये पतन का मार्ग कभी भी असाध्य नहीं है, तप उच्चता की ओर ले जाता है तो अहंकार न्यूनता की ओर ले जाता है। अधोलोक में कहीं भी दुरावस्था दुर्गति, दुराशय, दुर्दशा को प्राप्त हो जाता है किन्तु तपस्या करने वाला व्यक्ति चाहे मिथ्यादृष्टि क्यों न हो, वह भी तप के माध्यम से, कुतप के माध्यम से पंचम स्वर्ग तो जा ही सकता है, सम्यग्दृष्टि यदि अहंकार का पोषण करता है तब भी वह सम्यक्दर्शन के साथ पहले नरक तक तो जा ही

सकता है। महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि व्यक्ति किस प्रकार के आशय को लेकर शब्दों को ग्रहण करता है। किस प्रकार की भावना है महत्व तो भावनाओं का है। एक व्यक्ति भगवान की पूजा को करके भी पूजा के फल को प्राप्त नहीं कर पा रहा है और दूसरा व्यक्ति भगवान के ऊपर उपसर्ग करके भी पूजा के फल को प्राप्त कर लेता है। कितना आश्चर्य है एक महिला गरीब थी उसने अपनी शक्तिअनुसार मुनिमहाराज को भावपूर्वक मट्ठा का रावडी, महेरी का आहार कराया जिससे उसके घर में पंचाश्चर्य हुए, दूसरी सेठानी ने देखा कि इसके घर में इतना वैभव कैसे आ गया, उसने भी फिर वही कार्य करने का निश्चय किया। उन मुनिमहाराज ने जब महेरी का आहार लिया था तब सर्दी का समय था, और महाराज की इतनी विशुद्धि बढ़ी कि उसी दिन केवली हो गये। इधर दूसरी महिला ईर्ष्यावश गर्मी में रावड़ी बनाती है अन्य पदार्थ भी बना सकती थी किन्तु उसे भोजन से मतलब नहीं पंचाश्चर्य चाहिये थे। उसने भी एक अन्य मुनिराज को आहार दिया उसके यहाँ रत्नों की बरसात नहीं हुयी। क्रिया एक जैसी होती है, भावनाओं में कितना बल होता है। महानुभाव ! **''भावना भव नाशिनी, भावना भव वर्धनी''॥**

भावना क्रिया के प्राण होते हैं जिस क्रिया में भावना नहीं होती वह क्रिया निष्प्राण होती है और मुर्दे कभी कफन नहीं बदलते, मुर्दे कभी अपनी पर्याय नहीं बदलते, मुर्दे तो केवल एक ही अवस्था में कूटस्थ बने रहते हैं। जो व्यक्ति आगे बढ़ने के लिये तैयार नहीं होता वह व्यक्ति अपने आप को ही धोखा देता है वह व्यक्ति जीवन में कभी उन्नति के शिखर तक पहुँच नहीं सकता। उन्नति के शिखर तक पहुँचने के लिये जीवन में बदलाव बहुत जरूरी है किन्तु वह बदलाव अच्छे के लिये हों। बुराईयाँ छूटती हैं तो अच्छाई को लेकर आती हैं ऐसा शाश्वत नियम है। जीवन में जब भी कोई व्यक्ति एक बुराई छोड़ेगा तो तत्काल ही एक अच्छाई अवश्य ही उत्पन्न होगी, ऐसा कोई अंधकार नहीं जिसके नष्ट होने पर प्रकाश का सद्भाव न हो जाये। ऐसा कोई दोष नहीं जिसके नष्ट होने पर कोई गुण प्रकट नहीं होता, ये शाश्वत नियम है। जब भी किसी दोष का विलय होता है तो निःसंदेह किसी गुण का उदय होता है, निशा का अंत तो दिन का प्रारंभ होता है ये नियम है। तो महानुभाव ! अभी तक हम देख रहे थे छः कारिकाओं के बारे में, आचार्य महाराज हमें इतने सरल शब्दों में समझा रहे हैं जैसे कोई माँ अपने लघु वय बालक को समझाती है। लघुवय बालक एक बार में नहीं समझता, वह बार-बार समझाने पर समझता है, वह पूछता है यह कौन-कौन है एक-एक प्रश्न अलग-अलग करता है वह सारे प्रश्न एक साथ नहीं करता कि सारे कौन है। न तो वह ऐसे प्रश्न करेगा, न माँ बतायेगी, एक-एक करके पूछना, एक-एक करके बताना। ऐसा करने से उस शब्द पर फोकस पड़ता है एक साथ यदि 20 प्रश्नों के उत्तर दे देंगे तो हो सकता है आपको 2 या तीन ही बात समझ में आये, और एक-एक करके 20 प्रश्न करोगे तो बीसों के बीस उत्तर आपको समझ में आ जायेंगे।

महानुभाव ! आचार्य अमोघवर्ष महाराज जी कितने छोटे-छोटे प्रश्न कर रहे हैं और खुद ही उत्तर दे रहे हैं। याद रखना संसार में प्रश्न करना बहुत आसान है किन्तु उनके उत्तर नहीं दे सकते, और संसार में उत्तर देना भी बहुत आसान है किन्तु वे प्रश्न पैदा नहीं कर सकते है। यह काम कितना कठिन है कि खुद ही प्रश्न करना और खुद ही उत्तर देना। आचार्य महोदय कह रहे हैं बड़ा कठिन है सिर्फ प्रश्न ही प्रश्न की पोथी लेकर घूमना, कठिन है सिर्फ उत्तर ही उत्तर की विसंगति में पड़ना। अपने अंदर से ही प्रश्न करो अपने अंदर से ही उत्तर पैदा करो तुम स्वयं ही अपनी आत्मा को शिष्य बनाओ तुम स्वयं ही अपनी आत्मा को गुरु बनाओ तब तो तुम कहीं पहुँच पाओगे। दूसरों के उधार के प्रश्न यदि पैदा करोगे, और दूसरों के उधार के ही उत्तर लेकर चलोगे तो ज्यादा देर तक न चल सकोगे। अपने पैरों से यात्रा की जाती है दूसरों की वैसाखियाँ बहुत कम संभव हैं कि वे तुम्हारे फिट हो जायें। तुम्हारा कद कितना है, सामने वाले का कद कितना उसकी वैसाखी को लेकर कैसे चलोगे। इसलिये प्रश्न भी अपने हों, उत्तर भी अपने हों। आध्यात्मिक जगत तो यही कहता है कि अपनी आत्मा से प्रश्न करो रे आत्मन् तू अपनी आत्मा से प्रश्न कर, उत्तर भी अपनी आत्मा से निकाल शास्त्रों में उत्तर न खोज शास्त्र तो टॉर्च की तरह से हैं जो तेरी आत्मा में प्रकाश डालते हैं। आत्मा में लिखे को तू पढ़ सके। महानुभाव ! आचार्य अमोघवर्ष स्वामी की यह शैली बहुत अच्छी है यह शमन व लीनता की शैली है। शैली का 'श' शमन के लिये कहा है व 'ल' लीनता के लिये। जो कषायों के शमन के साथ आत्मा में लीन होता है। तो उसकी स्वयं की नयी शैली निकलती है वह शैली सलिल की तरह से हो, गरल की तरह न हो। सलिल की तरह होती है तो सब जगह अपना स्थान बना लेती है, गरल की तरह हो तो सब जगह नष्ट करती जाती है गरल माने जहर, सलिल माने जल। तो महानुभाव हम यहाँ आगे की कारिका देखेंगे:-

8वीं कारिकाँ हमारे जीवन में कुछ नया पाठ पढ़ाये। यह आठवीं कारिका हमारे जीवन के ठाट-बाट को नया राजपाट देने वाली हो इसलिये इस 8वीं कारिका से कुछ सांठ-गांठ कर लेनी चाहिये। आठ में ही छिपा एक पाठ है क्योंकि हमारे साथ कर्म भी आठ है। हमारे सिद्धत्व के गुण भी आठ हैं। उन सिद्धत्व के गुणों को पाने के लिये पहला प्रतीक है श्रावक के मूलगुणों को प्राप्त करना वे भी आठ हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिये श्रद्धा के लिये पूजन के द्रव्य भी आठ हैं तो महानुभाव यह 8वीं कारिका नि:संदेह चार दिशाओं चार विदिशाओं में यात्रा करने से रोकती है, सीधे ऊर्ध्व गति में जाने के लिये संकेत करती है। अब अधोगति में नहीं जाना। तो महानुभाव ! जो सिद्धों का ठाट-बाट है वही तुम्हारा ठाट-बाट रहे तो गाथा नं. 8 को देखते हैं एक-एक शब्द को देखने का प्रयास करेंगे यदि प्रयास सम्यक् होता है यदि आत्मा के प्रदेशों से उत्साह पूर्वक होता है तो वह प्रयास कभी विफल नहीं होता उस प्रयास में ही प्रेय की आस होती है जहाँ प्रेय की आस होती है वही प्यास होती है जब प्यास होती है तब नि:संदेह वहाँ विश्वास भी होता है वह

फिर दास बन जाता है अपने आराध्य का, और जब आराध्य का दास बन जाता है तो निश्चित मानिये पूर्ण विश्वास के साथ उसका आराध्य उसके पास होता है जब तक आराधक अपने आराध्य का दास नहीं होता है तब तक उसका आराध्य भी उसके पास नहीं होता है इसके लिये यहाँ गाथा नं. आठ को देखेंगे।

यहाँ बताया-

कस्माद्भयमिह मरणा, दन्धादपि को विशिष्यते रागी।
कः शूरो यो ललना, लोचन बाणै र्न च व्यथितः॥८॥

कस्मात् भय इह–इस लोक में किसका भय है, व्यक्ति किससे डरते हैं ? धर्मात्मा पाप से डरते हैं, सज्जन बालक अपने पिता से डरता है, कोई भव आताप से डरता है, कोई अभिशाप से डरता है, कोई संतोष से डरता है सब अलग-अलग डरते हैं कोई भोग से डरता है, कोई योग से डरता है, कोई रोग से डरता है, कोई नियोग से डरता है, कोई वियोग से डरता है तो डरने के सबके अलग कारण हैं किन्तु यह भय कोई वास्तव में भय नहीं इन सभी भयों का उपचार किया जा सकता है, इन सभी के उपचार हैं इसलिये इनसे डरने की ज्यादा आवश्यकता नहीं है। केवल डरना उससे है जिसका कोई परिहार न हो तो किस भय का परिहार नहीं है इस जग में वह है मृत्यु। इसका उपाय किसी के पास है क्या ? जो मृत्यु से डरता है, उसे मृत्यु और डराती है और जो मृत्यु के सामने निर्भीक होकर खड़ा हो जाता है उसे मृत्यु डराती नहीं किन्तु जीवन में जरूर आती है, क्योंकि इसका परिहार नहीं है हाँ अगर मृत्यु की मृत्यु कर दो तो फिर जन्म नहीं होगा, हाँ अगर जन्म नहीं होगा तो मृत्यु नहीं होगी, अगर जन्म हुआ है तो मृत्यु नियम से होगी ही होगी, उसे कोई मिटा नहीं सकता। तो मरण से भय होता है। इस लोक में सभी प्रायःकर जीना चाहते हैं आप कहेंगे महाराज जी दुःखी व्यक्ति क्यों आत्महत्या करना चाहता है? नारकी क्यों मरना चाहता है ? इसका कारण ये कि वे मृत्यु से नहीं दुःख से डर कर ऐसा करते हैं। यदि दुःख न होता तो वे जीते। उन्होंने अपने जीवन का यही समीकरण निकाला कि दुःख की जो आज वेदना हो रही है। इससे कम वेदना मृत्यु में होती होगी इसलिये यह रास्ता निकालता है। वह नहीं जानता है कि यह मेरा कर्म है यहाँ तो मैं मृत्यु को प्राप्त हो गया मरकर के नरक में गया, वहाँ पर भी वही दुःख मिलेगा तो कहाँ जायेगा। कर्म तो तेरा है, शरीर को छोड़ने से तेरा कर्म थोड़े ही छूट गया, कर्म तो पूर्वभव से ही आत्मा के साथ चिपके हैं। यदि कर्म इस शरीर के साथ चिपके होते तो आत्म घात करने से शरीर के साथ चिपके रह जाते, वे कर्म तो आत्मा से चिपके हैं इसलिए आत्मा कहीं भी जाये, किसी भी गति में जाये, कोई भी शरीर धारण करेगी जो कर्म खट्टे, खारे, नमकीन कर्म हैं उनका फल वैसा ही होगा चाहे शरीर वह कैसा भी प्राप्त कर ले फल तो भोगना ही पड़ेगा। अच्छा कर्म है तो भले ही कुत्ते की योनि में पहुँच जाये उसकी सेवा राजकुमार सी होगी, और बुरा

कर्म है तो चाहे वह मनु की संतान मनुज ही क्यों न बन जाये तो हो सकता है पशु की तरह से गाड़ी में जोता जाये, हो सकता है पशु से ज्यादा निष्ठुर व्यवहार उसके साथ किया जाये, क्यों कि कर्म तो उसकी आत्मा के साथ लगे हैं अत: मरण से सबको भय होता है जीने की इच्छा सबकी समान होती है।

अमेद्य मध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुराग्रही।
समो मरणात् भयो स्यात् द्वयो कांक्षा जीवनम्॥

विष्टा में जन्म लेने वाला कीड़ा और स्वर्ग में सौधर्मइन्द्र आदि दोनों ही मृत्यु से डरते है और दोनों के जीवन में जीने की समान इच्छा होती है। यदि विष्टा का कीड़ा है तो वह वहीं उसमे मस्त है मरना नहीं चाहता और सुरेन्द्र है वे इन्दन क्रिया में मस्त है वह वहाँ से मरना नहीं चाहता। व्यक्ति जो दुखी है वह भी मरना नहीं चाहता। चाहे व्यक्ति दु:खी हो, सुखी हो, गरीब ही क्यों न हो वह अपनी झोपड़ी को छोड़ना नहीं चाहता और जो व्यक्ति महलों में रहता है वह महलों को नहीं छोड़ना चाहता है उसके लिये वही सुख दे रहा है।

नाली में एक सूअर लोट रहा था, वहाँ से एक सज्जन पुरुष निकले उनको दया आ गयी-बोले अब तू यहाँ से निकलकर कोई अच्छा काम कर स्वर्ग में पहुँच जाएगा। वह बोला-पंडित जी आप तो आगे चलो। मैं कहाँ पहुचूँगा इसकी चिंता आप मत करो। पंडित जी का मन नहीं माना वे लौट करके आये तब तक एक देव आया उसने कहा मैंने तो सोच लिया है कि मैं इस नगर के सब लोगों को स्वर्ग पहुँचाऊँगा, और यहीं से नंबर लगाता हूँ। सूअर से कहा-चल स्वर्ग में, वह बोला स्वर्ग में तो मैं चलूँगा अच्छी बात है किन्तु एक बात बता-स्वर्ग में ऐसी नाली है कि नहीं। वह बोला-स्वर्ग में ऐसी नाली कहाँ, वहाँ इसका क्या काम ? तो चल भाग यहाँ से मुझे तेरे स्वर्ग में नहीं जाना, मुझे तेरे स्वर्ग से बढ़कर आनंद यहाँ आ रहा है। फिर एक वणिक पुत्र के पास देव गया, उसने कहा स्वर्ग में तो मैं चलता हूँ यद्यपि यहाँ पर भी व्यापार अच्छा चल रहा है किन्तु फिर भी चलता हूँ ये बताओ स्वर्ग में कौन सी चीज महंगी बिकती है उस चीज को मैं यहाँ से साथ में लेकर जाऊँगा वहाँ जाकर बेचूँगा तो अच्छा लाभ हो जायेगा ? व्यक्ति अपने मन के अनुसार ही दूसरे पदार्थों का मूल्यांकन करता है उसके गुण धर्म स्वभाव के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं करता अपनी बुद्धि के अनुसार ही चलता है जिस बर्तन में एक किलो पानी आ सकता है उसमें तुम 2 किलो पानी कैसे भर सकते हो। नदी में पानी कितना भी हो पर तुम तो उतना ही ले सकते हो जितना बड़ा पात्र तुम्हारे पास है, उससे ज्यादा आज तक किसी ने लिया है क्या ? देने वाला क्या देता है ये एक अलग बात है, तो महानुभाव ! सभी अपनी बुद्धि से अलग-अलग सोचते हैं। यहाँ पर कहा-'कस्मात् भय मिह मरणा' (भय किससे है मरण से। तो मरण से सभी डरते है दुख हो चाहे सुख हो कोई भी मरना नहीं चाहता। कोई बहुत ही ज्यादा दु:खी हो तब

कहता है इससे तो मर जाऊँ कहता है किन्तु मरते-मरते उसे भी डर लगता है। जो मरने के लिये तैयार होता है वह भी सोचता है मरूँ कि नहीं। आत्महत्या करने वाले भी सोचते हैं वे किसी आवेश में आकर कर लेते हैं, शास्त्रों में कई जगह आया व्यक्ति आत्म हत्या करने गया-चढ़ा-उतरा कई बार सोचा यहाँ से गिर जाऊँ वहाँ से गिर जाऊँ। एक मुनिमहाराज ने देखा कि कोई परछाई है उसको बुलाया-समझाया उसने दीक्षा ले ली और वह नंदीषेण बन मुनि की सेवा भी करता है। अगले भव में वह वासुदेव बन जाता है। तो महानुभाव ऐसा नहीं है कि व्यक्ति मृत्यु से डरता नहीं है। आगे कह रहे हैं-

अन्धाऽपि को-अन्धे से भी ज्यादा अंधा कौन है ? अंधे से भी ज्यादा अंधा वह है जो राग में लीन है उसे दिखाई नहीं देता। लोग कहते हैं उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता, इंसान को रात में नहीं दिखाई देता किन्तु रागी को तो न दिन में और न रात में दिखाई देता, उसको तो जो उसकी आँखों में बसा है बस वही-दिखाई देता है। ऐसे ही धर्मानुरागी अपने इष्ट में, परमात्मा में इतना पागल हो जाता है उसे भी कुछ नहीं दिखाई देता है, मीरा कृष्ण की भक्ति में पागल हो गयी, कई लोग इतने भक्त होते है जिन्हें सुबह से शाम तक मंदिर ही मंदिर दिखाई देता है। व्यक्ति तीव्र भावना के साथ कहीं यात्रा को जा रहा है तो आँख बंद करते ही उसे शिखर जी दिखाई देता है। सपने में भी वही, आँख खोलने पर भी वही-वही दिखाई देता है, रास्ते में कौन व्यक्ति आया, कौन चला गया कुछ सुध ही नहीं। जब भगवान के प्रति बहुत ही श्रद्धावान होते है, पाठ चलते है सिद्धचक्र आदि पाठ शाम तक बैठे हैं भगवान की भक्ति में मस्त। जब व्यक्ति जिसमें लीन हो जाता है तब उसे वही-वही दिखाई देता है। तो अंधा कौन है जो रागी है, रागी भी अलग-अलग प्रकार के होते है। जैसे Blind Supporter अंध भक्त जो जिसके राग में रंग गया, उन्हें सिर्फ वही वही दिखाई दे रहा है जो अशुभ व्यक्ति के राग में रंग गया है तो अशुभ व्यक्ति जहाँ जायेगा, वहाँ तुम भी जाओगे, शुभ राग में रंग गये हो तो शुभ आत्मा जहाँ जायेगी वहाँ तक तुम भी पहुँच जाओगे इसलिये राग में यदि रंगना ही है तो कम से कम देव शास्त्र गुरु के राग में रंगो। आप भजन की पंक्तियाँ बोलते है-''मेरी ऐसी रंग में रंग दो चुनरिया, लाल नहीं पीली नहीं, हरी नहीं नीली अपने ही रंग में मेरी रंग दो चुनरिया''। कोई और रंग तो चाहिये ही नहीं, आपके रंग का ही संग चाहिये। अन्य सभी रंग तो बदरंग है आपका रंग यदि एक बार चढ़ जाये तो फिर दूसरे रंग की जीवन में आवश्यकता नहीं पड़ती। चाहे भले ही लोग कुछ भी कहे मीरा से उसके लिये जहर का प्याला भी भेज दिया किन्तु उसे तो अपना स्वामी दिखाई दे रहा है, प्रहलाद हिरण्य कश्यप का पुत्र राम का भक्त था, उसे लोहे के खम्भों से लगाया गया तो वह मर गया क्या? या पर्वत से धकेला तो मर गया क्या ? उसने देखा कि अवे के अंदर कुम्हार बर्तन पका रहा है। कुम्हार भगवान का नाम ले रहा है चक्कर लगा रहा है, पूछा क्या है तो बोला इसमें बिल्ली के बच्चे चले गये,

तीन दिन बाद अवा खोला तो बिल्ली के बच्चे जीवित निकल आये, उसे विश्वास हो गया कि मेरा पिता भगवान नहीं है, भगवान तो राम है उसका नाम लेने से कल्याण होगा, उसके पिता ने उसको खूब धमकाया मुझसे बड़ा कोई भगवान नहीं, मेरा नाम ले-बोला नहीं-कभी नहीं वह भयभीत नहीं हुआ, यहाँ तक कि होलिका ने भी जलाने का प्रयास किया गोदी में लेकर बैठी जैसी किंवदंती है। किन्तु वहाँ उल्टा हो गया, वह तो बच गया, होलिका जल गयी।

तो कहने का आशय है कि जिसकी भक्ति में रम जाता है। फिर उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता, कोई भी बाल बांका नहीं कर सकता।

ठंडा हुआ तोप का गोला, तब सबने जयकारा बोला।

महावीर जी में अमरचंद दीवान को तोप से उड़ाने का प्रयास किया तोप का गोला भी ठंडा हो गया, अग्नि सीता जी के लिये जल हो गयी अपने भगवान की भक्ति में लीन थी, क्या नहीं होता, सर्प सोमासती के लिये फूलों की माला हो गयी वह तलवार भी हार हो गया, सूली से सिंहासन हो जाता है ये सब आप पढ़ते हैं पर कब होता है ? जब आप उसकी भक्ति में रम जाओ तब। एकीभाव हो जाये। एकीभाव स्तोत्र के कर्ता आ. वादीभराजसिंह जो कुष्ट रोगी थे कंचन जैसी काया हो गयी, धनंजय कवि जब अपने भगवान की भक्ति में रम गया तो उसके द्वारा गंधोदक डालने से बेटा भी विष से निर्विष हो गया, मानतुंग आचार्य भक्ति में लीन है कब अड़तालीस ताले टूट गये कुछ अहसास ही नहीं हुआ तो महानुभाव ! यहाँ यह बात कह रहे हैं कि रंगा हुआ व्यक्ति अंधा होता है अंधे से अंधा वह है जो किसी के राग में रंगा हुआ है उसे सब कुछ दिखाई देते हुये भी कुछ नहीं दिखाई देता अगली बात-**''कः शूरो''** संसार में शूरवीर कौन है सहस्रभट्ट, लक्षभट्ट, कोटिभट्ट ये सब सुघट और भट उसके सामने कुछ भी नहीं हैं क्योंकि बाहर की सेना को जीता जा सकता है बहुत सरल है जीतना बाहर की सेना को, जीतने के लिये वीरता चाहिये, वीर व्यक्ति बड़ी-बड़ी सेना को परास्त कर सकता है अकेला भी 100, 1000 पर भारी पड़ जाये और पराये को जीतने के लिये वीरता चाहिये अपनों को जीतने के लिये धीरता चाहिये। जो व्यक्ति धीर है वह अपनों को जीत सकता है धैर्य के साथ। वीरता कभी अपनों पर नहीं दिखायी जाती जब दिखा दी जाती है तब पश्चाताप करता पड़ता है, भरत शायद बाहुबली को धीरता से नहीं जीत पाये मंत्री मण्डल के बार-बार कहे जाने पर बाहुबली को बुलाया दूत भी, भेजे किन्तु बाहुबली भी किसी को वचन दे चुके थे, तो धीरता से नहीं वीरता से जीता, कहते हैं तीन युद्ध हुये और बाद में चक्ररत्न भरत ने बाहुबली पर छोड़ा किन्तु ऐसा नहीं है आगम पढ़ते हैं तो ये रहा भरत खीज गये और कहा-ये संभालो चक्र। नियम बनाया था कि जो तीन युद्ध में जीत जायेगा। उसे ही चक्रवर्ती माना जायेगा। भरत का हृदय बहुत कोमल था, वह सोचता है मैं अपने भाई को

कैसे समझाऊँ निन्यानवे भाई चले गये एक को कैसे समझाऊँ ये भी चला जायेगा तो मैं किसके सामने चक्रवर्ती बनूँगा। व्यक्ति कोई वैभव प्राप्त करता है तो अपनों के बीच में उसे दिखाना चाहता है जब अपने देखने वाले न हों तो किस काम का वैभव। तुमने कोई चीज जीत भी ली कोई उपलब्धि प्राप्त भी कर ली तो अपनों को ही तो दिखाओगें जो तुम्हें जानता है, तुम्हारे लिये जी रहा है और जिसके लिये तुम जी रहे हो उसको दिखाये बिना तुम कैसे रहोगे तो भरत तो भाईयों के लिये था भाई उसके लिये थे, जैसे ही वह दिग्विजय कर लौटता है। 99 भाई तो दीक्षा ले लेते हैं वे तो नाम सुनकर ही कि राज्य तो हमारे पिताजी का दिया हुआ है इनका नहीं, हम इनकी अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे और दीक्षा ले ली। बाहुबली दीक्षा लेने तब नहीं गये थे क्योंकि वह किसी को वचन दे चुके थे। इसलिये वे युद्ध क्षेत्र में आये। तीन युंद्धों में-भरत स्वयं अपनी पराजय स्वीकार करते हैं। दृष्टियुद्ध में बाहुबली भरत से कद में बड़े थे, भरत बाहुबली को नेह की दृष्टि से देख रहे हैं। क्रोध में तो तुम एक साथ 1-2 या 3 मिनट देख सकते हो किन्तु जब कोई प्यार में अपने इष्ट को या भगवान को देख रहा हो तो ज्यादा देर देख न पायेगा आँख बंद हो जायेगी। तो भरत बाहुबली को प्यार से देख रहे या यूँ कहे बाहुबली नीचे भरत ऊपर देख रहे या यूँ कहें कि भरत ने अपने छोटे भाई का मान रखने के लिये अपनी पलक झुका ली। पहले युद्ध के बाद विजय के नगाड़े बजने लगे कि विजय बाहुबली की हुयी। दूसरा युद्ध जल युद्ध हुआ। गर्मी चढ़ गयी थी ना ! आँखों में लालिमा आ गयी थी, दोनों आमने सामने देख रहे थे, पानी डालना जरूरी था, दोनों आमने-सामने आ गये और एक दूसरे के ऊपर पानी डाला, उछालने की परम्परा गलत है फिर भी अब तो निर्णय लिया मंत्री मण्डल ने, भरत बाहुबली पर, बाहुबली भरत पर शीतल जल भी उछाल रहे फिर भी अनर्थकारी हो रहा है, भरत जब जल उछालते हैं तो बाहुबली के वक्षस्थल तक जाता है और जब बाहुबली डालते हैं तो भरत की आँखों पर जाता है और कुछ समय बाद नगाड़े बज गये बाहुबली पुनः विजयी हुये, दो युद्ध में बाहुबली जीत गये थे तीसरे युद्ध की यद्यपि आवश्यकता नहीं थी फिर भी बाहुबली जब कहते हैं नहीं तीसरा युद्ध भी लडूँगा, भरत जितने क्षमावान् थे बाहुबली उतने उच्च कोटि के स्वाभिमानी भी थे, मल्लयुद्ध भी हुआ यह मूर्खों का युद्ध कहलाता है, ताल ठोककर आ गये मैदान में दोनों उतर गये, भरत कहते हैं कैसे समझाऊँ छोटे भाई को, बड़ा भाई समझाने का प्रयास करता है, छोटा भाई जब जिद्द पकड़ जाये तो बड़ा सोचता है क्या करूँ मन मसोस कर रह जाता है कि यह समझता क्यों नहीं अरे चक्रवर्ती का नियोग है तो उसे खुशी होनी चाहिये, कोई और नहीं उसका भाई ही तो है एक ही पिता जी के तो बेटे हैं। किन्तु फिर भी दोनों में युद्ध हुआ अंत में बाहुबली ने भरत को उठाकर सिंहासन पर बैठा दिया भरत के बिना कुछ कहें आँखों से आँसू बहने लगे सोच रहे थे बाहुबली तू तो मुझे पटक देता तो ठीक था। सिंहासन पर बैठाकर बाहुबली का हृदय पिघल गया, जिस भाई ने पिता के

समान प्यार किया, पिता की दीक्षा के बाद मैंने भाई के साथ ये व्यवहार किया वह अन्तर्ग्लानि से भर गये। जैसे भरत को उठाया था ऐसे तो भरत ने बाहुबली को हजारों बार उठाया था गोदी में खिलाया था, आज बाहुबली ने भरत को उठा लिया नीचे पटकने के लिये ? उसकी आत्मा रो उठी, उसने भरत को सिंहासन पर बैठा दिया और चरण पकड़ लिये कहा भाई तू ही चक्रवर्ती है अब बस ! मुझसे भूल हुयी। और चल दिये तपोवन की ओर, बाहुबली आगे-आगे भरत पीछे-पीछे सभी ज्योतिषी देव, वैमानिक देव देख रहे हैं माना कि सूर्य चन्द्रमा रुक गये हों क्या दृश्य, भरत पीछे-पीछे आँसू बहाते हुये जा रहे हैं ठहरो-ठहरो कह रहे हैं रुको-रुको, वैरागी पीछे मुड़कर नहीं देखता, यदि देखता है तो वैरागी। नहीं चले गये भरत से कुछ नहीं बना बच्चों की तरह दौड़कर पहुँचे और पैर पकड़ लिये बाहुबली को खूब मनाने का प्रयास किया, भरत रोने लगे टप-टप आँसू टपक रहे हैं मानों बाहुबली के चरणों का प्रक्षालन कर दिया जब भरत ने आँसुओं से प्रक्षालन कर दिया तो क्या बाहुबली पत्थर के थे उनके भी आँखों से आँसू आ गये, वैराग्य कभी कठोर नहीं होता भले ही तीव्र वैराग्य था आत्मा अलग है शरीर अलग है बाहुबली की आँखों से आंसू गंगा यमुना जैसे बहने लगी। भरत चक्रवर्ती का सिर से अभिषेक हो रहा है सूर्य चन्द्रमा उस समय ठहर गये संध्या काल का समय था संभव है पूर्णमासी के आस-पास का समय होगा चन्द्रसूर्य आमने सामने आ गये वे ठहर कर देख रहे हैं। यह दृश्य कभी देखने में नहीं आया कि एक चक्रवर्ती दीक्षार्थी के चरणों का अभिषेक कर रहा है अपने नयनों के जल से और एक कामदेव (दीक्षार्थी) चक्रवर्ती का राज्याभिषेक कर रहा है अपने नयनों के जल से। रत्नाकर कवि लिखता है भरतेश वैभव में कि यह दृश्य अपने आप में एक अनुपम दृश्य है कि भरत ने दीक्षार्थी बाहुबली के चरणों का दीक्षा अभिषेक किया और बाहुबली ने प्रथम चक्रवर्ती का राज्याभिषेक अपने नयनों के जल से किया यह वृत्तान्त इतिहास में अमर हो गया कि इसके पहले न ऐसा कोई कामदेव जिसने चक्रवर्ती का ऐसे अभिषेक किया हो न ऐसा कोई चक्रवर्ती हुआ कि जिसने कामदेव के चरणों का प्रक्षालन किया हो। तो महानुभाव-हम देख रहे थे शूरवीर कौन-अपनों को जीतने के लिये धीरता चाहिये यदि धैर्य का आलम्बन लेते भरत तो संभव है बाहुबली आज नहीं तो कल कभी न कभी तो पिघल ही जाते। वह हिमालय पर्वत पर जमी बर्फ कब तक ठहरेगी कभी न कभी तो पिघलेगी ज्यादा नहीं तो कम, सूर्य का प्रकाश तो उसे पिघला कर ही रहेगा किन्तु जो धैर्य धारण नहीं करते उन्हें अपनों के बीच मेंसफलता नहीं मिलती। परायों के बीच में उतावला पन कदाचित् सफलता दे सकता है किन्तु अपनों के बीच में उतावलापन कभी सफलता नहीं देता। एक साहित्यकार कहता है-

कि जीवन में जब भी सफलता मिलती है वह धैर्य से मिलती है। हम-आप जैसे किसी सज्जन से पूछ लिया-ऐसा कैसे हो सकता है ? क्या सभी सफलतायें धैर्य से मिलती हैं पानी को

छलनी में भरकर बताओ ? वह कहता है तुम तो समझते हो कि तुमने मेरे ऊपर बहुत बड़ी शंका रख दी, जिसका कोई समाधान नहीं है, मेरे धैर्य को तुम काटना चाहते हो, मेरा धैर्य अकाट्य है यूँ ही कटता नहीं, कभी तिनकों से हीरे को नहीं तोड़ा जाता। मेरा वही सिद्धान्त है यदि धैर्य से सफलता मिलती है, मैं धैर्य धारण करूँगा, तब तक भरूँगा जब तक पानी बर्फ न बन जाये जम जायेगा तो पानी छलनी से जा नहीं सकता। तो महानुभाव ! धैर्य की कोई सीमा नहीं होती जो निस्सीम धैर्य को धारण करते हैं वे जीवन में निस्सीम सम्पदा को प्राप्त करते हैं। महानुभाव ! तो कः शूरो-शूरवीर कौन है **लोचन बाणै र्न च व्यथितः**

ललना के लोचन नेत्र बाणों से जिसका हृदय न भिदे। दिव्यबाणों को दिव्य शक्तियों से जीता जा सकता है। लक्ष्मण ने वह देव शक्ति झेली

वीर घातनी छाणास सांगी।
तेज पुंज लक्ष्मण उर लागी।

अपना जैन दर्शन कहता है वह दिव्य शक्ति पुण्य से प्राप्त हो जाती है वह शक्ति जो रावण के पास थी, उसे लक्ष्मण पर चलायी वे बेहोश हो गये प्रातः काल तक मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते किन्तु वैदिक परम्परा कहती है कि संजीवनी बूटी के माध्यम से काम हो गया जैन दर्शन कहता है कि विशल्या के जल के माध्यम से जो कि अनेक रोगों को दूर करने वाला था, उसकी समीपता जैसे ही आयी वह शक्ति लौट गयी।

महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि सभी के उपचार हो सकते हैं, व्यक्ति तेज तलवार को सह सकता है, बाण प्रहार को झेल सकता है, दिव्य अस्त्र शस्त्रों को भी काट सकता है इन सबको झेलने वाला भी शूरवीर नहीं है महाराज अमोघवर्ष ऋषि के शब्दों में शूरवीर वही है जो युवती के कटाक्षों को झेल जाये और असर न हो। जैसे-बर्फ पर अग्नि का कोई असर नहीं होता है वैसे ही वो शूरवीर है जिसका मन डिगे नहीं।

मद की छकी अमर ललनायें, प्रभु के मन में तनिक विकार।
कर न सकी आश्चर्य कौन सा रह जाती हैं मन को मार॥
गिर-गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु शिखर,
हिल सकता है रंच मात्र भी पाकर झंझावात प्रखर॥

सुमेरु पर्वत कभी भी नहीं हिल सकता, ऐसे ही जो शूरवीर हैं वह ललना के कटाक्षों से डिगता नहीं। ललना केवल मुस्करा कर ही चली जाये तुम्हारे हाव-भाव ढीले हो जाते हैं, तुम बेसुध हो जाते हो। अरे ! कितने सस्ते हो तुम, कितना सस्ता है तुम्हारा दिल किसी एक युवती की मुस्कुराहट पर रीझ जाते हो तुम, जिंदगी भर की गुलामी स्वीकार कर लेते हो तुम। ये जंजीरे

मनुष्य शौक-शौक में पहनता है किन्तु शूरवीर ऐसी जंजीरों में बंधकर अपनी जिंदगी नहीं बिता सकता। जिस शूरवीर को हजार योद्धा बंदी नहीं बना पाये उस शूरवीर को कामदेव जल्दी बंदी बना देता है। जो सुंदरी लंका की रक्षा में थी हनुमान जी जब गये, सीता जी की खोज करने के लिये, लंका सुंदरी से युद्ध किया पर हनुमान भी हरा न पाये उस लंका सुंदरी को। उसके पिता को तो मार दिया पर लंका सुंदरी तो वास्तव में ही बहुत कुशल थी। हनुमान को पुनः छल का प्रयोग करना पड़ा, हनुमान जी कामदेव थे, युद्ध करते-करते वहाँ भी कामदेव का रूप धारण किया और उनकी मोहनी मूरत देख लंका सुंदरी की निगाह टिक गयी, उसने अस्त्र-शस्त्र चलाना छोड़ दिया, मोहित हो गयी, यहाँ तक कि उनका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। फिर लंका सुंदरी से रास्ता पूछा-बताओ लंका का रास्ता कहाँ कैसे है फिर सीता को लाने के लिये गये।

ऐसे ही व्यक्ति जब तीर से नहीं जीत पाता है तब कामदेव से अच्छे-अच्छे परास्त हो जाते हैं। जो ललना के लोचन बाणों से डिगे नहीं, जिसका मन अखण्ड रहे ललना के, हास, विलास, हाव-भाव, भ्रू संचालन जिसका मन डिगा न पायें वास्तव में वहीं शूरवीर है। जो हाव से गिर गया हाव अर्थात् हाथ पैर चलाना, जो भाव से गिर गया, ललना के मन में कोई भाव है उस भाव में वह फंस गया, भ्रू संचालन नेत्रों का संचालन से डिगग या तो आगे क्या करेगा, कुछ नहीं कर सकता। महानुभाव ! आचार्य अमोघवर्ष महाराज तो कह रहे हैं-बहुत शूरवीर देखे मिट्टी में मिल गये, हजारों को मिट्टी में मिला दिया किन्तु हम तो शूरवीर उसे मानते हैं जिसका मन ललना के नेत्रों से भी खण्डित न हो पाये। जिसके हृदय में छेद न हो पाये, दुःखी न हो पाये। अच्छे-अच्छे सूरमा ललना के नेत्रों के कटाक्ष के आगे नतमस्तक हो गये। महानुभाव ! वे पाँच बालब्रह्मचारी तीर्थंकर जिन्हें ललनाओं का कटाक्षबाण भेद नहीं पाया। यद्यपि 19 तीर्थंकर शूरवीर तो थे किन्तु पहले तो चोट खा ली उसके बाद में ही तो आगे बढ़े, समझ तब आई एक बार तो ललना ने पटकी दे ही दी, एक बार तो संसार में फंस ही गये, संसार में फंसे किन्तु जब आत्म बोध हुआ तो घटना चक्र आगे घटा चाहे सफेद बाल देखकर या विद्युत्पात देखकर, चाहे नीलांजना की मृत्यु से चाहे अन्य किसी कारण से बोध हुआ तभी तो ललना को जीतकर आगे बढ़े, तब ललना के बाण उनका बाल बांका न कर सके। तो शूरवीर तो वह है जिन्हें कोई बांध न पाये। सांकलों को तोड़ना सरल है, दीवारों को तोड़ना सरल है, नियम व मर्यादाओं को तोड़ना सरल है, अनुशासन को तोड़ना सरल है, किन्तु सरल नहीं है किसी अंगना के प्रेम पाश को तोड़ना। बहुत कठिन है जो तोड़ देता है वास्तव में वही शूरवीर है। 19 तीर्थंकरों ने भी तोड़ दिया तो वे भी वास्तव में शूरवीर है। पाँच को तो वह बांध ही नहीं पाया तो वे तो और शूरवीर है।

कान्ता कनक सूत्रेण वेश्मतं यो सकल जगत्।
तासु तेषु वृत्तौ य द्वि भुजा परमेश्वरः॥

पूरा संसार दो रस्सीयों से बंधा है। कान्ता और कनक से वेष्टित है। जो व्यक्ति इनसे विरक्त हो गया वह दो हाथ का ब्रह्मा है, परमात्मा है, जो जीते जी कनक कान्ता से विरक्त हो गया वह परम ईश्वर की दशा को प्राप्त कर लेगा, और आज भी परमेश्वर की तरह से पूज्य है। कौन सा व्यक्ति जो कनक और कान्ता से विरक्त है जो कनक कान्ता से विरक्त नहीं है उसके पास चाहे कुछ भी हो, शब्दों का, ज्ञान का ढेर भी हो वह भी मिट्टी है। कुछ नहीं है, यदि किसी युवती को सुन्दर से पुत्र की प्राप्ति हुयी हो पुत्र बिल्कुल कामदेव जिसे देखकर व्यक्ति रीझ जाये वह युवती भगवान के सामने स्तुति गा रही है कि आपने क्या पुत्र दिया है वह पागल हुयी जा रही है उसका पति कह रहा है देख पुत्र तो सुंदर दिया है किन्तु इसमें प्राण तो नहीं दिये, वह सुंदर पुत्र किस काम का जिसमें प्राण नहीं हो। यदि प्राण वाला कम सुंदर होता तो ठीक था पर प्राण तो होते उसका पति झींक कर कहता है तू किसका गुणगान कर रही है ये मिट्टी है यदि प्राण नहीं है तो। महानुभाव ! जिस व्यक्ति के पास विरक्ति का भाव नहीं है वैराग्य का भाव नहीं है सम्यक्त्व नहीं है तो ज्यों की त्यों सब कुछ मिट्टी है और यदि सम्यक्त्व की निधि है रत्नत्रय की निधि है तो उसका जीवन सफल है जो कनक और कान्ता के सूत्र में नहीं बंधा है। कान्ता अपनी बाहु से बांधती है और कनक अपने प्रभाव से बांधता है, कान्ता तो पास में रहकर बांधती है। कनक दूर से भी बांध लेता है कान्ता से पहली बार तो आमना सामना होना चाहिये फिर उसकी याद बांधकर रखेगी किन्तु कनक चाहे आमना-सामना पहली बार हो या न हो दूर से ही कोई कह दे कि तुम्हारे हिस्से में 1 कि. सोना है। वहाँ रखा है उठा लेना, तुमने सोना देखा नहीं पर कल्पना आपके मन में हो जाती है। उस स्वर्ण ने तुम्हें बांध दिया सौ कार्य छोड़कर तुम भागकर उसे लेने जाओगे।

तो वही दो भुजा का भगवान है जो इन दोनों से विरक्त हो गया, यद्यपि इन दोनों से विरक्त नहीं हुआ तो वह कल्याण का पात्र नहीं है और चाहे किसी का भी पात्र हो जाये।

आगे की कारिका कल देखेगें।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

(101)

कर्णांजलि का अमृत

पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिव बुध्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम॥९॥

महानुभाव !

पातुं कर्णाञ्जलिभिः- कर्ण रुपी अंजली के द्वारा

अमृतं इव-अमृत के समान **पातुं**-पीने के योग्य क्या है ?

सद्उपदेशः सद्उपदेश, आगे कहा- **किं गुरुताया मूलं**-संसार में गुरुता प्राप्त करने का मूल कारण क्या है ? व्यक्ति संसार में गुरु कैसे बने ?

एक शिष्य गुरु के पास पहुँचा कहा-महात्मन् ! मैं अपना कल्याण करना चाहता हूँ। ठीक है पहले शिष्य बनो, शिष्य के क्या-क्या कार्य है, कहा-जो-जो काम मैं कहूँगा वो तुम्हें करना पड़ेगा, तुम्हें नीचे बैठना है, मुझे ऊपर बैठना है, तुम सुनना मैं कहूँगा-अच्छा ! गुरु के कार्य क्या-क्या रहें-बस गुरु क्या करेगा शांति से बैठेगा आज्ञा देगा शिष्य सेवा करेगा गुरु सेवा करवायेगा-बोला क्षमा करो मैं गुरु बनना चाहता हूँ, ये सब झंझट के काम कौन करेगा मुझे तो गुरु बना दो वे बोले-बेटा शिष्य बने बिना गुरु नहीं बना जा सकता नहीं तो फिर संसार में कोई शिष्य रहता ही नहीं, शिष्य तो बनता ही है। यदि आज जैसा शिष्य हो तो-कैसे बात बने? कैसा आलसी शिष्य-

एक महात्मा और शिष्य थे, महात्मा ने सोचा शिष्य से कुछ काम करा लिया जाये बहुत आलसी होता जा रहा है महात्मा शिष्य से बोले खड़े होना-जी गुरु जी ! देख कर आना पानी बरस रहा है या बंद हो गया-वह बोला-गुरु जी पानी बंद हो गया वे बोले अरे लेटे-लेटे ही कहता है तूने कैसे बताया-बोला गुरु जी अभी-अभी बाहर से बिल्ली आयी थी, वह बिल्कुल सूखी थी पानी बरस रहा होता तो वह गीली होती। वे बोले-अच्छा उठो एक काम करो लाइट बंद कर दो-वह बोला गुरु जी आंखे बंद कर लो अंधेरा दिखाई देगा आप भी किस चक्कर में पड़ गये, गुरु ने सोचा चेला तो बड़ा आलसी है गुरु जी ने पुनः कहा चलो खड़े हो झोंपड़ी का दरवाजा बंद कर दो-बोला क्षमा करो मैंने दो काम कर दिये आप एक काम नहीं कर सकते।

तो बात ये है सभी गुरु बनना चाहते हैं।

यहाँ पर गुरुता का मूल्य बताते हैं गुरु कैसे बनता है

अप्रार्थनं नाम-जो किसी से कुछ भी नहीं मांगे क्यों कि जो मांगता है उसका हाथ नीचा रहता है और जो देता है उसका हाथ ऊपर रहता है। गुरु वही है जो ऊँचा हाथ रखे। मुनिमहाराज बिना मांगे ग्रहण करते है चौके में। किन्तु ग्रहण करना ही लघुता का प्रतीक है, ग्रहण न करना

देना ही देना गुरुता का प्रतीक है बादल देने वाला है सदैव ऊपर रहता है समुद्र लेने वाला है वह सदैव नीचा रहता है। समुद्र में पानी ज्यादा है बादलों में पानी कम है फिर भी समुद्र नीचे है। बादल में छोटी सी बदली पर देने की उत्सुकता है अत: देने वाला सदैव ऊपर रहता है। जो किसी से कुछ माँगता है वह तुच्छ है और जो कभी किसी से कुछ माँगता ही नहीं सदैव देता ही देता है वह वास्तव में बहुत बड़ा व्यक्ति है। तो याचक संसार में सबसे हल्का होता है याचक तो रुई से भी हल्का होता है, फिर किसी ने कहा-महाराज रुई को तो हवा उड़ाकर ले जाती है याचक को क्यों नहीं उड़ा कर ले जाती ? इसलिये नहीं ले जाती कि हवा भी जानती है कहीं यह (भिखारी) मुझसे कुछ माँग न ले, रुई तो कुछ माँगती नहीं है किन्तु यह भिखारी है उसे हवा उड़ाकर ले जाये तो वह डरती है ये तो भिखमंगा है कहीं भी हाथ फैला देता है, मुझसे माँगने लगा तो, इसलिये अपने साथ लेकर नहीं जाती तो महानुभाव-**अप्रार्थना** जो किसी से कुछ नहीं माँगता वह गुरु है, वही श्रेष्ठ है, वही उच्च पद पर आसीन है जो मांग लेता है वह नीचा होता चला जाता है वह जितना मांगता है उतना ही अहसानों से दबता चला जाता है और नहीं मांगता है तो स्वाभिमान का तेज उसके रोम-रोम से झलकता है। भगवान आदिनाथ के समय में दाता सब थे याचक कोई था ही नहीं, इसलिये वे दाता सभी दु:खी थे, हम अपनी सम्पत्ति का दान किसको करे ? अयोध्या में दु:ख यही था कि वहाँ पर कोई लेने वाला नहीं था, माँ मरुदेवी पिता नाभिराय इसलिये दु:खी थे कि एक ही बेटा, त्रिलोकीनाथ, माँ उसे अपने आंचल का दूध नहीं पिला सकती पिता अपने घर का एक बूंद पानी नहीं पिला सकते, वस्त्राभूषण नहीं पहना सकते। गर्भ जन्म के समय रत्नों की वर्षा हुयी रत्नों का ढेर लगा सब नगरवासी संतुष्ट हुए अब कोई लेने वाला ही नहीं रहा तो अयोध्या में एक ही दु:ख था आगे चलते हैं-

किं गहनं स्त्री चरितं, कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दारिद्रयमसंतोष, एव किं लाघवं याञ्चा॥१०॥

किं गहनं-संसार में सबसे जटिल चीज क्या है ? सबसे कठिन रास्ता कौन सा है, अभी पहले कहा था, कि संसार में सबसे ज्यादा भय किस बात का है ? संसार में बहुत बार चिंतन करने पर क्या निकल कर आया ? ऐसे ही यहाँ कह रहे हैं कि संसार में सबसे जटिल चीज क्या है? **स्त्रीचरितं**-स्त्री चरित्र।

एक स्त्री अपने पति से बोली-तुम बहुत डरपोक हो, कायर हो, तुममें कोई साहस नहीं, वह कहता है तुम कैसी बात करती हो, पुरुष तो वैसे ही पौरुष की, साहस की, पराक्रम की, वीरता की मूर्ति होता है, स्त्रियाँ ही कमजोर होती हैं, चूहा आ जाये तो डर जाती है, वह बोली ये सब बातें तो छोड़ो मुझे तो ऐसा लगता है कि तुमसे ज्यादा कमजोर कोई नहीं तुम बड़े कायर हो। वह

बोला-तुम अपनी बात को सिद्ध करो-बोली, देखो सुनो मैं निर्भीक हूँ डरपोक नहीं वीर हूँ पराक्रमी हूँ, जब मैं तुम्हारे घर पहली बार आयी तो अकेली आ गयी लेकिन तुम जब मेरे घर पहली बार गये तो सौ आदमी लेकर गये तो डरपोक तुम कहलाये कि मैं ? मैं तो 100 आदमी लेकर नहीं आयी, तुम्हें ही मुझसे डर लगा रहा था, एक स्त्री से इतना डर कि 100-100 व्यक्तियों की बारात लेकर व्यक्ति जाता है। तो स्त्री का चरित्र बहुत कठिन है, और स्त्री कदाचित् रोती है क्षण भर के लिये रोती है किन्तु पुरुष को जिंदगी भर रुलाती है, शादी के समय स्त्री रोती है बस उस समय ही थोड़ा रोती है किन्तु उस समय पुरुष नहीं रोता, हंसता है जब शादी होती है, विदाई के समय स्त्री रोती है पुरुष हंसता है, जो दूसरे के रोने पर हंसता है तो जिंदगी भर रोना पड़ता है यदि वह उस समय थोड़ा संकोच न करे थोड़ा अपनी पत्नी के स्वर में सुर मिलाकर रोले तो जिंदगी भर नहीं रोना पड़ेगा। किन्तु उस समय तो वह रोता नहीं है। फिर कमरे में बैठकर, सुबक-सुबक कर बिना आँसुओं के रोना पड़ता है। तो यहाँ बता रहे स्त्री का चरित्र वास्तव में बहुत कठिन है समझना बड़ा मुश्किल है। **कः चतुरो**-चतुर कौन है **यो न खण्डितस्तेन**-वही चतुर है जिसके चित्त को स्त्री खण्डित न कर सके। संसार में ज्ञानी पुरुष वही है जिसके चित्त को स्त्री किसी भी प्रकार से मोहित न कर सके। वही ज्ञानी है, वही विद्वान है, वही पंडित है। भले ही कभी स्वाध्याय-पूजापाठ न किया हो किन्तु जो कभी स्त्री के कटाक्ष से घायल नहीं हुआ, जिसका चित्त स्त्री के मायने में कभी दु:खी नहीं हुआ वास्तव में वही चतुर है और जिसका चित्त स्त्री के माध्यम से घायल हो जाता है, पानी-पानी हो जाता है भले ही कितना स्वाध्यायप्रेमी हो, खूब पूजा पाठ करने वाला हो खूब, व्रत उपवास करने वाला हो, खूब माला फेरने वाला हो पर जो स्त्री को देखकर पिघल जायें वह चतुर नहीं।

नीतिकार कहते है- मुझे क्षमा करना

''आचार्यों ने स्त्री के नेत्रों को अग्नि की उपमा दी है और पुरुष के चित्त को घृत की उपमा दी है, इसलिये स्त्री-पुरुष साथ रहेंगे तो जैसे अग्नि के पास घृत पिघल जाता है ऐसे ही स्त्री के नेत्रों में यदि आँसू आ जाये तो पुरुष कैसा भी पाषाण हृदय हो वह भी पिघल जाता है, ऐसा लगता है जैसे स्त्री का नेत्र सूर्य की तरह से है तुम चाहे कमलनयन कहो, मृगनयनी कहो, किन्तु नीतिकार, साहित्यकार कहते हैं कि स्त्री के नयन सूर्य हैं क्योंकि वे नेत्र जहाँ टिक जाये उस व्यक्ति का हृदय छलनी-छलनी हो जाये। स्त्री की मुस्कुराहट देखकर पानी-पानी हो जाओगे, जैसा वह कहेगी वही करने लग जाओगे। बात ये है कि स्त्री कितनी मजबूत है उसकी निगाह ऐसा दिव्य अस्त्र है कि पूरी की पूरी सेना परास्त हो जाती है भीष्मपितामह के बाण है कोई ऐसे वैसे नहीं सारी सेना मूर्च्छित। तो बात ये है कि स्त्री का चरित्र बहुत दुरुह है और उसके प्रहार के सामने संसार के सभी बाण फीके हैं। इस पुष्पबाण के सामने सभी बाण शक्तिहीन हैं। कामदेव का बाण

कौन सा है ? 'पुष्पबाण' पुष्पों का कोई बाण हो सकता है क्या ? पुष्प कितना कोमल है स्त्री भी कोमल हृदय होती है जो जितना कोमल होता है उसके बाण में उतना ज्यादा असर होता है। एक बार यदि लग गया तो बस फिर जीवन में कभी उठेगा नहीं, जो पागल लड़के युवापन में किसी लड़की पर मोहित हो जाये, और वह शादी से इनकार कर दे तो वे आत्महत्या कर लेते है। कभी कुछ कर लेते हैं। पुष्पबाण ऐसा लग गया कि उसके बिना अब वह जी नहीं सकता।

तो महानुभाव ! यह पुष्पशर संसार के सभी शरों से बड़ा असरदार है। यह सबका सरदार है इसलिये सबसे ज्यादा असरदार है यह पुष्पशर सभी को सरका देता है। तो यहाँ पहली पंक्ति में कह रहे कि सबसे कठिन चरित्र किसका होता है-स्त्री का

तारा चरियं, राहु चरियं, देवता चरियं, चंद सूरचरियं, तित्थं चरियं,
चक्कवट्टी चरियं, कम्मदेह बलभद्द हरिहर,
णायारं चरियं जाणंति किन्तु ण जाणंति 'तिरिया' चरियं॥

सभी चरित्र जाने जा सकते हैं पर स्त्री के चरित्र को नहीं जाना जा सकता। नीतिकार भी कहते हैं।

स्त्रियस्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

पुरुष के भाग्य को, इस चार अंगुल के माथे में क्या-क्या लिखा है क्षणभर में राजा हो जाये, क्षण भर में रंक हो जाये, क्षणभर में पागल हो जाये क्षणभर में विद्वान माना जाये, क्षणभर में रोगी, क्षणभर में निरोगी, क्षणभर में लोकप्रिय और क्षणभर में लोक निंद्य। व्यक्ति 4 अंगुल का माथा नहीं पढ़ पाता है हजारों शास्त्र पढ़ लेता है, तो इस 4 अंगुल के माथे को पढ़ पाना कठिन है।

एक राजकुमार ने महामंत्री से कहा आप बड़े कुशल है, प्रज्ञ हैं, विज्ञ है, सभी का मूल्य बता देते है हीरा इतने का, गाय बैल घोड़ा भैंस सभी का मूल्य बता देते हैं, मैं आपसे पूछना चाहता हूँ मेरा मूल्य क्या है ? महामंत्री ने कहा-महाराज बुरा न लगे तो मैं आपका भी मूल्य बता सकता हूँ, राजा ने कहा बताओ ? - वह बोला महाराज ! आप दिन भर में ज्यादा से ज्यादा मेहनत करके 100 रु. कमा सकते हो एक दिन की कीमत 100 रु. महिने भर की तीन हजार रु. जितने साल जीओगे उतना गुणा करके लगा तो इतना तुम्हारा मूल्य है ये चार अंगुल के माथे का नहीं कह सकता कि इसमें क्या-क्या भरा पड़ा है इसका मूल्य नहीं बता सकता। पुरुष के भाग्य को और स्त्री के चरित्र को नहीं बताया जा सकता।

एक विद्वान बनारस से 'शास्त्री' करके 12 वर्ष बाद लौटा, पूरे नगर में, आस-पास में धूम मच गयी कि बेटा बहुत विद्वान है उसके लिये लड़की भी खोजी तो वह भी बहुत विद्वान। शादी हुयी, पत्नी को भी गर्व कि मेरे पति का बड़ा मान-सम्मान है। प्रतिष्ठा है। बहुत बड़े विद्वान हैं,

पत्नी भी अपने आप को कम नहीं समझती थी जब शादी हुयी पहली रात उसने पूछा-एक बात बताओ ? तुमने क्या-क्या पढ़ा है पहले ऐसा होता था कि राजपुत्र-राजपुत्रियाँ आपस में परीक्षा लेते थे, बुद्धि की परीक्षा, उसके पराक्रम की परीक्षा लेते थे तब तय करते थे, तो उसने कहा-मैंने तुम्हें पति के रूप में स्वीकार तो कर लिया किन्तु पहले बताओ ? वह बोला-मैंने ज्योतिष्क पढ़ ली, व्याकरण पढ़ ली, मंत्र तंत्र, वास्तु, न्याय पढ़ लिया, सिद्धान्त पढ़ा, अध्यात्म पढ़ा, धर्ममार्ग पढ़ा, प्रथमानुयोग आदि सब चीज पढ़ता चला आ रहा हूँ अच्छा ये सब पढ़ लिया-ये बताओ कि तुमने स्त्री चरित्र पढ़ा कि नहीं-अब वह तो इधर-उधर देखने लगा, वह सोचने लगा स्मृतियाँ पढ़ ली, कुरान पढ़ लिये पर स्त्री चरित्र पढ़ने में नहीं आया, आदिनाथ चरित्र कहो, पार्श्वनाथ चरित्र कहो, स्त्री चरित्र कौन सा चरित्र है। वह बोली-बताओ न। पढ़ा कि नहीं, बोला नहीं पढ़ा-वह पुनः बोली-चलो उठो अपने स्थान पर जाओ पहले स्त्री चरित्र पढ़कर आओ तब मेरे पास आना, उसकी बड़ी बेज्जती हुयी, वह तो बौखला गया, मन मसोस कर रह गया, कहता अब देखता हूँ स्त्री चरित्र पढ़कर के ही आऊँगा फिर इसे बताऊँगा। प्रातःकाल हुआ माता-पिता से कहा-कि मेरी पढ़ाई अधूरी रह गयी है मैं तो शादी की वजह से आया था, पिता ने कहा तू तो कह रहा था पढ़ाई पूरी हो गयी बोला नहीं थोड़ी सी बाकी रह गयी, वह ब्राह्मण पुत्र चला जा रहा है कड़कती धूप, गांव की सड़के सब सूनसान पड़ी वहाँ से निकलकर जा रहा था, संयोग की बात एक पनिहारिन कुयें के पास अकेली थी पानी भर रही थी वह वहाँ से जा रहा था, लड़की से उसने कहा-मुझे पानी पिला दो वह बोली-पहले ये बताओ तुम कौन हो ? कहाँ से आ रहे कहाँ जा रहे हो ? उसने सोचा कौन इससे पीछा छुड़ाये ? बोला मैं विद्वान हूँ, पंडित हूँ पढ़ने जा रहा हूँ-बोली क्या पढ़ने जा रहे हो-वह बोला-त्रिया चरित्र पढ़ने जा रहा हूँ, बनारस। वह पनिहारिन बोली-यदि वहाँ पढ़ने को मिलता तो तूने जब 12 साल पढ़ाई की तब उसमें क्यों नहीं पढ़ा-वह वहाँ पढ़ने को नहीं मिलेगा-तो कहाँ मिलेगा-बोली मैं पढ़ाती हूँ-वह बोला तू कौन है। पण्डितानी है क्या ? बोली नहीं पण्डितानी तो नहीं पर त्रिया चरित्र में निपुण हूँ, वह बोला-ठीक है तू मुझे यहाँ पढ़ा दे पर तेरे पास कोई पुस्तक नहीं है कहाँ से कैसे पढ़ायेगी ? बोली-शांति से बैठे रहो, देखते रहो क्या किया उसने एक बाल्टी पानी खींचा और अपने ऊपर डाल लिया जब पूरी भींग गयी तब चिल्लाने लगी-बचाओ-बचाओ गाँव के लोग लाठी लेकर पहुँच गये और मारने को तैयार हुये, कहाँ से आ गया, आज इसको नहीं छोड़ेंगे, तो लड़की ने क्या किया-वह आँख बंद कर बेहोशी का बहाना कर लेट गयी लोगों ने पूछा क्या हुआ-लड़की ने आँख खोली। बोली भईया! इसको मारो मत यह सब देखकर उस बेचारे की तो हालत ही खराब हो रही थी कोई क्या कहेगा। विद्वान पण्डित और ऐसा काम, मैंने तो कुछ किया ही नहीं वे गाँव के लोग कहने लगे क्या हुआ बहिन-बोली भईया इसके तो पांव पूजो, मैं कुयें में गिर गयी थी, यदि ये नहीं होता तो मैं मर गयी होती ये तो आज

भगवान है। लोगों ने कहा-अरे ! ऐसे लोग दुनिया में है ही कितने, सबने खूब सम्मान किया, कहने लगे जिसने अपने प्राणों की बाजी लगाकर तुझे निकाल दिया देखो लड़की का पुण्य था, ये तो यहाँ से जा रहा था और लड़की को बचा लिया। जब सब लोग चले गये, तो वह बालक भी जाने लगा लड़की ने कहा-चलो अब घर चलना है, वह तो घर चलने को तैयार नहीं हो रहा था लड़की बोली ये त्रिया चरित्र है तुमने देखा, पढ़ लिया पर ये आधा है युवक पूछता है पूरा कैसे होगा ? लड़की बोली यदि पूरा पढ़ना है तो घर चलो पूरा पढ़ा दूँगी। वह बोला पढ़ लिया-हाँ समझ गया त्रिया चरित्र तो ऐसा है कि क्षणभर में पिटवा दे और क्षण भर में ही चरण पुजवा दे। इसलिये त्रिया के चरित्र को समझना बड़ा कठिन है जो इस चक्कर में पड़ गया उसका जाल में से निकलना मुश्किल है। मछली अपने जाल में से निकल सकती है, मकड़ी अपने जाल में से निकल सकती है किन्तु मुश्किल है कि व्यक्ति त्रिया के जाल से निकल जाये। चींटा की तरह से जैसे चींटा जब गुड़ खाता है तो उसे छोड़ता नहीं है भले ही मर जाये। यह अत्यंत दुरुह है चौबीस में से उन्नीस तीर्थंकर हुये जो विषय भोगों में फंसे किन्तु फिर भी उन्हें छोड़कर आ गये वास्तव में वे त्रिया चरित्र की परीक्षा पास करके आ गये, अन्यथा यह परीक्षा पास करना बहुत कठिन होता है इसलिये 5 तीर्थंकर तो घबरा गये बोले भईया ये आउट ऑफ कोर्स है, यह हमारे कोर्स का नहीं है। बाल ब्रह्मचारी ही रहे, अच्छा किया पहले उसको पढ़ो, फिर परीक्षा दो, इससे तो पहले ही कह दो आउट ऑफ कोर्स।

महानुभाव ! तो सबसे गहन यदि माना जाता है तो वह त्रिया चरित्र है। तो संसार में जो सबसे कठिन चीज है उसको हाथ न लगाओ। यदि बिच्छू काटने का कष्ट सहन न कर पाओ तो फिर सांप के बिल में हाथ न डालो। जो बिच्छु से डरता जाये सांप के बिल में हाथ डालता जाये तो यह विद्वान बुद्धिमान के लिये उचित नहीं है। इसलिये जो अभी बचे है, बालब्रह्मचारी हैं उनके लिये मैं यही सलाह दूँगा क्योंकि जो बचा है वह बचे की ही बात कहेगा, जो फंसा है, वह फंसने की बात करेगा, जिसकी नाक कटी है उसे सामने वाले की नाक अच्छी नहीं लगती इसलिये जिसकी शादी हो गयी वह यही कहेगा कि बेटा तू शादी कर। तो महानुभाव ! स्त्री चरित्र से बचकर निकल जाओ बाईपास हो जाओ। पाँच तीर्थंकर बाईपास हो गये अंदर आये ही नहीं। तो आप भी चाहें तो इससे बच सकते हैं। तो आगे तीसरी बात कह रहे हैं-

किं दारिद्रं-संसार में सबसे बड़ी गरीबी क्या है ? **असंतोष**-जो असंतोषी है चाहे कितनी सम्पत्ति है ये न देखो, किसके पास कितना बड़ा असंतोष है यह देखो। किसकी कितनी बड़ी चाह है। जिसकी जितनी बड़ी चाह उतनी बड़ी गरीबी। तो एक साधु ने घोषणा कर दी मेरे पास जितनी धन सम्पत्ति थी उसे बेचकर मैंने हीरा ले लिया है यह हीरा मैं अपने देश के सबसे गरीब व्यक्ति को दूँगा। यह सुन खूब सारे गरीबों की लाइन लग गयी, उसने हीरा किसी को नहीं दिया, वहाँ

से राजा निकल कर जा रहा था वह राजा दूसरे देश को जीतने के लिये उस पर चढ़ाई करने के लिये जा रहा था, वह हीरा उस माहत्मा ने राजा को दे दिया, राजा ने कहा-तुमने तो घोषणा की थी कि सबसे गरीब व्यक्ति को दूँगा वह बोला-वही तो कर रहा हूँ बोले-मतबल ! तू जानता नहीं मैं राजा हूँ, बोला जानता हूँ तभी तो दे रहा हूँ, बता-कहाँ जा रहा है-बोला-दूसरे देश पर चढ़ाई करने के लिये। पुनः पूछा-क्यों ? उसने तेरा क्या बिगाड़ा है ? तू भूखा मर रहा है क्या? तेरी इतनी बड़ी तृष्णा है, इतनी बड़ी चाह है कि दूसरे देश को लूटकर आना चाहता है। इसका आशय ये है कि तू सबसे बड़ा गरीब है, इन सबकी इतनी चाहना नहीं है कि दूसरों को लूटकर लायेंगे इसलिये ये इतने गरीब नहीं जितना कि तू है।

इसलिये यहाँ कह रहे हैं कि असंतोष ही सबसे बड़ी दरिद्रता है। और चौथा प्रश्न यहाँ कर रहे हैं-**किं लाघवं याञ्चा**-लघुता क्या है तो याचना करना ही सबसे बड़ी लघुता है। जो माँगता है वही लघु है। और जो याचना नहीं करता वह बड़ा है। देने वाला सदैव बड़ा होता है। गुरु को गुरु इसीलिये कहते हैं क्योंकि वह जीवन में देना ही जानते हैं लेना नहीं। माँ संसार में इसलिये सबसे बड़ी कहलाती है कि वह देना ही देना चाहती है लेना नहीं। तो संसार में दो ही सबसे बड़े होते हैं गुरु और माँ। इससे बड़ी संसार में कोई दूसरी चीज नहीं है राजा भी यदि लेने वाला हो जायेगा तो लघु हो जायेगा यदि देने वाला हो जाये तो राजा भी बड़ा हो जाता है।

महानुभाव !

कल हमने कठिन चीज को समझने का प्रयास किया, उस कठिन चीज को जिंदगी भर भी समझेंगे तो भी समझना बड़ा कठिन है। वह है स्त्री चरित्र। ऐवरेस्ट की चढ़ाई चढ़ना सरल है, लोहे के चने चबाना सरल है आग के दरिया में तैरना सरल है किन्तु स्त्री के चरित्र को जानना बड़ा कठिन है। इसके बारे में कह रहे थे, वह व्यक्ति वास्तव में महान है जिसका चित्त स्त्री के माध्यम से कभी खण्डित नहीं हुआ, वही अखण्ड है। जिसका अंग भंग है वह खण्डित नहीं है जिसका मन खण्डित है वह खण्डित है। खण्डित मन वाला व्यक्ति प्रभु परमात्मा की पूजा आराधना नहीं कर सकता है। तुम तो निषेध करते हो जिसका अंग भंग है वह नहीं कर सकता, किन्तु नीति कहती है-मन खण्डित है तब भगवान दिखाई ही नहीं देगें। यूँ तो खण्डित द्रव्य, बर्तन, वस्त्र आदि से भी न करो किन्तु मन खण्डित है तो कदापि न करो। यदि कोई जिनबिंब की पूजा कर रहे हैं जो सैकड़ों साल से पूज्य है अंगोपांग कहीं खण्डित है तो पूजा कर लो किन्तु जिसकी वीतरागता ही खण्डित है, मूर्ति सांगोपांग है रौद्रपरिणामी है, अस्त्रशस्त्र लिये खड़ी है तो पूजा न करो क्योंकि वीतरागता ही खण्डित है। ऐसे ही यहाँ कह रहे हैं वहीं व्यक्ति श्रेष्ठ है, महान है जिसके मन को कोई खण्डित नहीं कर पाया। आगे कहा-दरिद्रता क्या है ? घर में धन का न होना निर्धनता नहीं है दरिद्रता है जीवन में संतोष का न होना। संतोष है तो झोंपड़ी में भी सानंद है।

''कोई राज महल में रोवे, कोई पर्ण कुटी में सोवे।''
अलग अलग है जनम के अंगना, मरण का मरघट एक है॥

राज महल में भी कोई व्यक्ति रो सकता है और झोंपड़ी में भी कोई चैन से सो सकता है, झोंपड़ी वाले को भी वह आनंद आ सकता है जिसके लिये राजमहल का राजा भी तरस जाये। एक आदमी जंगल में पेड़ के नीचे रहता था। जो कि फक्कड़ था अपनी मस्ती में रहता था उसे कोई परवाह नहीं चिंता नहीं थी। एक राजा महात्मा के पास गया-बोला मैं बहुत दु:खी हूँ सुखी कैसे होऊँ-राजा को बहुत समझाया कि सुख का कारण है संतोष। संतोष रहेगा तो धन की आवश्यकता नहीं रहेगी और संतोष नहीं है तो बाहर का धन तुम्हें सुख नहीं दे सकता। राजा ने कहा ऐसा कैसे हो सकता है, कोई और उपाय बताओ, मंत्र तंत्र दे दो, महात्मा जी ने कहा-ठीक बताता हूँ। एक काम कर एक वस्त्र ले आ। बोला वस्त्र, हाँ एक सुखी व्यक्ति का वस्त्र ले आ उसका मैं मंत्र बना दूँगा, तू उसको पहन लेना, तू सुखी हो जायेगा जीवन में दु:ख नहीं रहेगा, वह राजा-महाराजाओं के पास गया, बोला मुझे आपका वस्त्र चाहिये-ठीक है दे देंगे, बोले क्यों? कहने लगा-मुझे लगता है आप सुखी हो इसलिये तुम्हारे वस्त्र चाहिये, इतना सुना ही कि वह रोने लगा मेरी माँ का देहान्त हो चुका, पिता भी चल बसे, अभी इतना घाटा लग गया, मैं कहाँ सुखी हूँ। वह वहाँ से लौटा पुन: सब जगह गया जहाँ-जहाँ उसे लगा की यहाँ सुख है वहाँ वहाँ गया, सभी जगह घूमकर के आ गया, उसे कोई नहीं मिला। एक जंगल में देखा एक महात्मा भक्ति में लीन थे। चेहरे से वीतरागता झलक रही है। जिसे देख जंगल के पशु-पक्षी भी आनंदित है सभी वृक्षों पर पुष्प और फल आ गये, सूखे तालाबों में भी पानी आ गया, जन्मजात बैरी जीवों ने भी बैर छोड़ दिया, उसके पास से इतनी वर्गणायें निकल रही हैं कि वह उसके पास गया और स्वयं को भूल गया, वहाँ जाकर उसकी मस्ती देखने लगा बाद में कहता है। आप मुझ पर अपनी कृपा दृष्टि करो मैं आपके पास आया हूँ जैसा मैंने आपके बारे में सुना था वैसा ही पाया आप तो बहुत सुखी हो मैं भी सुखी होना चाहता हूँ। आपके बिना मैं सुखी हो नहीं सकता, आप मुझे अपना वस्त्र दे दो, वे बोले-तेरे पास आँखे नहीं है क्या ? तुझे मेरे तन पर वस्त्र कहाँ दिखता है ? महानुभाव ! जो व्यक्ति सुखी है उसे तो वस्त्र की आवश्यकता ही नहीं, तो सुखी व्यक्ति के लिये आवश्यकता है संतोष की। जिसके चित्त में संतोष है उसे कोई दु:खी नहीं कर सकता। आचार्यों की भाषा में कहें-तो श्री अजितसेन बहुत बड़े आचार्य हुये वे तमिल के थे उनका मूल नाम था औड़यदेव। यह बचपन का नाम था। जब दीक्षा ली तो उनका नाम अजितसेन पड़ा, वह इतने बड़े तार्किक और विद्वान थे राजा की सभा में जाकर वाद-विवाद करते तो लोग उनका लोहा मानते थे, कोई उनके सामने नहीं पड़ता था, उनकी बात का जवाब देना बड़ा मुश्किल होता था, इसलिये उस समय के विद्वानों ने, श्रेष्ठियों ने मिलकर उन्हें 'वादीभसिंह' उपाधि दी। वादी रूपी इव (हाथी) के सामने जो सिंह की तरह से

थे उन्हें कहते थे ''वादीभसिंह''। उन वादिभसिंह आचार्य अजितसेन ने क्षत्रचूड़ामणि ग्रंथ में लिखा है-

''तत्वज्ञान विहीनानां दु:ख मेव ही शाश्वतम्''

जो व्यक्ति तत्त्वज्ञान से रहित है चाहे राजा हो, महाराजा हो, इन्द्र हो, नरेन्द्र हो, अहमिन्द्र हो कोई भी हो तत्वज्ञान से रहित है उसके जीवन में शाश्वत दु:ख ही दु:ख है उसे कोई सुखी नहीं कर सकता।

''तत्त्वज्ञान हि जीवानां लोकद्वय सुखावहम्''

और जिसके जीवन में तत्वज्ञान है वह दोनों लोकों में सुखी रहता है उसे कोई दु:खी नहीं कर सकता है।

तत्त्वज्ञानी को तीनों लोक मिलकर दुखी नहीं कर सकते और तत्त्वज्ञान से रहित व्यक्ति को तीनों लोक मिलकर सुखी नहीं कर सकते। तत्त्वज्ञान सुख का कारण है बाह्य धन वैभव सुख का कारण नहीं है। तो महानुभाव ! जिसके जीवन में संतोष आता है उसके जीवन में तत्त्वज्ञान आता है, बस जो कुछ मेरे भाग्य में है वह सब मुझे मिल गया, यदि नहीं है तो कुछ नहीं मिला जो मेरा पुण्य है उसे ही भोगूँगा, नहीं है तो नहीं, अत: वस्तु के पीछे मत दौड़ो, दौड़ो पुण्य के पीछे। पुण्य एक ऐसी चुम्बक है जिसके पीछे दुनिया भागती है, और पुण्य की चुम्बक नहीं है तो वस्तु पकड़ भी लोगे, किन्तु जिसकी पुण्य की चुम्बक होगी वह वस्तु खींच लेगा, जैसे धनपाल के आठवें बेटे धन्यकुमार ने वसुपाल का जो वैभव था प्राप्त किया। महानुभाव ! तो वस्तु को मत पकड़ो, जो वस्तु को पकड़ता है वह चोर होता है और जो वस्तु को खींचने वाली चुम्बक (पुण्य) को पकड़ता है वह धर्मात्मा, पुण्यात्मा होता है। वस्तु के प्रति स्वामित्व का भाव चोरी का भाव है। तुमने कोई भी चीज देखी और सोचने लगे कि ये चीज मुझे मिल जाये तो यह भाव चोरी का है। ''वस्तु को अपना बनाने का भाव चोरी कहलाती है और वस्तु के मालिक को अपना बनाने का भाव वात्सल्य कहलाता है। महानुभाव ! तत्वज्ञान जब होता है तब संतोष आता है। संतोष है तो सब कुछ है। इसलिये कहा-असंतोष तृष्णा की अग्नि ही दरिद्रता है। निर्धनता को दरिद्रता नहीं कहा और आगे कहा हैं-

एव किं लाघवं याञ्चा-लघुता क्या है ? तुच्छता क्या है, चाहे करोड़पति सेठ है अपने लड़के की शादी करने के लिये लड़की वाले उसके यहाँ आये, और सेठ ने अपना मुँह खोल दिया, माँग लिया तो वह गरीब है, भिखारी है, अपने लड़के को बेच रहा है। माँगना क्यों ? पुण्य कमाओ छप्पर फाड़कर आयेगा, और पुण्य नहीं है तो घर में रखा भी नष्ट हो जायेगा भोग न पाओगे। तो पुण्यात्मा नियम से सद्वस्तुओं का भोक्ता होता है और सद्वस्तुओं का संग्रहकर्ता भोक्ता नहीं होता। लक्ष्मीपति बनो लक्ष्मीपति ही भोक्ता होते हैं लक्ष्मी पुत्र भोक्ता नहीं होते। लक्ष्मी जनक भी

भोक्ता नहीं होते। लक्ष्मीपति वह है जो उसके साथ रमण करता है लक्ष्मी पुत्र जो बन गये हैं वह अपनी माँ के साथ रमण कैसे करेगा, अर्थात् जिसने लक्ष्मी पिता से प्राप्त की है उसे भोग न पायेगा, माँ के समान सेवा करता रहेगा, उसका उपयोग न कर पायेगा, लक्ष्मी घर पर ही रहेगी। जो भोक्ता है वही उसका पति है। जो लक्ष्मी को उत्पन्न करने वाला है 'जनक' तो लक्ष्मी तो है वह उसे कैसे भोगेगा। वह यदि रमण कर रहा है, भोग रहा है तो वास्तव में लक्ष्मी पति है। लक्ष्मी जिसके लिये पुत्री की तरह से है वह दूसरों को दे देगा स्वयं न भोग पायेगा। लक्ष्मी का पिता बन गया तो वह नहीं उसका दामाद भोगेगा और लक्ष्मी का पुत्र बन गया तो भी वह नहीं भोगेगा उसका बाप भोगेगा। यदि खुद भोगना चाहते हो तो जीवन में लक्ष्मीपति बनो। जीवन में लक्ष्मीपति वही होता है जो उसका सदुपयोग अपने मन के अनुसार कर सकता है। वह कह सकता है मैंने कमाई है मैं गंवा भी सकता हूँ कोई रोकने वाला नहीं। यदि वह सिर्फ कमा-कमा कर रख रहा है खर्च नहीं कर रहा तो समझ लेना वह लक्ष्मीपति नहीं है। लक्ष्मी पुत्र या लक्ष्मी पिता हो सकता है। तो महानुभाव ! आपने समझा कि जीवन में असंतोष ही सबसे बड़ा दारिद्र है और याचना ही सबसे बड़ी दरिद्रता है। तुमने किसी से कुछ भी मांग लिया तो तुम लघु हो गये। जिसने जीवन में कुछ नहीं माँगा तो वह शहनशाह है, कुछ माँग लिया तो दब के रहता है।

महानुभाव ! एक नगर सेठ थे, उनके पुत्र का विवाह था निमंत्रण दिया प्राय:कर के नगर के सभी लोग आये सेठ ने सबका सम्मान किया, पर एक व्यक्ति नहीं आया, वह नगर में सबसे गरीब था, इतना गरीब की चने ले जाकर बेचता और उसी से अपना घर चलाता। तो जब वह नहीं आया, वह जैन व्यक्ति था, सेठ उसके घर पहुँच गया, बोला क्या बात है ? तुम नहीं आये? बोला सेठ जी आप मेरे घर तक चल कर आये, आप इतने बड़े आदमी मैं इतना छोटा। सेठ जी बोले-तू छोटा नहीं बहुत बड़ा आदमी है। मेरे यहाँ नहीं आया, क्या बात है ? बोला-सेठ जी देखो बात ये है रोटी-बेटी का व्यवहार तो बराबर वालों में होता है हमारी आपकी मित्रता कहाँ आपने पूरे नगर का निमंत्रण कर दिया, हमारे घर में कोई कार्यक्रम होता है तो हम तो पूरे रिश्तेदारों को नहीं बुला पाते हैं आपको कहाँ बुला पायेंगे अत: हमें भी आपके यहाँ नहीं जाना चाहिये। सेठ वहीं बैठा उसकी चटाई पर वहीं मुँह में दो-चार चने डाले, बाल्टी में पानी रखा था, एक अंगुली डुबाई और मुँह में दे दी और कहा-देख तू यदि ये कहे कि हम तुम्हें क्या खिला सकते हैं व्यवहार नहीं तब तो तुझे जाना पड़ेगा, और कोई तेरी अन्य सौगंध हो कि मैं बाहर का नहीं खाता तो ये अलग बात है। वह बोला-सेठ जी और कोई बात नहीं है बस यही है कि मैं आपको क्या खिला सकता हूँ सेठ जी बोले खाने की बात तो ये है कि मैंने तेरा खाया भी है पीया भी है अरे ! सेठ जी हमने आपको क्या खिलाया, हम आपको क्या खिला सकते हैं देख ! तेरे दो चने मैंने मुँह में डाले हैं। और तेरी बाल्टी में से अभी पानी मुँह में डाला है। मैंने तेरा खाया-पिया तू अब मेरे यहाँ न खाये पीये तो मेरा कर्ज हो गया। वह बोला-धन्य है सेठ जी आपकी लघुता और वात्सल्य वह उसके पीछे-पीछे चल दिया।

तो महानुभाव ! सबसे बड़ी लघुता क्या है? मांगना। याचना ही सबसे बड़ी तुच्छता है। कोई प्रश्न करता है-स्वहित के लिये मांग सकता है क्या ? परहित के लिये भी मांग सकते हैं क्या ?

स्वहित के लिये भी मांग सकता है किन्तु वहाँ जहाँ उसका अधिकार है।

दूसरी बात आप पूछ रहे हैं-कि स्वहित के लिये न मांगे परहित के लिये मांग ले ?

यह नीति कहती है कि पर के लिये माँग लो किन्तु धर्म कहता है न स्व के लिये माँगो न पर के लिये।

नीति कहती है-

''मर जाऊँ माँगू नहीं अपने जिय के काज। (तन के काज)
परमारथ के कारणे मोहे न आवे लाज॥''

किन्तु धर्म कहता है-

माँगन मरण समान है मत मांगो कोई भीख॥
माँगना से मरना भला यह सद्गुरु की सीख॥

माँगना तो माँगना है चाहे अपने लिये माँगों या दूसरे के लिये। व्यक्ति यदि कभी दूसरों के लिये भी माँगता है तो उसे बड़ी सहनशीलता के साथ जाना पड़ता है। चंदा के लिये भी गये तो अपना हृदय मजबूत करके जाता है, मन पक्का करके जाता है उसे 100 बातें सुनाते है। तो कौन क्या-क्या नहीं सुनाते। वह आपसे सीधा नहीं कहेगा विपरीत कहेगा, यदि सुनने की सामर्थ्य होगी तभी तो माँग पाओंगे, नहीं होगी तो घर में बैठे रहोगे कहोगे जो करूँगा अपने बल से करूँगा, नहीं हो पायेगा तो किसी के पास लेने नहीं जायेगा। यदि जायेगा तो थोड़ी बहुत तो सुननी पड़ेगी।

''बिन मांगे दे दूध बराबर, मांगे मिले सो पानी,
कह कबीर वह खून बराबर, जामें खींचा तानी॥''

जो खींच कर-छीन कर लिया जाता है वह अमृत ही क्यों न हो खून बराबर है। महानुभाव !

मांगना उचित नहीं है त्यागना उचित है, हमारा जैन धर्म कभी मांगने की शिक्षा नहीं देता, सदैव त्यागने की शिक्षा देता है और ये परम्परा हमारे शास्त्र की परम्परा नहीं है कि चंदा लेकर मंदिर बनाओ। आगम की परम्परा तो यह है जिसे धर्म में लगाना है वह स्वयं आये और स्वयं आकर के किसी भी रूप में दे सकता है। महानुभाव ! पुण्यात्मा व्यक्ति का धन धर्म में लगता है। पापी व्यक्ति का धन तो धर्म में लग ही नहीं सकता। अतः आप सभी पुण्य करें। मैं अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

जीवंत जीवन

किं जीवितमनवद्यं किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः॥११॥

यहाँ पर कह रहे है:-

किं जीवितमनवद्यं-जीवंत जीवन कौन सा है-जो पाप से, अनवद्य से रहित है।

किं जाड्यं-मूर्खता क्या है ? **पाटवे अनभ्यासः**-अभ्यास न करना।

को जागर्ति-जागा हुआ व्यक्ति कौन है ? **विवेकी**-विवेकी पुरुष ही जाग्रत है।

का निद्रा-संसार में नींद क्या है? **मूढता ! जन्तोः**-प्राणियों की मूर्खता ही सबसे बड़ी नींद है।

यहाँ पर आचार्य महोदय चार प्रश्नों के चार उत्तर एक साथ दे रहे हैं। इस काव्य में चार ही पद हैं जो चतुष्पद माना कि अनंत चतुष्टय का कारण है और यह चार गति से मुक्ति दिलाने वाला बत्तीस अक्षर का अनुष्टुप् छंद का यह पद इसमें बड़ी नूतन बात दे रहे हैं और मैं समझता हूँ यह 11वें नं. का श्लोक ग्यारहवीं दिशा में गमन करने का प्रतीक है। अभी तक आपने दशों दिशाओं में गमन किया है-पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशा इन 10 में गमन किया, 11वीं दिशा में गमन नहीं किया इस 11वीं गाथा को यदि आपने आत्म सात् कर लिया तो तुम 11वीं दिशा में गमन करने के लिये मजबूर हो जाओगे, तुम खुद को रोकना भी चाहोगे तो भी रोक न सकोगे। ये ऐसी चार बातें हैं जिन पर विचार करना बहुत जरूरी है, ये चार बातें जीवन को चारु बनाने वाली हैं चारु अर्थात् सुन्दर, श्रेष्ठ अच्छी, ये चार बातें है इस चार दिन की जिंदगी में और हमें चाहिये भी क्या?

चार दिन की जिंदगी में चार बातें चाहिये
याजहक महरे अजीजी खौकशार शोके-ए-इल्म

ये बातें पर्याप्त हैं पाँचवे की तो आवश्यकता ही नहीं, जैसे चार प्रकार का शुक्ल ध्यान पर्याप्त है। वैसे चाहो तो सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप ये चार पर्याप्त हैं, पाँचवें की आवश्यकता है ही नहीं। चार कषायों को शमन करने के लिये चार बातें पर्याप्त हैं क्षमा मार्दव आर्जव और संतोष। ये चार बातें जिसके जीवन में हैं तो पंचम सत्य तथ्य की प्राप्ति सत्यार्थ की प्राप्ति नियम से हो ही जाती है। तो ये चार बातें हैं और जिंदगी के चार दिन-

उम्र तगाजे में मांग कर लाये थे जिंदगी के चार क्षण।
दो आरजू में निकल गये और दो इंतजार में॥

जो दिन आरजू में निकले हैं उसमें भी जो दो क्षण हैं उसमें एक क्षण जिंदगी का है और एक मौत का। अब दो क्षण और बचे। आराजू वाले दो क्षण तो इधर आ गये जब आरजू कर रहे तब तो चीज मिली ही नहीं, और इंतजार कर रहे हैं तो एक मौत का क्षण दूसरा जन्म का क्षण बीच में यदि कहीं गुंजाइश है तो वह गुंजाइश है संसार के क्रिया काण्ड की, धर्म के लिये व्यक्ति तभी धर्म करता है जब उसके जीवन में प्रतिकूलता आती है अनुकूलता में व्यक्ति धर्म कम कर पाता है, इसलिये कबीर को लिखना पड़ा-

''दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय॥

जो व्यक्ति सुख में सुमिरन करता है उसे दुःख नहीं होता, इसीलिये दुःख प्रकृति को तुम्हें देना पड़ता है जिससे तुम भगवान का सुमिरन कर सको, वह दुःख भी अच्छा है जो दुःख हमें भगवान से मिलाता है।

सुख के माथे बल पड़े नाम प्रभु का जाय,
बलिहारी उस दुःख की पल पल नाम रटाय॥

जब जीवन में सुख आता है तो थोड़ी भी प्रतिकूलता सहन नहीं होती, माथे पर बल पड़ते हैं तूने मुझसे ऐसा कह दिया, तू क्या समझता है अपने आपको तू मुझे जानता नहीं है क्योंकि पुण्य का उदय चल रहा है तो वह आपे के बाहर हो जाता है किन्तु जब दुःख आता है तब एक-एक क्षण में भगवान हे भगवान ! रक्षा करो। व्यक्ति किसी की बात खराब हो रही हो तो बस भगवान से एक ही धुन कि हे भगवान ! मेरी बात न खराब हो जाये। कहीं व्यक्ति कोई तड़फ रहा हो तो कहता है, भगवान मेरा तो बस तू ही है, मुझे इस कष्ट से उबार दे। मैं तो सिर्फ तेरा ही नाम जपूँगा, जैसे जीव गर्भ में भगवान से सौगंध लेकर आता है कि जन्म लेकर मैं सिर्फ तेरा ही नाम लूँगा, तेरे अलावा किसी और का नाम तो लूँगा ही नहीं। किन्तु यहाँ पर आकर के सब भूल जाता है, तो भगवान का नाम दुःख में रटा जाता है। सुख में भगवान का नाम रटने वाले विरले ही व्यक्ति होते हैं, इसीलिये कवि को दूसरा दोहा लिखना पड़ा-

सुख में सुमिरन किया नहीं, दुःख में करता याद।
कह कबीर उस भक्त की, कौन सुने फरियाद॥

जब तेरे पास सुख था तब तो तूने दाम, पूजा-पाठ, भक्ति, उपकार उसके बारे में सोचा नहीं अब जब दुःख आ गया तो द्वार पर आकर गिड़गिड़ाता है माथा टेकता है, हाथ जोड़ता, मिन्नतें माँगता है, तू ही मेरा सब है सब तुझे अर्पण है। जब कुछ नहीं बचा है तब कह रहा है सब कुछ अर्पण है। जब शरीर में ताकत थी तब न भगवान की पूजा की, और न यात्रा की जब कमजोर

हो गया तब कह रहा है भगवान मेरा शरीर तेरे लिये अर्पण है, जब रोगी हो गया, डॉक्टर ने भी कह दिया अब इसे घर ले जाओ, तब अर्पण कर रहा है, जब सही था, स्वस्थ था तब तो भोगों के लिये भेंट चढ़ा दिया जब अस्वस्थ हो गया तब चरणों में अर्पित है। कहने का आशय है जब तक व्यक्ति की अंगुली नहीं दबती तब तक वह नहीं चिल्लाता। तो यहाँ पर कह रहे-उसकी फरियाद कोई सुनता नहीं। हाँ, जो सुख में सुमिरन कर लेता है उस पर दु:ख कभी आता नहीं।

महानुभाव !

एक भक्त था भगवान राम की भक्ति करने वाला। उसे भगवान राम का स्वरूप वही भाया हुआ था जो उसने देखा था भगवान तीर कमान लिये खड़े हुये हैं। देखो वैदिक परम्परा में तुलसीदास ने राम को नमस्कार किया तो ऐसे नहीं तीर कमान हाथ में लो तब नमस्कार करुँगा मैंने तो आपका यही रूप स्वीकार किया है और आप भी भगवान महावीर स्वामी यदि बालपन रूप में तुम्हारे सामने आ जायें तो आप भी कहोगे ये नहीं वीतरागी मुद्राधारण करो तब नमस्कार करूँगा मेरा माथा कोई नारियल नहीं है चाहे जहाँ फोड़ दो, मैं तो वीतरागता का उपासक हूँ, ऐसे ही जो अपने प्रभु को आराध्य को जिस रूप में स्वीकार करता है उसे वही रूप दिखाई देता है सपने में भी और जाग्रत अवस्था में भी और कल्पनाओं में भी वही रूप दिखाई देता है। जब भी कष्ट आता है तो वही रूप दिखाई देता है जो उसके चित्त में अंकित हो गया। तो वह 'रामदास' खूब भक्ति करता था, अकेला रहता जंगलों में, पहाड़ियों के बीच में, गुफाओं में जहाँ कोई व्यक्ति न पहुँचे। संयोग की बात किसी देवता ने उसकी पुकार, भक्ति देखी तो वह भगवान राम का वही रूप सरागी मुद्रा का बनाकर आया। उसे देख रामदास भक्ति से गदगद हो गया, उसे ऐसा लगा मुझे सब कुछ मिल गया, इसके सामने मेरे लिये तीन लोक की सम्पत्ति सड़े तिनके के बराबर है। उसे इतनी खुशी हुयी कि वह अपने आप में इस बात को पचा नहीं पाया कि साक्षात भगवान् राम ने उसे दर्शन दिये। रामदास जब जंगल छोड़कर के बाहर आ गया, नगर के समीप बैठा, लोग उसके पास आने लगे वह सबसे कहता देखो ऐसी भक्ति करनी चाहिये, भगवान प्रगट होते हैं, अब उसकी बातों में अलग ही प्रभाव था। लोग कहने लगे इस काल में तो भगवान आते ही नहीं है अब तो रामदास की बातों में और दमदारी आ गयी। उसने एक दिन राजा की सभा में कह दिया कि भक्ति करने से भगवान नहीं आये तो भक्ति सच्ची नहीं है। राजा ने कहा तेरी भक्ति सच्ची है कि नहीं वह बोला-गर सच्ची नहीं होती तो कहता क्यों ? राजा ने कहा मुझे विश्वास नहीं। यदि सच्ची है तो बुला अपने भगवान को रामदास ने हाथ जोड़े-बुलाया-नहीं आये, बोला यहाँ नहीं आयेंगे वहीं चलो जंगल में मेरे स्थान पर वहीं आयेंगे। राजा ने हुकुम दे दिया नगर के सभी लोग जंगल पहुँचे, रामदास की भक्ति करने पर भगवान नहीं आये तो रामदास के मिथ्याभाषण करने पर वह दण्ड का अधिकारी होगा, अब तो रामदास जंगल में गया, सब भीड़ उसके

पीछे-पीछे, रामदास ने खूब भक्ति की, एक पैर से खड़े होकर भक्ति कर रहा है। जो रूप उसे दिखाई देता वह तो आ ही नहीं रहा बहुत देर हो गयी, भीड़ खिसकने लगी। धीमे-धीमे पूरी सभा खाली हो गयी, रामदास अकेला रह गया, उसकी आँख से आँसू बहने लगे, भगवान क्यों नहीं दिखाई दे रहे, मुझसे क्या गलती हो गयी क्या नाराजगी हो गयी दिख ही नहीं रहे, और जब सब चले गये, अकेला रामदास था तो तब उसी रूप में राम जी धनुषबाण लेकर हाथ में आ गये। रामदास ने कहा-मैं तो तुम्हारी इतनी भक्ति कर रहा था, तुमने तो मेरी नाक कटवा दी तुम आये ही नहीं, भगवान राम जो उसके इष्ट आराध्य थे पहले तो कुछ नहीं बोले, सुनते रहे-मुस्कराते रहे बाद में जब राम दास की बात पूरी हो गयी तो राम जी की बात प्रारंभ हो गयी-कहा-तूने दो घंटे खड़े होकर भक्ति कर ली मेरी और तुरंत उलाहना भी दे दिया, तू ये नहीं जानता मैं तेरे साथ चौबीसों घंटे खड़ा रहता हूँ मैंने तो तुझे कभी उलाहना दिया नहीं मैं चौबीसों घंटों तेरे साथ, तेरी सेवा में रहता हूँ और तूने 2 घंटे मेरी भक्ति कर ली तो कह दिया। तुझे जो प्राप्त हो गया है उसे तूने पचाया क्यों नहीं उसे तू अपने पास रख, मैं दूसरों के लिये नहीं तेरे लिये हूँ। दूसरे मुझे जिस रूप में मानते हैं उन्हें मैं उसी रूप में दिखाई दूँगा। तो महानुभाव ! कहने का आशय यह है व्यक्ति जब सुख से होता है अनुकूलता होती है तब भगवान का नाम भूल जाता है और कष्ट आता है तो आँखों से आँसू बहाता है। जब राजा की सभा में बैठा था तब आँखों में आँसू नहीं थे जब बड़ी-बड़ी बातें कह रहा था तब उसने भक्ति करना तो छोड़ ही दिया था। तो व्यक्ति जब दु:ख संकट आये तब न पुकारे। सुख में पुकारे तो दु:ख में पुकारने की आवश्यकता न पड़ेगी। दु:ख आयेगा ही नहीं। यदि श्रद्धा है तो हमारी आत्मा ही हमारी परमात्मा है, श्रद्धा है तो हमारी भक्ति भावना ही हमारे पाप को पुण्य में बदल देगी, श्रद्धा सच्ची है तो हमारा कल्याण है। दूसरों से धर्म के प्रमाण पत्र प्राप्त होते हैं किन्तु वे प्रमाण पत्र सच्चे हों यह जरूरी नहीं है। महानुभाव! हम देख रहे थे, कि अनुकूलता में भी धर्म करना सीखो। प्रतिकूलता में आपने धर्म खूब किया किन्तु अनुकूलता में यदि चार क्षण भी धर्म कर ले तो फिर प्रतिकूलता तुम्हारे जीवन में आयेगी ही नहीं, इसलिये जब तक शरीर स्वस्थ है इस शरीर के माध्यम से पुण्य कमाओ। जब तक वचन बोलने की शक्ति तुम्हारे अंदर बंद नहीं हुयी तब तक बोल लो दो मीठे बोल, भगवान के सामने भगवान के गुणगान कर लो, बोल सकते हो तो बोलो इनसे भी पुण्य करो। जब तक तुम्हारा मन हित-अहित को जानने में समर्थ है, जब तक तुम्हारा मन पुण्य और पाप को जानने में समर्थ है, जब तक तुम्हारा मन गुण और दोष की समीक्षा करने में समर्थ है, जब तक तुम्हारा मन ज्ञान अज्ञान को जानता है, जब तक तुम्हारा मन मिथ्यात्व सम्यक् को जानता है, जब तक तुम्हारा मन संयम असंयम को जानता है, जब तक तुम्हारा मन राग और द्वेष को जानता है तब तक मन से सही-सही निर्णय ले लो। जब तक तुम्हारा मन मजिस्ट्रेट बना है तो उस मजिस्ट्रेट से सही-सही निर्णय

करवाना। उस मन को दबाव देकर के, रिश्वत देकर के अपने हक फैसला नहीं ले लेना, इसका सदुपयोग ही करना। इसी प्रकार से परिजन का, पुरजन का, द्रव्य का, सामग्री का, धन का, दौलत का जो कुछ भी तुम्हारे पास है उसका अनुकूलता में सदुपयोग करना सीखो।

तो महानुभाव यहाँ जो चार बातें कहीं उन पर विचार करना बहुत आवश्यक है। बिना विचार किये वह आचरण में नहीं आती इसलिये भले आदमी भली बातों का विचार करते हैं और भला-भला ही आचरण करते हैं। जो आदमी भला नहीं है न तो भला आचरण कर सकता और न ही भले विचार उसके मन में आ सकते हैं तो ये चार बातें सुआचरण व सुविचार के लिये बहुत आवश्यक हैं।

पहली बात कह रहे हैं संसार में ''जीवंत व्यक्ति कौन है ?''-

आचार्य भगवान् श्री कुन्द-कुन्द स्वामी से पूछा उन्होंने कहा जो सम्यक्दृष्टि है वह जीवंत है, आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज और आचार्य इन्द्रनंदी स्वामी, वामदेव आचार्य या आचार्य भावसेन त्रिवैद्य इत्यादि आचार्यों से पूछा तो कहा-संयम युक्त व्यक्ति ही जीवित है। नीतिकार कहते हैं-ज्ञानवान् मनुष्य ही जीवंत है अन्यथा पशुतुल्य है। किन्तु यहाँ पर आचार्य कह रहे हैं-जो पाप से रहित है वही वास्तव में जीवंत है, जो पाप कर रहा है वह तो मुर्दे से भी ज्यादा गया बीता है, क्योंकि मुर्दा पाप नहीं करता। यह शरीर पाप नहीं करता जब चेतना नहीं है। चेतना है और शरीर पाप कर रहा है तो अनर्थकारी है इसलिये आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने भी कहा-**''यदि पाप निरोधोन्य सम्पदा किं प्रयोजनं''** यदि आपने पापों का निरोध कर दिया है तो भौतिक सम्पत्ति का क्या प्रयोजन ? यदि आपने पापों का निरोध नहीं किया तो भौतिक सम्पत्ति का क्या प्रयोजन ? पापों का निरोध कर दिया तो सब कुछ तुम्हारे पास है। पापों को नहीं रोका तो सब कुछ होते हुये भी तुम्हारे पास कुछ नहीं है। तो महानुभाव ! यहाँ पर सबसे अच्छी बात यही कही है कि पापों से रहित जीवन ही वास्तव में जीवंत जीवन है पापों से युक्त जीवन वह जीवंत जीवन नहीं है मुर्दा से भी बदतर है। तो हम अपने जीवन में देखें अपने ऊपर ही करुणा कर लें, कि जीवंतता कैसे आये-जिसके चित्त में पाप न टिक पाये, पाप ऐसे निकल जाये जैसे फूटे घड़े में से पानी निकल जाता है। पाप ऐसे निकल जायें जैसे सूर्य का उदय होते ही अंधकार निकल जाता है, तो महानुभाव! चित्त में पाप ठहर न पाये। हो सकता है चित्त में अनादिकाल से पाप के संस्कार पड़े हैं इसलिये कभी कदाचित् पाप का भाव आ सकता है कोई बड़ी बात नहीं किन्तु सबसे बड़ी बात ये है कि आप का विचार ठहरे नहीं। आना बुरा नहीं ठहरना बुरा है, जो पाप का विचार ठहर गया, जड़ जमा गया तो फिर उसे उखाड़ना बड़ा मुश्किल है। पाप का बीज तुम्हारी चेतना में आ जाये कोई बात नहीं उठा कर फेंक दो, जला दो किन्तु पाप का बीज चेतना में यदि कहीं अंकुरित हो गया उसने जड़ें कहीं फैला दी तो उस पेड़ को उखाड़ना बहुत मुश्किल हो जायेगा।

तो महानुभाव ! ये व्यक्ति हमेशा सोचता रहे कि पाप की जड़ें न जमें। कई बार ऐसा भी होता है कि न चाहते हुये भी, तुम पुण्य कर रहे हो, धर्म कर रहे हो, पूजा भक्ति कर रहे हो, अचानक विचारों की तरंग आयी और शुभविचार के साथ-साथ अशुभ विचार की तरंग आ गयी। (यथार्थ बात कह रहा हूँ, सभी के मन की) स्वाध्याय करते-करते अचानक पाप का विचार मन में आ गया पुण्य में बैठे हो बहुत अच्छे भाव लग रहे हैं अचानक पाप की तरंग एक आ गयी तुमने उस समय कोई पुरुषार्थ नहीं किया कि किसी को देखा हो या कुछ बुरा काम किया हो बस अचानक ही तरंग उठी और उठते ही नष्ट हो गयी, तो तरंग जैसी आये वैसी चली जाये। लहर जैसी आये वैसी डूब जाये तो कोई बात नहीं किन्तु उस पाप के विचार, वचन या क्रिया का चित्त में स्थिर हो जाना खतरनाक है। यदि आपने अपने जीवन में उसे स्थिरता दे दी उस पाप की तरंग को तो क्या वह पाप नहीं टिकेगा ? यदि पुण्य के विचार की लहर को स्थिरता नहीं दी तो पाप की चपेट में जितने भी आयेंगे वे सब डूब जायेंगे। तो पाप की लहर चित्त में उठती है उसे तुम रोक नहीं सकते, जब तक चित्त में रागद्वेष का जल भरा हुआ है तो पाप की लहर उठेगी ही। जब तक मोहनीय कर्म लगा हुआ है तब तक वह कालिमा है। किन्तु वह कालिमा कालीधूल उड़ती है तो उड़ने दो किन्तु उसे अपने चित्त से चिपकने मत दो। संसार में पाप वर्गणायें और पुण्य वर्गणायें अलग-अलग नहीं होती, एक ही वर्गणायें होती हैं। कार्माण वर्गणायें हमारे ही भावों से पाप व पुण्य रूप हो जाती हैं तो महानुभाव यहाँ कह रहे हैं कि अपनी चित्त की भूमि पर पापों के झाड़झंकर मत जमने दो। अपने चित्त की भूमि पर ऐसे पेड़ों को मत उगने दो जिनको उखाड़ना पड़े चाहे आपकी चित्त की भूमि में कुछ नहीं हो रहा कोई बात नहीं, खेत ऐसे ही पड़ा हुआ है चलेगा किन्तु हमारी चित्त की भूमि पर कोई बिरवा लगेगा तरु लगेगा तो सुफलदायी होना चाहिये कुफलदायी नहीं। एक माँ बनने वाली स्त्री कहती है कि हे भगवान ! यदि मेरी कोख से कोई बालक हो तो वह ऐसा हो-कि तो भगवान बने, कि तो भक्त बने, दानी बनें पराक्रमी बने, शूरवीर बने तब तो ठीक है। यदि ऐसा पुत्र मेरी कोख से पैदा न हो तो मेरी कोख बांझ ही रहे किंतु ऐसा पुत्र नहीं दे देना जो मेरे कुल में दाग लगा दे, ऐसा नहीं दे देना जो पूरे वंश को ले डूबे। सत्यानाश कर दे, ऐसा नहीं देना जो धर्म को नाश कर दे, ऐसा हो जो धर्म की प्रभावना करने वाला हो, प्रवर्तन करने वाला हो-

''जननी जने तो भक्त जन या दाता या शूर,
नही तो जननी बांझ रहे मत वृथा गवांवे नूर॥''

यदि जननी पुत्र को पैदा करती है तो दानी बनाये या दाता, यदि दाता नहीं बना पायी तो शूरवीर बनाए। धर्म के लिये न सही, पर धर्म की रक्षा के लिये हम पीछे नहीं हटेगें, भगवान के चरणों में अपना शरीर अर्पण कर देंगें। प्राण जाते हैं तो चले जायें यदि धर्म पर संकट आ जाये

तो हमें किसी की परवाह नहीं। और यदि जननी पुत्र जने तो वह भगवान बने, पंचपरमेष्ठी पद में से किसी भी पद को प्राप्त करे। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के शब्दों में पंचम काल का साधु आज के भगवान है। जो भाई लोग मूलाचार पढ़ते हैं लोग भी कहते हैं, शंका कर रहे थे कि पहले 3 दिन साधु की परीक्षा लो फिर सोचें कि धोक लगायें या नहीं। उनसे कहते हैं मूलाचार में पहले एक गाथा पढ़ लेते, पंचपरमेष्ठी की भक्ति की जो गाथा दी है कि एक बार परमेष्ठी को नमस्कार करने से कितने कर्मों की निर्जरा होती है, दूसरी एक कारिका पढ़ लेते-

भिक्कं वक्कं हेयं सोधियं जो चरदि णिच्च सो साहू।
एसो सुदिट्ठ साहू भणिया जिण सासणे भयवं॥

पंचम काल के साधुओं के लिये कह रहे हैं चौथे काल की कारिका नहीं है और चौथे काल के लिये नहीं है इस पंचमकाल में भी ''भिक्कं वक्कं हेयं'' जिसकी आहारचर्या, वचन व हृदय जो साधु इनकी शुद्धि करके रखता है अशुद्धि आये तो पुनः पुनः प्रमार्जन करे जैसे सब्जी वाला व्यक्ति अपनी सब्जी पर पानी डालता रहता है। आपने भी सब्जी वालों को देखा होगा। एक बार एक बच्चा सब्जी लेने गया। भिण्डी पर पानी डालता जा रहा बार-बार डाल रहा, वह बहुत देर खड़ा रहा, जब बहुत देर हो गयी तो बोला-भईया-अगर तेरी भिण्डी होश में आ गयी हो तो 1 किलो भिण्डी दे दो। तो ऐसे ही जैसे सब्जी पर पानी डालते रहते हो, जैसे सुनार अपनी सोने की वस्तुओं पर कपड़ा फेरता रहता है धूल न जम पाऐ ऐसे ही अपनी चर्या में साधु लोग जो धूल जमती है उसे साफ करते हैं, वह लम्बी सी झाड़ू है जिसका नाम है प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण की झाड़ू से साफ करते रहते हैं, हमारे अहिंसा महाव्रत में धूल तो नहीं जम रही, हमारे सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य अपरिग्रह महाव्रतों पर धूल तो नहीं जम रही, धूल उड़कर आयेगी ही क्योंकि हम इस संसार में बैठे हैं यहाँ तो धूल उड़ती ही है, उड़ेगी, बहुत बालू उड़ेगी किन्तु अपने हाथ में लम्बी सी सबल प्रतिक्रमण की झाड़ू रखो और धूल कितनी भी उड़े उड़ने दो, हम सफाई करते रहेंगे। हम अपना चूल्हा ढांक कर रखेंगे तो अपना घर सुरक्षित रहेगा, आंधी चलती है चलने दो, हम आँधी को नहीं रोक सकते। पंचम काल की आँधी चल रही है चलेगी हम इसे नहीं रोक सकते किन्तु अपने चूल्हे को उसी तवे से ढांक दो, ऊपर से गंजिया और रख दो, तो जो अग्नि होगी वह वहीं शांत हो जायेगी, यदि हमने ऐसा नहीं किया बाहर पाल लगाने लगे तो बाहर की आँधी नहीं रुकेगी। चूल्हें में से जब अग्नि उठेगी तो हमारे घर को सबसे पहले स्वाहा कर देगी, इसलिये आवश्यक है चूल्हे को ढांकने की। साधु लोग भी सुबह, मध्याह्न, संध्याकाल में प्रातःकाल रात्रिक प्रतिक्रमण मध्याह्नकाल में ईर्यापथ प्रतिक्रमण, संध्याकाल में दैवसिक प्रतिक्रमण और पुनः बीच बीच में स्तुति और भक्ति का काँच लगा देते हैं जिससे धूल कम आये, प्रत्याख्यान का परदा लगा देते हैं जिससे धूल कम से कम आये, इसी बीच में स्वाध्याय रूपी दीवार भी खड़ी करते हैं जिससे

धूल बहुत कम आये, किन्तु महानुभाव ! इस पंचमकाल में धूल आयेगी तो सही हर व्रत पर आयेगी, सम्यक्त्व पर भी आयेगी, उड़ रही है यह धूल। उड़ने वाली धूल को रोक नहीं सकते किन्तु अपने व्रतों को सम्हाल सकते हैं। जैसे ही आये साफ कर लो। ''भिक्कं वक्कं हेयं सोधियं जो चरदि णिच्चसो साहू'' जो साधु नित्य ही शोधन करता रहता है ''एसो सुदिट्ठ साहू'' ऐसा सुदिट्ठ साधु 'भणियो'-कहा है 'जिणसासणे'-जिनेन्द्रभगवान के शासन में भयवं भगवन्। उसे भगवान कहा है उस पंचम काल के साधु को भी जिनशासन में भगवन् कहा है। कई बार जब व्यक्ति को अजीर्ण हो जाता है जैसे जिसने बकरी का दूध सदैव पानी मिलाकर पीया हो और फिर उसे भैंस का दूध मिल जाये तो उसे अजीर्ण होगा ही। अभी प्रथमानुयोग का स्वाध्याय पूरा कर नहीं पाये मूलाचार लेकर बैठ जायें तो क्या होगा या तो उल्टी होगी या दस्त लगेंगे, किन्तु वास्तव में देखा जाये तो कुन्दकुन्द स्वामी क्या कह रहे हैं ? अपने आ. कुन्दकुन्द स्वामी की भाषा को समझें तो सही, उनकी भाषा इतनी उत्कृष्ट है कि गाँव की देहाती भाषा बोलने वाले व्यक्ति जिन्हें हिन्दी समझ में आ नहीं रही अंग्रेजी कहाँ से समझेंगे ? तो श्री कुन्द-कुन्द स्वामी की भाषा हिन्दी नहीं वह तो प्राकृतिक भाषा है, तुम जब शुद्ध हिन्दी ही नहीं पड़ पा रहे हो तो प्राकृत भाषा कैसे समझ आएगी। प्राकृतिक भाषा तो प्राकृतिक रूप को धारण करके ही समझ आ सकती है, विकृत रूपों के साथ प्राकृतिक भाषा समझ में नहीं आती और जिसने प्राकृतिक रूप को स्वीकार कर लिया है उसे प्राकृतिक भाषा समझ में आ जाती है। जो संस्कारवान् है उसकी समझ में संस्कृत भाषा आ जाती है। कुसंस्कारी को संस्कृत भाषा समझ में नहीं आती। ये णमोकार मंत्र भी प्राकृतिक यानि प्राकृत भाषा का है अभी तुम्हारे समझ में वही नहीं आया है। जब यथाजात दिगम्बर बन जाओगे तब णमोकार को समझ पाओगे आगे तो बहुत लम्बी-लम्बी बातें हैं। तो महानुभाव आचार्य भगवन् क्या कह रहे हैं, इस पंचमकाल के साधु को साधु मत कहो भगवान कहो क्योंकि भगवान कहोगे तो भगवान की भक्ति का फल मिलेगा, साधु कहोगे तो साधु की भक्ति का फल मिलेगा, तुम ही घाटे में रहोगे। तुमने यदि पंचम काल के साधु को पंचमकाल का मानकर ही आहार दिया तो तुम्हें पुण्य उतना ही मिलेगा और यदि उन्हें चौथे काल का साधु, तीर्थंकर मानकर आहार दिया तो तीर्थंकर को ही आहार देने का पुण्य मिलेगा। 1 प्रतिशत भी कम नहीं। तो महानुभाव हम यहाँ देख रहे थे ''किं जीवित मनवद्यं' पापों से रहित जीवन हो। जीवन में पाप आयेंगे, जैसे साधु के व्रतों में दोष लग रहे हैं, तुम श्रावक कितना भी अपने आप को बचाओ, फिर भी हवा चल रही है, पापों की धूल चेतना पर आयेगी ही आयेगी। कोई भी व्यक्ति नहीं है जो पापों से अलिप्त हो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि धूल आयेगी ही। एक भी श्रावक-श्रमण नहीं हो सकता जिसके व्रतों-महाव्रतों में धूल नहीं आ रही हो क्योंकि इस पंचमकाल में संभव तो यही है कि पूरा निरतिचार नहीं हो सकता है, अतिचार तो लगेंगे उनका पुनः-पुनः संशोधन करो। जो यह सोचे कि

मैं तो निरतिचार पालन करूँगा ऐसा व्यक्ति वह कभी भी जीवन में सम्यक्त्व को, व्रतों को प्राप्त कर ही नहीं सकता है ये बात 100 प्रतिशत सत्य है। नोट कर लेना, क्योंकि इस काल में सम्यग्दर्शन का अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा निरतिचार पालन नहीं किया जा सकता। उपशम सम्यक्दर्शन तो निरतिचार हो सकता है। किन्तु क्षयोपशम में तो अतिचार लगेंगे ही लगेंगे, अवश्य लगेंगे कहीं भी प्रवृत्ति करोगे तो अतिचार लगेंगे किन्तु लगने दो हम अतीचार से घबराते नहीं, हम घबराते हैं अनाचार से और अतीचार लगे हैं उस पर हम सावधान हैं धूल जमने नहीं देंगे आ रही है आने दो, आये मिटाओ क्योंकि क्या हम आँधी को बंद कर सकते हैं ? क्या इस पंचमकाल को बदल सकते हैं ? नहीं, हम कितना भी कर लें इसके साढ़ें अठारह हजार वर्ष बाकी रह गये हैं वे तो निकलेंगे ही, वह तो आँधी चलेगी ही, तो ''किं जीवितं अनवद्यं'' पाप से रहित व्यक्ति ही जीवंत है। यहाँ पाप से रहित जीवंत व्यक्ति मैं समझता हूँ कि अर्थ यह निकालना है कि चित्त पर पाप के पौध को जमने मत दो, पाप का पानी आये तो ऐसी छत पर ढाल बनाओ कि पानी टिक ही न पाये, वह बह जाये, बुरा विचार हो चाहे अच्छा। जिस भाव को छेड़ोगे वही रूक जायेगा, जीवन में यदि अच्छा विचार है तो छेड़ दो। अर्थात् अच्छी बातों की चर्चा करो, विचार विमर्श करो, यदि नहीं छेड़ा तो अच्छा विचार कब आये कह नहीं सकते। यदि पाप के विचार को क्रियान्वित करोगे तो पाप का विचार स्थाई होकर अपनी जगह बना लेगा और अच्छे विचारों पुण्य विचारों को रोक लिया तो वह स्थायी होकर अपना स्थान बना लेगा। आम रास्ते पर भला आदमी, बुरा आदमी दोनों जा रहे हैं और तुमने उससे जुहार कर लिया तो वह देखेगा तो तुम्हारी ही ओर, उससे तुमने बात की, भला बुरा जो होगा वह बैठ जायेगा, तो भले को तो रोको, बुरे को जाने दो। तो जो पापों से रहित है वही जीवित प्राणी है। तो यदि जीवन में पापों का संचय नहीं कर रहा, पुण्य भी आ रहा, जा रहा है पुण्य को रोकने का प्रयास कर रहा है पापों को जाने दे रहा है ऐसा व्यक्ति जीवंत जीवन का आनंद ले सकता है अन्यथा नहीं। दूसरा प्रश्न है-

''किं जाड्यं''-जड़ता क्या है ? **''पाटवे ऽपि अनभ्यासः''**

कुशलता होते हुये भी जो ज्ञान का अभ्यास नहीं करता है वह सबसे बड़ा मूर्ख है। जिसके पास घर में गाड़ी रखी है, फिर भी पैदल दौड़ रहा है वह मूर्ख है। जिसके पास घोड़ा है किन्तु स्वयं उसे खींचकर ले जा रहा है सवारी नहीं कर रहा वह मूर्ख है।

एक व्यक्ति ट्रेन से यात्रा कर रहा है उसने अपना सूटकेस सिर पर रखा, बिस्तर बगल में रखा, एक हाथ में झोला, एक व्यक्ति ने पूछा-भई ! क्या बात है ? वह बोला-तुम्हें दिखता नहीं ट्रेन में कितनी भीड़ है, इतना, सब सामान हो जायेगा तो गाड़ी पंचर हो जायेगी तो इसलिये मैंने अपना सामान सिर पर रख लिया है जिससे गाड़ी पर ज्यादा बोझ न आये। टी.टी. आया-कहा पैसे?

बोला-मेरे पास टिकट है पर मैं सामान के पैसे नहीं दूँगा क्योंकि सामान मेरे सिर पर है। तो बात ये है सामान को सिर पर रखकर ढोओ मत जो तुम सामान नीचे रख सकते हो, जिस बिस्तर पर तुम बैठ सकते हो, उस बिस्तर को बगल में लेकर क्यों खड़े हो, जिस भोजन को तुम पेट में डालकर भूख मिटा सकते हो उस भोजन को पीठ पर टांग कर क्यों घूम रहे हो, जिस पानी को पीकर प्यास बुझा सकते हो उस बोतल को लटका कर क्यों घूम रहे हो? तो ये ''पाटवेऽपि नभ्यास:'' पटुता होने पर भी अभ्यास नहीं करना, भोजन होने पर, भूख लगने पर भी भोजन नहीं करना मूर्खता है अर्थात् अनुकूलता होने पर, अनुकूल सामग्री मिलने पर यदि पुण्य कार्य न करे, ज्ञान की अनुकूलता है तुम्हारे पास इतना क्षयोपशम है स्वाध्याय कर सकते हो सद्गुणों को ग्रहण कर सकते हो, आचार्यों की भाषा को समझ सकते हो तो समझने का प्रयास करो यदि न प्रयास करो तो आचार्य कह रहे हैं यह तुम्हारी बहुत बड़ी मूर्खता है।

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशतु पापमपा करोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्संगति कथय किं न करोति पुंसां॥

सत्संगति से ही बुद्धि की जड़ता दूर होती है और सत्संगति में नहीं आते हैं तो व्यक्ति की बुद्धि और जड़ होती चली जाती है वह जड़ बुद्धि होता चला जाता है। जड़ का आशय क्या होता है? जो एक जगह जम जाये जिसमें परिवर्तन न आये, वह कभी बाहर निकलकर देखती नहीं, जड़ तो वहीं पड़ी रहती है, एक संकीर्ण धारणा के उस कवच में जो बंधा पड़ा व्यक्ति है वह जड़ है। जैसे वृक्ष की जड़ जमीन में गढ़ी पड़ी है बाहर आकर देखती नहीं क्या हो रहा है वह तो वहीं अपनी बुद्धि की संकीर्णता में कैद हो जाता है वह व्यक्ति जड़ बुद्धि है जो व्यक्ति अपनी सोच के बाहर आता है वही जड़ता से दूर है बुद्धि तुम्हारे पास है फिर भी अभ्यास नहीं कर रहे हो तो इससे जड़ता बढ़ेगी। तीसरी बात कह रहे हैं-को जागर्ति-जगा हुआ व्यक्ति कौन है-''विवेकी''।

जो विवेक पूर्वक सभी क्रिया को करता है वही वास्तव में जगा हुआ है अन्यथा सब व्यक्ति सोये हुये हैं। आप से कोई कहे आप सो रहे हो या जग रहे हो आप कहते हैं। बीच-बीच में कहीं नींद खुल जाती है, वैसे तो सो ही रहा हूँ क्यों ? क्योंकि अधिकांश क्रिया बिना विवेक के होती है कभी नींद खुली अर्थात् कभी-कभी किसी क्रिया में विवेक लगा लेता हूँ और साधु से पूछो तो वह कहेगा-वैसे तो मैं जागा हुआ हूँ कहीं कदाचित् सोने वाले मेरे पास आ जाते हैं तो कभी झपकी लगती है वैसे तो मैं हमेशा जाग्रत रहता हूँ। तो बात यह है जाग्रत रहो। जाग्रत कौन है ? जो विवेक पूर्वक हर क्रिया को करता है, फिर भी कई बार सोने वाले लोग (श्रावक) आ गये

तो साधु भी प्रमादी हो सकता है उसके व्रतों में अतीचार लग जावें, देर हो जाये व्रतों को पालन करने में कभी स्वाध्याय में, कभी सामायिक में, कभी प्रतिक्रमण में कहीं कोई आगे पीछे हुआ तो ये क्या है झपकी लगना है इसलिये अपनी क्रिया में विवेक नहीं रख पाया। श्रावक जो साधु के पास आता है तो उसकी नींद थोड़ी देर के लिये टूट जाती है और घर पर रहता है तो खर्राटे लेता रहता है। खर्राटे की आवाज तुम्हें सुनाई दे या न दे, किन्तु यहाँ पर तुम आते हो तुम्हारे खर्राटे साफ सुनाई देते हैं जो तुम बिना विवेक की क्रिया कर रहे हो और फिर भी तुम्हारी नींद कभी कभी खुलती है तो तुम्हें भी अहसास हो जाता है वाचना में कि हाँ मैं क्रिया तो वास्तव में बिना विवेक की कर रहा हूँ। तो ये अपना अज्ञान का बोध ही ज्ञान की ओर बढ़ने वाला पहला कदम है। स्वयं के अज्ञान का बोध ही अपनी नींद की जानकारी है, अपने अज्ञान को मिटा देना ही ज्ञान का प्रतीक है। तो तीसरी बात कही विवेकी ही जाग्रत है। विवेक चाहे निद्रा में हो या जाग रहा हो तब भी सोने में भी यदि करवट लेना है तो हाथ पीछे पहुँच जाता है परिमार्जन करके फिर करवट लेता है वह सोते-सोते भी विवेकी है। स्वप्न में भी यदि देख रहा है कि किसी सरागी मंदिर में गया तो नींद में भी वहाँ से निकल गया किन्तु उसका सिर वहाँ नहीं झुका, सोने में भी उसका विवेक वहाँ कार्य कर रहा है। सोते हुए भी प्रतिक्रमण सामायिक की जा रही है। सोने में भी वह व्यक्ति जाग्रत है। और जो जागने में भी बुद्धिपूर्वक तू जानता है मैं कौन हूँ ऐसा कर दूँगा कहने को वह भले ही क्रोध में भरी लाल-लाल आँखें दिखा रहा हो किन्तु वास्तव में तो वह सो रहा है क्योंकि उसकी क्रिया बिना विवेक के चल रही है।

अगली बात कह रहे हैं-**'का निद्रा'** निद्रा क्या है **'मूढता'** मूर्खता ही निद्रा है जो बिना विवेक के कार्य कर रहे हैं वही निद्रा है। जो व्यक्ति सो रहा है वही गलती कर रहा है जो विवेक से कार्य कर रहा है वह जागा हुआ है। दोनों बातें कह दीं-को जागर्ति-विवेकी, का निद्रा-'मूढता' तो ये चार बातें यहाँ बतायी इन चार बातों को ध्यान रखना है।

पहली बात जीवित रहने के लिये अपने चित्त में से पापों को निकालना है, यदि चित्त पर पाप ज्यादा हो गये तो पाप तुम्हें दबा देंगे, तुम्हें मिट्टी में मिला देंगे और पाप की मात्रा कम होती गयी, और तुम्हारी शक्ति बढ़ती गयी तो तुम भी पापों को हिलाकर के मिट्टी में मिला दोगे, पूर्ण जीवंत हो जाओगे।

दूसरी बात-जो तुम्हारे पास क्षयोपशम है उसका सदुपयोग करो, कुतर्को में अपनी बुद्धि न लगाओ, आचार्यों की वाणी की पुष्टि करने में अपनी बुद्धि लगाओ। आचार्य की वाणी का खण्डन करने में नहीं, आगम के पोषण में अपनी बुद्धि लगाओ। सम्यक्दृष्टि अपनी बुद्धि से आगम का पोषण करता है मिथ्यादृष्टि अपनी बुद्धि से आगम का शोषण करता है, तो अपने आगम का,

सिद्धान्तों का खण्डन अपने कुतर्कों से स्वयं न करो। एक बार अपने मुख से ऐसा कोई शब्द कह दिया तो उस शब्द का बहुत बड़ा दुरुपयोग हो सकता है-एक व्यक्ति ने प्रमोद में कह दिया-मन की शुद्धि वचन की शुद्धि काहे की शुद्धि उसने तो प्रमोद में कह दिया, भईया आहार में जब शुद्धि नहीं तो फिर कैसे काम चले व्यक्ति मन वचन काय की शुद्धि को भी हँसी में यदि कहने लगे तो भैया अब आहार न लेंगे जब तेरी शुद्धि नहीं तो चौके से बाहर, आहार नहीं लेंगे। कहने का आशय यह है कि हम प्रमोद में भी ऐसी बातें न कहें जिस बात का प्रभाव साधु पर उल्टा पड़ जाये। हम भी कई बार आपको प्रमोद की बात सुनाते हैं जिससे मन प्रसन्न हो जाये किन्तु हम उस बात के पीछे अवश्य कोई न कोई तथ्य बताते हैं। इसका ये अर्थ भी हो सकता है उस तथ्य को बताये बिना यदि हमारे मुँह से कोई बात निकल जाती है तो हमारा उपदेश देना सार्थक नहीं बल्कि अनर्थकारी हो जायेगा। तो साधु के मुँह से ऐसी बात न निकले जिससे अनर्थ हो जाये। यदि अनर्थकारी बात निकलती है तो उससे पहले साधु को मौन ले लेना चाहिये जिससे अनर्थ से बच जाये। चाहे सामने वाले का जीवन सार्थक कर पायें या न कर पायें कम से कम अनर्थ से तो बच जाना चाहिये।

जाग्रत और निद्रालु व्यक्ति कौन ? जो विवेक से सहित है वही व्यक्ति जागा हुआ है। और मूढ़ व्यक्ति सोया हुआ है। ये सब बातें यहाँ बताई आगे कल देखेंगे।

बोलो शांतिनाथ भगवान की जय-

(124)

संसार की अनित्यता

महानुभाव !

कल देखा था-जीवंतता क्या है ? निर्दोषता निष्पापपना ही जीवंतता है और दूसरी बात देखी थी, मूर्खता क्या है ? जड़ता क्या है ? अभ्यास करने की सामर्थ्य होते हुये भी तत्त्वाभ्यास न करना सबसे बड़ी जड़ता है, बुद्धि की विडम्बना है। और जागरण क्या है ? जागरण का आशय ये नहीं कि रात भर चिल्लाते रहो, न वह कि न खुद सोओ न दूसरों को सोने दो। जागरण का आशय होता है, प्रत्येक क्रिया को विवेकपूर्वक करो। जो अंतरंग से जागरुक होते हैं उनसे सोते-सोते भी पाप नहीं होता, स्वप्न में भी उन्हें इतना ख्याल रहता है कि बुद्धिपूर्वक कोई पाप नहीं करना। उसके अंदर संस्कार ऐसे पड़ गये हैं, व्यक्ति जब नींद नहीं आ रही है लोक व्यवहार में जाग्रत है तो बुद्धिपूर्वक पुण्यकार्य में, अच्छे कार्य में लगा है वह संस्कार पड़ जाते हैं वे संस्कार रात्रि में भी काम करते हैं तो रात्रि में भी उससे पाप नहीं होता। तो जो विवेकी है वही जाग्रत है। अविवेकी व्यक्ति जागते हुये भी ज्यादा अनर्थकारी हो सकता है। आगे कहा-नींद क्या है? जो आँख बंद करके ली जाती है वह नींद, नींद नहीं है। नींद तो यह है कि व्यक्ति अपनी बुद्धि का प्रयोग न करे मूर्खता के साथ जीये यही सबसे बड़ी नींद है मूर्खता नींद है। विवेकशीलता जागरण है। व्यक्ति भले ही जागता है, खाता है, चलता-फिरता है सब क्रियायें करता है किन्तु फिर भी वह नींद में रहता है। और देखो सबसे बड़ी बात तो ये है कि जो आँख बंद करके सोता है वह सबको सोता दिखाई देता है किन्तु आँख खोलकर जो सोता है उसे पहचान नहीं पाते उसे कोई विरला व्यक्ति ही पहचान पाता है कि व्यक्ति सो रहा है या जाग रहा है। तो महानुभाव ! आँख बंद करने वाले को कोई हिलाकर जगा सकता है किन्तु आँख खोलकर कोई सो रहा हो तो। भौतिक जगत में प्राय:कर व्यक्ति आँख बंद करके सोता है, किन्तु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं कि आँखे खुली होती है, मुँह खुल जाता है और वह सो रहा होता है। कुछ एक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, व्यक्तियों को लगता है कि वह जग रहा है पत्थर की सी मूर्ति जैसा लगता है तो वह व्यक्ति उसे कोई जगाने भी नहीं आयेगा, किन्तु जो आँख बंद करके सो रहा, खर्राटे ले रहा है, उसे कोई जगा भी देगा। ऐसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में देखते हैं जो व्यक्ति धर्म की क्रिया नहीं कर रहा, जो धर्म से दूर है तो मान सकते हैं कि आध्यात्म क्षेत्र में सोया हुआ है। धर्मक्षेत्र में इसका रुझान नहीं है उस सोते हुये को तो कोई जगा सकता है। भाई मंदिर जाया करो, थोड़ा धर्मध्यान कर लो उससे कहा जा सकता है। किन्तु जो धर्म के कार्य में संलग्न होते हुये भी अंदर से सो रहा है उसे कौन जगायेगा ? जगाने के लिये यदि जगायेंगे तो भी न जगेगा ऐसे व्यक्ति को जगाना कठिन है। महानुभाव ! आचार्य महाराज उनके लिये कह रहे हैं कि भाई तुम जागो यदि तुम बाहर की क्रिया कर रहे हो

उससे तुम संतुष्ट हो रहे हो कि मैं सोता हुआ कैसे हो सकता हूँ किन्तु अपनी आत्मा से पूछो कि वास्तव में तुम सो रहे हो या जग रहे हो। जो जागा हुआ होता है वह व्यक्ति बाहर के चोरों से सावधान रहता है। सोया हुआ व्यक्ति जो चोरों से सावधान नहीं है जागा हुआ भी है तो सोने से खतरनाक है। तो महानुभाव ! हमें चोरों से सावधान रहना है ये चोर हमारे धर्मरत्न को लूटने वाले हैं। पहला चोर है-''रोग'' रोग हमारे धर्मरूपी रत्न को लूटता है। शरीर अस्वस्थ है यह भी रोग है, विषय कषायें भी रोग है, क्षुधातृषा आदि ये भी रोग हैं। ये रोग जब आत्मा के साथ लग जाते हैं तो आत्मा की शक्ति को शनैः-शनैः क्षीण करते जाते हैं, रोग से अंतरंग की शक्ति क्षीण होती है। बाहर से शरीर फूला है कि पिचका इसका कोई महत्व नहीं किन्तु जो व्यक्ति आरोग्यवान् हो चाहे दुबला पतला हो या मोटा हो किन्तु निरोगी होना चाहिये। प्रायःकर पतले व्यक्ति ज्यादा फुर्तीले होते हैं बीमारियाँ कम प्रवेश करती हैं मोटे व्यक्ति ज्यादा जल्दी थक जाते हैं। कहने का आशय है निरोगी शरीर ही धर्म ध्यान करने में सहायक होता है। आचार्यों ने कहा है यदि साधु रोगी हो जाये तो वह प्रायश्चित का अधिकारी होता है। यह उसके प्रमादी होने का कारण है। साधक योगी रोगी नहीं होता, यदि साधु के पैर में कांटा लग जायेगा ठोकर भी लग जाये तो उसे प्रायश्चित लेना चाहिये क्योंकि कहीं प्रमाद किया है। तो रोग भी यदि साधु के शरीर में आता है तो वह रोगी साधु करुणा दया का पात्र तो होता ही है दीन हीन भी हो जाता है, उसकी सम्पदा तो सब लुट गयी। इसलिये अव्रती असंयमी लोग भी उस पर दया करुणा करते हैं हम दुनिया पर दया करने वाले अस्वस्थ हो गये फिर दूसरों की दया का पात्र बनना पड़ता है। तो रोगी व्यक्ति 'बेचारा' हो जाता है।

दूसरी बात-यदि मन प्रसन्न रहता है तो फिर रोग टिक नहीं पाते हैं। ध्यान रखना चित्त की प्रसन्नता तन को रोगी नहीं होने देती और गुरु का भरसक प्रयास यह रहता है कि उसके शिष्य का चित्त रोगी न हो जाये, तन रोगी होगा तो उसका उपाय किया जा सकता है। चित्त प्रसन्न रहे, चित्त निरोगी रहे तभी उसके रोग दूर होते चले जायेंगे और अंदर में उत्साह होता है तो रोग टिक नहीं पाता है। तो महानुभाव ! जितना हम रोग का सम्मान करते हैं रोग उतना ही पैर फैलाकर बैठ जाता है जाने का नाम ही नहीं लेता। रोग को आने ही न दें, यदि आ गया तो उसे विश्राम न दें कि नहीं मैं तो सिर्फ अपने कार्य में व्यस्त रहूँगा। तुझे यदि मेरे साथ मेहनत करनी है तो कर। रोग-साष्टांग प्रणाम करेगा और भाग जायेगा। तो महानुभाव-रोगी साधक समाज पर बोझ होता है और निरोगी साधक समाज के लिये बोध होता है। जो खुद का व समाज का कल्याण करने में समर्थ है वह साधक तो बोध का कारण है उसकी पूजा होगी, प्रशंसा होगी, प्रभावना होगी पर जो साधु रोगी बन गया तो रोगी साधु खुद पर भी बोझ और समाज पर भी बोझ। अतः सावधान रहो कि रोग शरीर में लग ही न पाये। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी वैसे तो आचार्य हैं किन्तु भगवान

से इसकी प्रार्थना कर रहे हैं-हे भगवान जो मैं पुण्य कर रहा हूँ उसमें से एक हिस्सा अपने आरोग्य लाभ के लिये खर्च करता हूँ मैं अपनी पूरी पुण्य की सम्पत्ति को मोक्ष के लिये नहीं इसका एक अभिन्न अविनाभावी भाव आरोग्य लाभ भी है उन्होंने कई बार श्लोकों में कहा-**आरोग्ग बोहिलाहं दिंतु समाहिं च मे जिण वरिंदा''**

हे जिनेन्द्र भगवान मुझे आरोग्य की प्राप्ति हो, बोधि बाद में मांगी पहले आरोग्य माँगा, समाधि, मोक्ष बाद में। तो यहाँ पर कह रहे हैं आरोग्य तन का भी हो और मन का भी हो, वचन का भी हो, वचनों में उत्तेजना न हो। उत्तेजना शरीर की भी होती है, भावों में भी आती है, ऐसे ही वचनों में भी उत्तेजना आती है। कभी-कभी तुम शांत होते हो तब सामने वाला तुमसे दो शब्द ही कह दे कि भईया ! तुम बड़े प्यार से बोलते हो ? बस इतना सुनते ही पानी-पानी हो जाता है उत्तेजना में एक की दस सुनाते हो, ईंट का जवाब पत्थर से देते हो, तुम्हारे पास जवाब देने के लिये पत्थर है। वह पत्थर इतना मजबूत कि किसी की ईंट उस हृदयरूपी पत्थर से टकराकर चूर-चूर हो जाये दुबारा ईट दिखाने का साहस न करें किन्तु तुम इतना पक्का अपना दिल नहीं बनाते कि उसकी ईंट को चूर-चूर कर दो। तुम तो ईंट मारने वाले पर पत्थर फेंकते हो। तो ये वचनों की उत्तेजना है शरीर की उत्तेजना है। ये उत्तेजनायें प्राय:कर के हानिकारक होती हैं, इनका मोक्षमार्ग से कोई वास्ता नहीं है। जो मोक्षमार्ग का रास्ता है उसमें उत्तेजना नहीं, शुद्धात्मा का इनसे कोई भी वास्ता नहीं, उत्तेजना आत्मा का नाशता नहीं, इन सबको दूर करके चलना है। कुछ औषधियाँ होती हैं चित्त को निरोगी बनाने की औषधि है-समता, संतोष भाव। चित्त में कितनी भी उथल-पुथल मच रही हो समता से बैठ जाओ जो भी हो सो ठीक है हमें हमारे ही कर्म का फल मिल रहा है। मन में समता रखने से चित्त वश में हो जाता है। संतोष उस चित्त को बांधने की रस्सी है और समता एक ऐसी पेटी है जिसमें उस चित्त को डाल कर ताला डाला जाता है। तो संतोष की बेड़ियों से चित्त को कसा जा सकता है यदि चित्त आँख खोलकर के यहाँ वहाँ देखे तो समता की पेटी में बंद कर दो। बाहर से ताला लगा दो चित्त कहीं जायेगा ही नहीं ऐसे ही जब वचनों की उत्तेजना आ रही हो तो मन की शांति जरूरी है क्योंकि वातावरण जब प्रतिकूल होता हो तो व्यक्ति को जल्दी गुस्सा आता है। दूसरी बात व्यक्ति वचनों की उत्तेजना तब रोक सकता है जब वह विवेक के साथ चले। विवेक और वैराग्य वचनों की उत्तेजना को रोकने वाले हैं, वैरागी सोचेगा किस से राग, किससे द्वेष स्वयं मौन लेकर बैठ जायेगा, मौन का पालन करेगा वचनों में उत्तेजना नहीं आयेगी। और तत्त्वज्ञान से सोचेगा ये पुद्गल है मैं क्यों पकडूँ किसी व्यक्ति ने तुम्हें लड्डू फेंक कर मारा तुमने पकड़ा अच्छा लगे तो खाओ, और कोई गोबर का ढेर उठाकर फेंके तो साईड हो जाओ। इसी प्रकार कोई तुम्हें अपशब्द कह रहा है उसे गोबर कीचड़ समझ पकड़ो ही मत, छूओ ही मत तो वह तुम्हें अशुद्ध ही न कर सकेगा और यदि बूंदी का लड्डू मानकर लपक लिया तो

तुम भी अशुद्ध हो जाओगे। व्यक्ति अपशब्द का प्रहार करता है तो साईड होकर निकल जाओ बचकर निकल जाओ। जैसे किसी ने अग्निबाण छोड़ा सामने वाले ने जल बाण छोड़ दिया बीच में ही बाण नष्ट हो गया। ऐसे ही नागपाश बाण छोड़ा तो उसने गरुड़ बाण छोड़ दिया बीच में ही ध्वंस हो गया। ऐसे ही जब व्यक्ति कितनी ही तीव्र कषाय से वचनों के बाण छोड़े तुम क्षमा का बाण छोड़ना वह पानी-पानी हो जायेगा। वह मान का बाण छोड़ता है, तुम विनम्रता का बाण छोड़ दो उसकी शक्ति नष्ट हो जायेगी। वह मायाचारी का बाण छोड़ता है तुम सरलता सहजता का बाण छोड़ो शक्ति नष्ट हो जायेगी। तो बात ये है कि वचनों की उत्तेजना भी इससे शांत की जा सकती है और शरीर की उत्तेजना शांत करने के लिये शरीर के आवेगों के साथ मत जुड़ो, शरीर के आवेगों को मन से दूर रखो यदि मन तुम्हारा इन्द्रियों के आवेग से चिपक गया तो शरीर के रोग को दूर नहीं कर सकते। शरीर के साथ मन लगा दिया तो शरीर दीर्घ काल के लिये रोगी हो गया। अपने धर्मरत्नों को, इन रोगों को जो चित्त के चोर हैं इन्हें मत बेचो। ये वे लुटेरे हैं जो हमारे धर्म ध्यान को क्रियाओं को लूट ले जाते हैं। महानुभाव-हमारा मन भी निरोगी रहे, तन भी निरोगी रहे। वचन भी निरोगी रहे। और नीतिकार तो ये कहते हैं।

'पहला सुख निरोगी काया' जो अपने तन का सुख नहीं ले सका वह अपने मन का, वचन का, आत्मा का सुख लेगा यह तो सपने की बातें हैं। जो अपने शरीर को निरोगी नहीं बना पाया वह धर्म ध्यान का क्या सुख ले पायेगा। महानुभाव ! कर्म के उदय से कोई रोग हो गया अलग चीज है किन्तु हमारे प्रमाद के वश शरीर में कोई रोग नहीं होना चाहिये, प्रमाद को हम टाल सकते हैं कर्म को सहसा नहीं टाल सकते किन्तु टाल तो इसको भी सकते हैं, उसमें भी पाप प्रकृतियों को पुण्य प्रकृतियों में संक्रमित किया जा सकता है। वह टालने योग्य है कोई तीव्र ही निधत्ति निकाचित जैसे कर्म हो उसको टालना फिर मुश्किल है। महानुभाव ! जो जागरूक रहता है वह चोरों को, चोरों के सरदारों को सबको भगा सकता है। जागरूक ही अपने कर्मों को टाल सकता है। जो अपने मन वचन काय को निरोगी रखता है वही वास्तव में अपने तीनों योगों का सही उपयोग करने का अधिकारी है, रोगी व्यक्ति चाहे मन से हो, वचन से चाहे काय से वह कभी भी अपनी मंजिल को सम्यक् रूप से प्राप्त नहीं कर सकता। महानुभाव आगे 12वें काव्य को देखते हैं।

नलिनी दलगत जललव, तरलं किं यौवनं धनमथायुः।
के शशधर कर निकरा, नुकारिणः सज्जना एव॥१२॥

नलिनी-कमलिनी **दलगत**-दलपत्र पर **जललव**-जलकण कमलपत्र पर पड़ी जल कण कब नीचे खिसक जाये कुछ नहीं कहा जा सकता भरोसा नहीं कि वह बूंद पत्ते पर कब तक ठहरी हुयी

है, ऐसे ही ओस की बूंद की तरह से, इन्द्रधनुष की तरह से, आकाश में चमकने वाली बिजली की तरह से काँच के सामान की तरह से संसार में क्षणिक क्या है? तो आचार्य महोदय कह रहे हैं तीन चीजें बहुत क्षणिक है **''यौवनं धन आयुः''** यौवन, धन और आयु। यौवन क्षणिक है यौवन कब आता है कब चला जाता है पता नहीं चलता, बचपन आता हुआ मालूम नहीं पड़ता, किन्तु जाता हुआ मालूम पड़ता है, जवानी न आती हुयी मालूम पड़ती है और न जाती हुयी। बुढ़ापा आता हुआ मालूम पड़ता है पर जाता हुआ नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि बुढ़ापे में कब मृत्यु आ जाये कह नहीं सकते। जन्म कब हुआ बाल्यअवस्था कब आयी थी, कह नहीं सकते, बाद में यौवन अवस्था आ जाती है।

दरअसल में बाल्य अवस्था और वृद्ध अवस्था का काल कम होता है। बाल अवस्था मानी जाती है 1/4 और वृद्ध अवस्था 1/4, 2/4 जो अवस्था है यौवन अवस्था मानी जाती है, माना किसी व्यक्ति की आयु 100 वर्ष है। तो 25 साल उसका बाल्यकाल माना जाता है 75 से आगे वृद्धावस्था। 26 से 74-75 तक उसका यौवन माना जाता है। यदि 80 वर्ष का है तो 20 वर्ष बालकाल 60-80 वृद्ध काल 21 से 59 तक यौवन काल माना जाता है यौवन काल वृद्ध और बालअवस्था से दुगुना होता है और कई बार तो ये यौवन काल दूने से भी ज्यादा होता है जैसे कई व्यक्तियों का बाल्यकाल भले ही 24 साल का है किन्तु वह अपने आप को 12 साल में ही कहता है कि मैं युवा हो गया सब करने में समर्थ हूँ और 24 साल का बाल्य काल माना तो 96 साल की पूरी उमर मानी और 96 साल में से आखरी 24 साल 72-96 वृद्ध अवस्था। किन्तु व्यक्ति 84 तक अपने आपको वृद्ध नहीं मानता, यानि 12 साल का बाल्यकाल 12 साल का वृद्धकाल और पुनः 24 साल हुये और उससे तिगुना यौवन काल मानता हैं। 13 साल से 72 साल तक। वह 72 साल की उम्र में भी 20-30 कि.मी. चल लेता है। शरीर में कोई रोग नहीं किन्तु दरअसल में यौवन काल वृद्ध और बाल अवस्था से ज्यादा ही होता है फिर भी यौवन काल कब निकल गया मालूम नहीं चलता, बाल्य अवस्था बड़ी धीमी-धीमी चलती है बाल्य अवस्था के छः वर्ष 8-10 वर्ष जैसे निकलते हैं बाल्य अवस्था में कहते हैं पता नहीं हम कब बड़े होंगे, वह काटे से नहीं कट रही और वृद्ध अवस्था हे भगवान ! कब यहाँ से मुक्ति मिलेगी, यौवन अवस्था के वे क्षण कब निकल जाते हैं ऐसा लगता है कि पक्षी के पंख लगाकर उड़ गये। सत्यता यह है यौवन अवस्था में व्यक्ति सुख का अनुभव ज्यादा करता है, बाल्यअवस्था, वृद्ध अवस्था में कम। बाल्यअवस्था में भले ही वह राजकुमार ही क्यों न हो, वृद्ध अवस्था में भले ही यकायक राजा ही क्यों न हो किन्तु फिर भी उसे उस सुख की अनुभूति नहीं होती। जब वह यौवनावस्था में राजा है तब उसे सुख की अनुभूति ज्यादा होती है यौवन अवस्था में हर एक इच्छा को पूर्ण करने में समर्थ होता है, यौवन अवस्था में इन्द्रियाँ विकल नहीं है, यौवन अवस्था में सत्ता उसके हाथ में है, शरीर निरोगी है, यौवन अवस्था में वचनों में भी प्रभाव है, मन भी बलिष्ठ है।

यौवन अवस्था यानि चढ़ते हुये सूर्य को सभी नमस्कार करते हैं, ढलते हुये को नहीं। फिर भी जो प्रात:काल का सूर्य और संध्याकाल का सूर्य लालिमा छोड़ता है तो वह तो दिखाई देता है दोपहर में सूर्य धवल होकर के कब अस्त हो गया वह धवल सूर्य किसी से देखा नहीं जाता बहुत जल्दी निकल जाता है। तो महानुभाव ! यौवन अवस्था ऐसी ही क्षणिक है, इस यौवन पर ज्यादा गुमान नहीं करना हैं क्योंकि इस यौवन का कोई भरोसा भी तो नहीं है, हो सकता है कई बार जवानी में भी बुढ़ापा आ जाता है, कई बार बुढ़ापा आता ही नहीं है, जवानी में ही मृत्यु हो जाती है। जवानी ये तो ऐसे समझो जैसे सरिता का बहता पानी। सरिता का बहता पानी कभी रूका है क्या ? जब वह नहीं रूका, झरने से पहाड़ की चोटी से गिरा पानी कभी थमा नहीं है तो जवानी कैसे थम जायेगी। जवानी न किसी की थमी है न थमेगी यह तो चलती रहेगी इसे कोई रोक नहीं सकता। चलती हुयी ट्रेन को रोका जा सकता है, चलते हुये अन्य वाहन को रोका जा सकता है किन्तु ढलती हुयी जवानी को कौन रोक सकता है। कोई भी ऐसा उपाय नहीं चाहे कोई पुरुष हो अमीर हो या गरीब, विद्वान हो या मूर्ख, चाहे कैसा भी कर्मभूमि का मनुष्य या तिर्यंच हो उसकी जवानी ढलती है तो ढलती चली जाती है यह अलग बात है अपवाद में कि महापुरुष सदैव यौवन से युक्त होते हैं उनकी वृद्धावस्था नहीं आती, सामान्य पुरुष की तो सबकी आती है, तीर्थंकर कभी वृद्ध नहीं होते वे सदैव वर्तमान काल में जीने वाले होते हैं। जो भूतकाल में जीता है उसका बचपना कभी पूरा नहीं होता और जो भविष्य में जीता है वह जल्दी बूढ़ा हो जाता है जो वर्तमान काल में जीता है उसकी जवानी स्थिर तो नहीं रहती किन्तु जवानी का आनंद बहुत काल तक ले सकता है। इसलिये भूतकाल में जीना छोड़ दो हम बचपन में ऐसे खेलते थे, वृद्ध भी हो जाओगे तब भी तुम्हारा बचपना नहीं जायेगा, और यदि अभी से बाल्यवस्था से भविष्य के सपने देखने लग जाओगे तो लोग तुम्हें बचपन से ही अम्मा, दादी बाबा कहने लग जायेंगे। तो कहने का आशय यह है कि यौवन चंचल है नदी में उठती लहर की तरह से। वह यौवन उठता हुआ तो दिखाई देता है जैसे नदी की लहर उठती दिखाई देती है किन्तु ठहरती नहीं, नदी में लहर उठती है। तो बड़ी सुंदर लगती है दूर से बहुत अच्छी लगती है, मन करता है लहरों के बीच में जाकर स्नान करें। जैसे-पवनंजय नदी में तैरता रहता था, खूब समुद्र में तैरता था, बड़ा आनंद लेता था, उसे लगता जो लहर ऊँची उठ रही हैं उसी लहर के साथ मैं भी खड़ा होकर तैरता हुआ दूर तक पहुँच जाऊँ किन्तु वह ठहरती कहाँ है लहर उठाकर ले गयी तो जैसे उठाकर ले गयी वैसे ही उठाकर पटक भी देगी। तो लहर ज्यादा समय की नहीं है। नीचे ठहरा हुआ बचपन, नीचे ठहरा हुआ बुढ़ापा दिखाई देता है। किन्तु लहर जो उठ गयी वह ठहरती नहीं है बहुत ऊँची उठती है किन्तु तुरंत ही डूब जाती है जवानी भी ऐसी ही है। वृद्धावस्था बाल्यावस्था दिखाई देती है। जवानी पता नहीं चलती कब आयी कब चली गयी। महानुभाव ! इसीलिये आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि जवानी

क्षणभंगुर है। व्यक्ति का जन्म दिखायी देता है मृत्यु दिखाई देती है जीवन तो दिखाई ही नहीं देता। कहाँ आया कब सरक गया, जीवन कहाँ से फिसल जाता है। जवानी तो उसका एक अंश है। वह तो न जाने कब खिसक जाती है। इस जवानी का ज्यादा विश्वास नहीं करना, जवानी पर ये सोचना कि जब तक यौवन अवस्था है तब तक मुझे सफल और सार्थक कार्य कर लेना चाहिये, ऐसा कार्य कर लेना चाहिये, जिससे मैं कभी बालक और वृद्ध न बनूँ, वह पहल क्या है ? वह पहल है यदि जवानी में ऐसा कोई पुण्य कर लिया कि देव अवस्था में पहुँच गया तो न तो बाल अवस्था आयेगी और न वृद्ध अवस्था आती है सदा जवानी रहती है। तो ऐसा काम किया जा सकता है जवानी में कि बाल-वृद्ध अवस्था से मुक्ति मिल जाये। जवानी में ऐसा कार्य भी किया जा सकता है कि जन्म जरा मृत्यु सबसे मुक्ति मिल जाये, यदि मुक्तात्मा सिद्धात्मा है तो उनका न तो जन्म होता है और न मरण। यदि यौवन अवस्था में सार्थक पहल कर ली कब ? जब यौवन की चढ़ाई चढ़ रहे हैं तब ये नहीं कह सकते कि यौवन कहाँ तक चढ़ेगा, फिर रिवर्स होना प्रारंभ हो गया फिर कुछ न कर सकोगे। जब चढ़ना प्रारंभ किया, यौवन की पहली दहलीज पर पैर रखा तब से ही सोच लें अपने आत्म कल्याण के लिये, अगले भव के लिये कुछ करना है। तब तो व्यक्ति कुछ कर सकता है बाल्य अवस्था में संकल्प लेकर योजना बना ले तो ठीक है यौवन अवस्था में कहीं फँस गया, आज नहीं कल करूँगा वह कल कभी आती नहीं है वह यौवन कहाँ से मार दे। ये चढ़ाई कहाँ तक चढेगी कोई गारंटी थोड़ी ही है कब कहाँ से वापिस हो जाये इसलिये लोगों को ख्याल तब आता है जब ये वापिस होती है। जब वापिस होती है जवानी तो जो करना चाहता है वह कर नहीं पाता, उतना उत्साह, उतना बल, उतना ओज, उतनी उसकी क्षमता नहीं रह पाती इसीलिये व्यक्ति को पहले से ही तत्पर रहना चाहिये कि जवानी ढले उससे पहले जवानी के तले उसके कदम मोक्षमार्ग पर चलें। तब तो ठीक है किन्तु जब जवानी ढले ही नहीं, जवानी निकल ही गयी, जवानी की बर्फ पिघल ही गयी तब क्या करोगे ? अब तो मुश्किल है। देखो-जवानी में तीन बातें ध्यान करना आवश्यक है-पहली बात जवानी में 'जोश' होना चाहिये-जिस जवानी में जोश नहीं है वह जवानी जवानी नहीं। दूसरी बात-जवानी में 'होश' होना चाहिये, यदि होश नहीं तो जवानी अनर्थकारक हो जायेगी। तीसरी बात-जवानी में ''तोष'' होना चाहिये। संतोष नहीं है तो जवानी में बढ़ते जाओगे आगे हाथ में कुछ भी नहीं आयेगा, दौड़ तो लगायी पर पकड़ा कुछ नहीं। तो जीवन में जवानी में जो आवश्यक है उन तीन चीज का ध्यान रखना है-जोश, होश, तोष। जो इनका ध्यान रखता है उसकी जवानी सफल और सार्थक हो जाती है। महानुभाव! बाल्यावस्था में तीन बातें ध्यान रखने योग्य होती है-बालक-'सच्चा हो', 'बच्चा हो' और अच्छा हो, और दिल का कच्चा हो, यदि बालक का दिल पक्का है, बहुत बड़ी घटना घटित है और उसका दिल न पिघले तो बालक, बालक नहीं रहा। बालक तो वह है जिसकी आँखें सहजता में गीली हो जायें,

बालक तो वह है जिसका मन कच्चा हो। बालक सच्चा हो-बालक जो बात बस सहजता में कह देते हैं-माँ मैं स्कूल गया था, उसने मेरी कलम छीन ली थी। मैंने उसकी पुस्तक ले ली उसने मुझे मारा तो मैंने भी मार दिया-जो-जो भी हुआ, सब बता देता है इतना सच्चापन, इतना भोलापन। और तीसरी बात अच्छा हो-यदि बालक अच्छा है तो सबका मन करता है अपने पास बैठाने का तो ये बाल्यावस्था के आभूषण हैं। वृद्ध अवस्था में तीन चीजें हो तो वृद्ध अवस्था की शोभा होती है-'नौन' 'मौन' 'कौन'।

नौन-का मतलब है नमक बहुरानी ने थाली परोस कर दे दी, उसमें नौन ज्यादा है या कम है बस कुछ नहीं कहना समता से खाना तब तो बहुरानी तुम्हारी सेवा करती रहेगी, जब स्वयं भोजन करेगी अरे दादाजी आपने बताया भी नहीं नमक कम था। कोई बात नहीं बेटी कभी ज्यादा कम हो जाता है। मैंने भी ध्यान नहीं दिया। नहीं बोला-तो बहुरानी कह रही है मुझसे गलती हो गयी, और यदि बोल दिया तो-इनकी बड़ी कानून है-कभी ज्यादा हो गया, कभी कम हो गया, अपने हाथ से बना कर खालो। तो चुपचाप भोजन करो कभी 'नमक' न मांगो। प्रशंसा करते रहो। ऐसा नहीं कि प्रशंसा न करो, पत्नी की प्रशंसा की हो या नहीं की हो किन्तु बहुरानी की अवश्य करना। पत्नी चाहती है कि मेरे खाने की, कार्य की प्रशंसा करें तभी उसको बनाने में अच्छा लगता है। खीर भी बनाई प्रशंसा सुनने न मिली तो मुँह फुला लेगी, इतना खीर का चावल नहीं फूला उससे ज्यादा उसका मुँह फूल गया, इसलिये प्रशंसा करना जरूरी है, यदि चुपचाप खा लोगे तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी, कुछ न कुछ बोलो, जब भी भोजन करायेगी तब कुछ न कुछ सुनना चाहती है प्रशंसा के दो शब्द न बोलोगे तो उस दिन जानकर खीर में नमक डाल देगी और तुमने कुछ नहीं कहा तो कहेगी-कह नहीं सकते थे इसमें भूल से नमक पड़ गया दूसरी खीर दे देती, यदि कह भी दिया-तो भी कहेगी-हे भगवान् ! खा नहीं सकते थे भूल हो गयी, भूल तो किसी से भी हो सकती है तो भी मुश्किल, मुश्किल तो यह है कि कुछ न कुछ बोलते रहो। किन्तु वृद्ध अवस्था में वह नौन ज्यादा हो या कम ठीक है-ठीक कहते रहो। पत्नी के सामने प्रशंसा करो या न करो, किन्तु बहुरानी के सामने अवश्य करो। माँ के सामने तो प्रशंसा करने की बात ही नहीं है, माँ के सामने तो जो मांगोगे सो मिलेगा, जैसा मांगोगे वैसा मिलेगा, माँ के हाथ की रोटी तो वास्तव में अमृत है, पत्नी के हाथ की रोटी वास्तव में रोटी है, पुत्रवधू के हाथ की रोटी, रोटी नहीं कूड़ा कचरा है, पेट को भरना है, तो अमृत की रोटी तो वही खाता है जो माँ के हाथ की रोटी खाता है इसीलिये साधु जीवन भर सिर्फ रोटी न खाकर अमृत की रोटी खाते है, वो हर दाता को अपनी माँ के समान मानते हैं चाहे आहार देने वाली बालिका आठ साल की ही क्यों न हो, तब भी उस दाता को माँ कहा है इसीलिये साधु जिंदगी भर अमृत की रोटियाँ खाते हैं अमृत ही अमृत मिलता है और जो गृहस्थ जन हैं वे कभी अमृत की रोटियों खाते हैं। कभी वास्तव में रोटियाँ

पत्नी के हाथ की खाते हैं और कभी बहुरानी के हाथ की रोटियाँ 'कम' खाते हैं। झिरकियाँ ज्यादा खाते हैं डाँटफटकार ज्यादा सुनते हैं, तो वह कूड़ा कचरा ही पेट में डाल रहे हैं। तो वृद्ध अवस्था में पहली बात क्या थी नौन। दूसरी बात है 'मौन'-जितना घर में मौन बैठोगे उतना ही तुम्हें सम्मान मिलेगा, और बात-बात पर टोकते रहे चाहे बेटे को या बहु को तुम्हारा बार-बार का टोकना उन्हें अच्छा नहीं लगेगा। तुमने जिन बच्चों को बोलना सिखाया वे ही बच्चे तुम्हें वृद्ध अवस्था में चुप रहना सिखाते हैं, और तुम्हें चुप रहना सीख जाना चाहिये और बच्चों को बाल्यवस्था में बोलना सीख जाना चाहिये। जैसे बच्चों की तोतली वाणी तुम्हें अच्छी लगती थी, ऐसे ही बच्चों को तुम्हारा मौन रहना ज्यादा अच्छा लगता है, बच्चा यदि मौन बैठ जाये तो माँ बाप को अच्छा नहीं लगता, क्यों गुमसुम बैठा है अतः उसे बार-बार मनायेंगे, खिलायेंगे, बुलवायेंगे, कि बेटा कुछ तो कहे ऐसे ही वृद्ध अवस्था में बेटे बहु चाहते हैं कि पिता जी कम से कम बोलें, जब आवश्यकता पड़े हम तभी बोले, वह भी सीमित शब्दों में, तो मौन जितना रखोगे सहजता में उतना तुम्हारा मान-सम्मान होगा, और तुमने ज्यादा अपनी सलाह देना शुरू कर दिया तो बच्चे कहेंगे चुप रहो पिताजी आप बहुत बोलते हो, वे चुप करें उससे पहले ही मौनव्रत ले लो उस मौनव्रत का बहुत फल मिलता है। और नौन (नमक) का त्याग (ऊपर से डालने का) कर दो, हो सकता है ऐसा करने से तुम्हें अनुकूल मिल जाये। तीसरी बात 'कौन' बीच आँगन में खटिया डालकर बैठ जाओगे तो बालक आयेगा ठोकर मारता हुआ चला जायेगा, बहुरानी आयेगी निगाहें फेरकर चली जायेगी बेटा आ रहा है कहीं कुछ फेंक रहा है कहीं कुछ, तो बीच आँगन में तो लातें पड़ती ही रहेंगी, इसीलिये अपनी खाट लेकर एक कोने में बैठ जाओगे तो बहुत शांति मिलेगी लोग पूजागृह की तरह तुम्हारे पास सुबह शाम जायेंगे और सिर झुका लेंगे और बीच आँगन में बैठोगे तो दिन भर लात खाओगे-तो वृद्धावस्था में तीन बातें जरूरी है-'नौन, मौन कौन'

अब आगे चलते हैं-यौवन तो वास्तव में चंचल है, सदा यौवन किसी का नहीं रहा, यह यौवन बड़ा खतरनाक है-यौवन खराब भी होता है अच्छा भी होता है। वैराग्य भावना में पढ़ते भी हैं-

''यह तन पाय महातप कीजे यामें सार यहीं है''

यौवन किसके लिये कहा-**'तप करते यौवन गया'**-तब तो सही है किन्तु तप में नहीं लगाया तो यौवन 'पतन' का कारण है या तो इससे आत्मा का कल्याण करो नहीं तो पतन हो जायेगा। तो यौवन कैसे खराब होता है-

कुयें पर पानी भरने के लिये तीन महिलायें गयीं, एक महिला-द्विज कुल (ब्राह्मण) से थी। दूसरी महिला क्षत्रिय कुल से थी, तीसरी महिला वैश्य कुल से थी, कुयें के पास एक साधु महात्मा

ध्यान लगाये बैठे थे, वे बहुत बड़े तपस्वी, उनकी ख्याति बहुत दूर-दूर तक फैली हुयी थी, वे बोल-बोल कर जाप कर रहे थे, जिनका मन स्थिर नहीं होता उन्हें बोल-बोल कर, कीर्तन करके जाप करना पड़ता है मन स्थिर होता है तो वहाँ पर पुनः शब्दों का काम नहीं चित्त की विशुद्धि, मौन पूर्वक ध्यान कर जाप में मन लग ही जाता है। तो महात्मा जी कुयें के पास जाप चल रहा था-आगे की अच्छी है पीछे की अच्छी है बीच की खराब है वे तीनों पानी भर रही थीं। और उन्होंने सुना, जब वे जाने लगी तब भी वही मंत्र जाप चल रहा तो ब्राह्मण की, वैश्य की स्त्री क्षत्रिय स्त्री को देखने लगी, मुँह बिचकाने लगी देख तुझसे ही कह रहे हैं, जाकर उस क्षत्रिय स्त्री ने मटका उतार कर रखा, पति यदि घर पर होता तो उतारती नहीं सिर पर पटक देती, पति था नहीं सो लेकर खाट कोप भवन में जाकर सो गयी। पति महोदय आये पूछा-क्या हुआ-बोली कुछ नहीं-मुँह फुला कर बैठ गयी। उसे बहुत मनाया किन्तु वह नहीं मानी, उस ठाकुर क्षत्रिय ने कहा तू बता तो सही किसी ने कुछ कह दिया हो तो उसकी जीभ काट दूँ, अंगुली दिखाई हो तो अँगुली तोड़ दूं, कोई और भी दुर्व्यवहार किया हो तो मैं उसे इस लोक से दूसरे लोक में भेज दूँ, बता तो सही बहुत देर तक मनाया तब बड़ी मुश्किल से उसके मुँह से दो बोल फूटे-उस साधु ने सबके सामने मुझसे इतना खराब कह दिया, क्षत्रिय रहता है-मैं अभी देखता हूँ कहाँ का कैसा साधु है। वह गया, पर साधु का तो जाप था अभी भी वही चल रहा था-आगे की अच्छी, पीछे की अच्छी बीच की खराब है, वह बोली देखो-ये अभी भी यही कह रहे हैं मैं बीच में चल रही थी तब भी मुझसे यही कह रहे थे, पूछा-महात्मा जी क्या बात है ? ज्यादा पी ली क्या आज? वे बोले-ज्यादा पी लेता तो मुँह से ये शब्द कैसे निकलते, मैं तो पी रहा हूँ। अरे पीते भी हैं क्या? बोले हाँ बिना पीये तो काम चलता ही नहीं-अरे साधु होकर के पीते हो। दुनिया के लोग पीते हैं सुबह पीते हैं शाम को उतर जाती है मैं तो प्रभु नाम का प्याला पीता हूँ और जब पी लेता हूँ तब ऐसी चढ़ती है कि फिर जिंदगी भर नहीं उतरती है, तो वह भक्ति का प्याला मैं पीता हूँ। महात्मा जी! आपने मेरी पत्नी का अपमान किया है? अरे! तेरी कौन पत्नी? मैं तो उसे जानता ही नहीं-अरे वो पानी भरने आयी थी-कौन पानी भरने आयी न मैंने पानी देखा न कुँआ देखा न तेरी पत्नी देखी-मैं तो अपनी जाप में लगा हुआ हूँ। मतलब ? ये भी क्या कोई जाप होता है-ॐ लगाओ, ह्रीं लगाओ श्रीं, क्लीं ब्लूं ये बीजाक्षर हैं इनकी जाप लगाओ ! आपकी ऐसी कैसी जाप है ? बोले हाँ-मैं अपने मन को समझा रहा हूँ-देख बेटा-आगे की अच्छी पीछे की अच्छी बाल्यअवस्था अच्छी थी और वृद्ध अवस्था अच्छी है, बाल्यअवस्था में व्यक्ति ज्यादा पाप नहीं कर सकता, कोरी सिलेट है, वृद्ध अवस्था में इन्द्रियाँ थक जाती है 'वृद्धानारी ईश्वरी' वृद्ध नारी ईश्वरी का रूप है, साधु के समान है तो आगे की अवस्था जो बाल्य अवस्था है कहते हैं बालक में भगवान का रूप होता है और वृद्ध में कह दिया 'वृद्धानारी ईश्वरी' वृद्ध में ईश्वर का रूप होता

है तो कह दिया-आगे की अच्छी, पीछे की अच्छी और बीच की खराब है। जितने भी दंगे होते हैं जवानी के कारण होते हैं।

एक नेता इलेक्शन में हार गया पूछा-भईया तुम कैसे हार गये-बोला जवानी के कारण, कहा-तुम तो वृद्ध हो 72 साल के। वह बोला-आज तो 72 साल का हूँ किन्तु मेरी जवानी खुरापात से ऐसी रही जिसको याद कर-कर के लोगों ने मुझे वोट नहीं दिया तो बात ये है। जवानी में खुरापात होते हैं वृद्धावस्था में इतने खुरापात नहीं हो पाते, न बाल्यावस्था में, इसलिये मैं अपने मन को समझा रहा हूँ कि तेरी बीच की अवस्था चल रही है इसमें यदि तू साधना कर लेगा। जैसे-सावन भादों क्वार के महीने ये बीच के हैं चैत्र वैसाख ज्येष्ठ आषाढ इनमें खूब खाओ पीयो कोई बात नहीं। पुनः कार्तिक के बाद अगहन, पौष माघ फाल्गुन ठीक है। खूब खाओ पीओ कोई बात नहीं जितना खाओगे सब पच जायेगा बीच के महिने खतरनाक हैं सावन भादों क्वार-इनमें तो भोजन कम करो बहुत सावधानी से यदि दो बार भोजन करते हो तो एक बार करो, एक बार खाते हो तो बीच-बीच में उपवास करते रहो क्योंकि ये बीच के हैं बीच के खराब है इसीलिये नीतिकारों ने कहा हैं-

सावन ब्यारू जब तब कीजे, भादों ब्यारू नाम न लीजे
क्वार मास के दोनों पाक, इन्हें जतन से लीजे काट
जब लग जाये दीवाली कर लो ब्यारू की तैयारी।

तो ये बीच के हैं इन पर सावधानी रखना जरूरी है जब भी रोग फैलते हैं, इस मौसम में प्रायःकर के ज्यादा फैलते हैं तो इसीलिये बीच की अवस्था खराब होती है, छोटा भी ठीक है बड़ा भी ठीक है कई बार बीच वाला पिस जाता है। महानुभाव ! यहाँ तो यह बता रहे थे कि यौवन अवस्था वास्तव में खराब है किन्तु उसके लिये जो यौवन का सदुपयोग करना नहीं जानता है और जो सदुपयोग करना जानता है उसके लिये कोई खराब नहीं है उसके लिये सब अच्छी अवस्था हो सकती है और यौवन अवस्था और ज्यादा अच्छी है, बाल्यवस्था सोने जैसी है, वृद्धावस्था चांदी जैसी और यौवन अवस्था हीरे जैसी। तो महानुभाव ! उसे भी सफल और सार्थक किया जा सकता है, दूसरी बात कही-'धन'

धन भी क्षणिक है, टिकता ही नहीं है, लक्ष्मी को उपमा दी वेश्या की वेश्या कभी एक पुरुष से संतुष्ट नहीं हो सकती, ऐसे ही लक्ष्मी किसी एक के पास ठहरती नहीं है चलती-फिरती रहती है उसका स्वभाव है चलना जैसे नदी का स्वभाव है बहना। हाँ कुछ उपाय ऐसे हैं जिनके माध्यम से लक्ष्मी को स्थिर किया जा सकता है वेश्या को स्थिर किया जा सकता है वह ये कि वेश्या के मनोनुकूल धन रोजाना आता रहे और वेश्या के पास कोई और दूसरा आ ही न पाये तो वेश्या एक में अनुरक्त हो सकती है। जैसे चारुदत्त में आसक्त हो गयी थी वसन्ततिलका। ऐसे ही धन

को स्थिर किया जा सकता है, वह ऐसे स्थिर किया जा सकता है कि चारों तरफ से पुण्य की बाड़ लगा दो तो लक्ष्मी उससे निकल कर नहीं जा सकती, अथवा लक्ष्मी को दान के खाते में बंद कर दो, दान की पेटी में बंद कर दो, दान दे दो तो लक्ष्मी ऐसे बंद हो जाती है जैसे लक्ष्मी के हाथ में हथकड़ी बेड़ी पड़ गयीं हों लक्ष्मी तुम्हें छोड़कर जायेगी ही नहीं नियम से तुम्हारे पास लौटकर के आयेगी, जितना दान देते जाओगे उतनी लक्ष्मी लौट कर तुम्हारे पीछे आती जायेगी। लक्ष्मी तो ऐसी है-

एक व्यक्ति ने लक्ष्मी की 12 साल पूजा की, सुबह शाम आरती उतारता, घंटी बजाता अगरबत्ती लगाता, महालक्ष्मी की जाप करते हुये भी वह लक्ष्मी को पा न सका, तब भी वही रहा नसीब में दो टाईम रोटी भी कभी मिली, कभी नहीं, लक्ष्मी की कृपादृष्टि कभी उसके ऊपर नहीं हुयी। लक्ष्मी कभी पूजा से नहीं आती है लक्ष्मी उसके ऑर्डर से आती है जिसके ऑर्डर पर चलती है। लक्ष्मी धर्म के ऑर्डर पर चलती है, लक्ष्मी धर्म की दासी है, धर्म को पकड़ लो वह धर्म लक्ष्मी को आज्ञा देगा, तो लक्ष्मी तुम्हारे यहाँ दासी बनकर रहेगी, वह तो पुण्य की चेरी है पुण्यात्मा बन जाओ वह तुम्हारी सेवा करेगी और यदि ऐसे ही लक्ष्मी के पैरों को तुम पकड़ लो तो वह लक्ष्मी लात मार कर भाग जायेगी, उसका नाम ही दौलत है। दो लात मारे सो दौलत। इसके पैर न पकड़ो इसकी तो चोटी पकड़ो इसकी चोटी है पुण्य, तो वह तुम्हारे पीछे-पीछे चलेगी। इसका हाथ भी मत पकड़ो छूटा हाथ तो छूटा साथ। तो महानुभाव !

जब 12 साल पूजा की लक्ष्मी नहीं आयी तो अंततोगत्वा अपना घर छोड़ किसी बड़े सेठ के यहाँ पहुँच गया वह सेठ वास्तव में बहुत बड़ा सेठ था खूब दान करता, पुण्य करता पूजा पाठ करता, भावना बहुत अच्छी उसके द्वार से कोई खाली हाथ नहीं जाता, सेठ की भावना बहुत उदार। वह लोगों को उनकी आवश्यकता से ज्यादा ही दे देता था, जब वो ज्यादा देता था, तो उसका भगवान् भी उसको बहुत देता था। तो वह व्यक्ति उस सेठ के यहाँ नौकरी करने लगा वह देखता है सेठ के आंगन में एक पीकदान रखा है वह पीकदान पूरा चांदी का था। सेठ पान खाता था, तो घर में 15-20 पीकदान यहाँ-वहाँ रखे थे वे सभी चांदी के ही थे सेठ उनमें ही थूकता था, उसने देखा कोई है तो नहीं और जाकर पीकदान में लात मारता है और लक्ष्मी के लिये वेश्या शब्द का प्रयोग करते हुये कहा है-यहाँ पर थुकवाने के लिये आ गयी, मैंने 12 साल पूजा की मेरे पास नहीं आयी, सेठ जी ऊपर से बैठकर देख रहे हैं सुन रहे हैं, कि क्या करता है? वे ऊपर से कहते हैं, ये लक्ष्मी ऐसे पूजा करने से नहीं आती है पुण्य करने से आती है, लक्ष्मी की सेवा न करो, जो लक्ष्मी का स्वामी है उस भगवान की पूजा करो लक्ष्मी साथ नहीं छोड़ती, लक्ष्मी की पूजा करो तो इतराती है, लात मारती है, सिर पर पैर रखकर चली जाती है। तो महानुभाव ! सदैव पुण्य कार्य करें। आज के लिए इतना ही आगे कल देखेंगे।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय

सज्जन पे सौ-सौ चले

कल देख रहे थे ''नलिनीदलगत जललव' कुमुदिनी के पत्ते पर पड़ा हुआ जल कब तक ठहरता है इसका कोई विश्वास नहीं कभी भी फिसल सकता है, चिकने घड़े पर पानी की बूंद कब तक ठहरती है कोई भरोसा नहीं आकाश में चमकती बिजली दिखाई तो देती है किन्तु देखते-देखते ही नष्ट हो जाती है। काँच का सामान जब तक चल रहा है तब तक चल रहा है, कभी भी टूट सकता है, मनुष्य की आयु कब पूर्ण हो जाये कहा नहीं जा सकता। ये श्वांस का बटोही कब अंदर बाहर चल रहा है, कब उसका ट्रांसफर हो जाये कुछ नहीं कह सकते। वैराग्य, मौत और ग्राहक ये तीन चीज कही जाती हैं कि इनका कोई भरोसा नहीं कब आ जायें। दुकानदार दुकान खोलकर बैठा है कुछ भरोसा नहीं है कब कौन सा ग्राहक कौन सी वस्तु लेने के लिये आ जाये। मौत का भी भरोसा नहीं कब आ जाये और तीसरी बात वैराग्य का भी कोई भरोसा नहीं-जीवन के किसी भी क्षण में वैराग्य उमड़ सकता है। राग रंग में रंगे हुये महामण्डलेश्वर तीर्थंकर राजा ऋषभदेव अपनी सभा में विराजमान हैं, देवांगनाओं का नृत्य चल रहा है बहुत रागान्वित धर्मकर्म का कोई ख्याल नहीं, वही जीवन का लक्ष्य बन गया है कि बस आनंद से रहो, यही प्रजा महाराज के अधीन है कोई स्वतंत्र नहीं है और उनके संकेत से काम चल रहा है युद्धों की भी आवश्यकता नहीं थी, मानना चाहें तो बाद में जो युद्ध करने का दु:साहस किया अर्ककीर्ति ने वह मान सकते हैं, किन्तु वह दु:साहस ही था मेघेश्वर के साथ।

एक युद्ध भरत और बाहुबली के साथ हुआ था, संभव है तृतीय काल का अंतिम युद्ध भी यही रहा हो और कोई विशेष युद्ध तृतीय काल में नहीं हुये। भगवान ऋषभदेव के शासन में विशेष कोई युद्ध नहीं हुआ, उनके मोक्ष जाने के 3 वर्ष 8 माह 15 दिन के बाद चौथा काल शुरू हो गया था इसीलिये उस काल में युद्ध लगभग नहीं हुये। चक्रवर्ती जब तक शासक रहा तब तक अन्य छोटे-छोटे राजाओं में भी कोई युद्ध नहीं हुयें। एक युद्ध और हुआ था जिसे इतिहास मानता है, जैन दर्शन में कथन है क्वचित् कदाचित् मिलता है, बाहुबलि ने किसी को वचन दिया था, यद्यपि युद्ध तब कहलाता है जब दोनों योद्धा आमने सामने लड़ते है, यदि एक योद्धा कायर होकर भाग जाता है तो उसे युद्ध की संज्ञा नहीं दी जाती सेना तो मरी किन्तु योद्धा स्वयं छिपकर बैठ जाये सेना लड़ती रहे, मरती रहे वह युद्ध, युद्ध नहीं तो यहाँ पर तृतीय काल में युद्ध हुआ भरत बाहुबली के बीच या एक युद्ध जिसे कहें या न कहें मेघेश्वर के साथ जो अर्ककीर्ति ने दु:साहस किया युद्ध करने का, सुलोचना को पाने के लिये। अर्ककीर्ति के मन में अहंकार आ गया था कि मैं चक्रवर्ती का पुत्र हूँ और काशी नरेश की पुत्री सुलोचना मुझे ही प्राप्त होनी चाहिए किन्तु जयमाला जयकुमार के गले में डाली। अर्ककीर्ति को लगा कि मेरा अपमान हो गया, तब युद्ध की भूमिका

तैयार हुयी तब काशी नरेश ने कहा-स्वयंवर की नीति-रीति सभी जानते हैं किन्तु इनका किसी ने उल्लंघन करने का दु:साहस किया तो अच्छा न होगा, इस समाचार को महामानस सम्राट भरत सुनेंगे तो उन्हें शोक होगा, यह सुन अर्ककीर्ति युद्ध से विमुख हुये और मेघेश्वर भी युद्ध के लिये तैयार नहीं हुआ किंतु उसे संतुष्ट करने के लिए अर्ककीर्ति के लिए बनारस की राजकुमारी सुलोचना की छोटी बहन दी। कहने का आशय यह है कि जर जोरू जमीन ये तीन कारण युद्ध के माने जाते हैं-जर में जो फँस गया वो हो गया-जर-जर। वह जीवन में निर्जरा को प्राप्त नहीं होता जरा को प्राप्त होता है। जरा सोचो तुम जर के चक्कर में पड़कर के जर जर हुये जा रहे हो। जरा रूपी पिशाचिनी तुम्हें पकड़ लेती है। जरा नहीं आती तब तक निर्जरा को प्राप्त कर लो। निर्जरा तत्व मोक्ष का साक्षात हेतु है, निर्जरा और मोक्ष के बीच में और कोई दूसरा तत्व नहीं आता इसलिये निर्जरा वही करते हैं जिसके जीवन में जरा नहीं है। जो भी मोक्षगामी जीव है उनके जीवन में कभी जरा नहीं आती, वह निर्जरा करके मोक्ष को प्राप्त कर लेता है और जिसके जीवन में जरा आ गयी वह निर्जरा करके मोक्ष नहीं जा सकता। कभी मोक्षगामी जीव वृद्ध हुआ हो तो बता देना, जो भी मोक्षगामी होते हैं वे वृद्ध नहीं होते उन पर सदैव यौवन रहता है तीर्थंकर की तरह से उनके चेहरे पर कभी झुर्रियाँ नहीं पड़तीं कभी किसी केवली की मूर्ति में झुर्रियाँ देखी हों, आँखे धंसी देखी हों तो बताओ। नहीं केवलज्ञान वही प्राप्त कर सकता है जिसके पास जरा न हो वही निर्जरा करने में समर्थ है।

'निर्गता जरा' जिसका बुढ़ापा भी निकल गया अर्थात् छोड़ दिया बुढ़ापा कभी आयेगा ही नहीं। सामान्य निर्जरा तो संसार का कोई भी प्राणी कर लेता है।

पहली सबके होय नहीं कछु सरै काम तेरा।
दूजी करै जो उद्यम करके मिटे जगत फेरा॥

आ. कुंदकुंद स्वामी ने 'वारसाणुवेक्खा' में कहा भी है-

सा पुण दुविहा णेया, सकाल पक्का तवेण कयमाणा।
चदुगदियाणं पढमा, वय जुत्ताणं हवे विदिया।

वह निर्जरा पुन: दो प्रकार की जानना चाहिए। प्रथम स्वकीय काल में अपना फल दे करके कर्मों का झर जाना अर्थात् सविपाक निर्जरा। द्वितीय तप के द्वारा कर्मों को समय से पहले खिरा देना अर्थात् अविपाक निर्जरा। प्रथम तो चारों गतियों के जीवों में पाई जाती है। तथा दूसरी प्रकार की (अविपाक निर्जरा) अणुव्रत और महाव्रत सहित व्रतियों के जीवन में ही संभव है।

द्वितीय प्रकार की निर्जरा अविपाक है अद्वितीय लोगों के ही होती है, अव्रती के नहीं होती। अव्रती के तो सामान्य निर्जरा सविपाक होती है दूसरी 'पाल विषें माली' जैसे माली आम को

पकाता है ऐसे ही व्रती पुरुषार्थ पूर्वक तपस्या करके कर्मों को जल्दी बुला-बुला कर के निर्जीर्ण करते है कि ऐसी निर्जरा व्रती, महाव्रती संयमी ही कर सकता है। अव्रती के पास वह क्षमता नहीं हैं। कर्म की ऐसी आत्यन्तिक निवृत्ति का क्षय कर सके, वह कर्म को दबा सकता है कर्मों को सहलाता है, पुचकारता है कि हमें कष्ट न दो, बैठे रहो शांति से तुम भी रहो मैं भी रहूँगा किन्तु ये कर्म लातों के देवता बातों से थोड़े ही मानते हैं, जस को तस व्यवहार तो करना ही चाहिये। जस को तस व्यवहार नहीं किया तो तुम नींबू से कहो-कि नींबू महाराज थोड़ा सा रस देना, वो कहेगा ऐसे थोड़े ही न दूँगा, जब तक उस नींबू को कसकर दबायें न तब तक रस बाहर निकल कर न आयेगा, वह तो रस दबाने पर ही देता है। नींबू आमी बनिया-नींबू, आम और बनिया इन तीनों को जब तक कस कर दबाओ नहीं तब तक वह रस थोड़े ही देता है। यदि सहजता से कहा कि सेठ जी कुछ दे दो-तो कहेंगे-मेरे पास कहाँ है कुछ, किन्तु जब इन्कमटैक्स वालों का दबाव पड़ता है तो गड्डी की गड्डियाँ निकलती हैं, जब दबाव पड़ता है तब रस निकलता है वरना रस निकलता ही नहीं, स्वभाव है किसी नीतिकार ने ये बात बताई है ये बात तो सही बात है जब तक अंगुली दबती नहीं तब तक वह चिल्लाना जानता ही नहीं। तो कहने का आशय है व्यक्ति दबाव से देता है किन्तु आचार्य महोदय कह रहे हैं-दबाव से धर्म नहीं होता, धर्म स्वभाव से होता है। धर्म वसीयत में नहीं मिलता है धर्म भीख में नहीं मिलता है धर्म को छीना नहीं जाता है, धर्म आरजू और मिन्नतों से नहीं मिलता। धर्म अभिशाप और वरदान में नहीं मिलता है। धर्म तो चित्त की विशुद्धि से, स्वभाव से प्रकट होता है यह दबाव से प्राप्त नहीं किया जा सकता। तो महानुभाव कहने का आशय ये है कि व्यक्ति जरा आने से पहले निर्जरा की तैयारी कर ले, यत्नपूर्वक कर्मों को क्षय किया जा सकता है। बिना यत्न के हम अनादि काल से कर्मों के हाथ जोड़ते रहे विनती, मिन्नतें करते रहे आरजू करते रहे किन्तु कर्म बिल्कुल पिघले नहीं पत्थर बने रहे। उन कर्मों ने उतना ही ज्यादा हमें रौंदा और जब आत्मा सबल हो गयी एक-एक कर्म को गिराता चला गया, निष्प्राण कर दिया कभी जीवंत न हो पाये, ऐसा करता गया।

आचार्य महाराज कहते हैं इन कर्मों पर दया का भाव करना मूर्खता है, 'शठंशाठ्यं समाचरेत्' शठ के साथ तो शठता का व्यवहार करो यदि यहाँ पर दयालुता, कृपालुता का प्रयोग करोगे तो वह तुम पर हावी हो जायेगा, यदि जमीन पर रखे फावड़े को पैर से हिलाओगे तो वह फावड़ा तुम्हारे पैर पर ही गिरेगा, इसलिये फावड़े को उठाकर बाहर फेंक दो जिससे कि वह आ न सके तुम्हारे पास। ऐसे ही कर्मों को उखाड़कर फेंक दो। कर्मों के पेड़ों को काटना नहीं है, कर्मों के पेड़ों के पत्ते भी नहीं तोड़ना, न फलों को को तोड़ना उन कर्मों के पेड़ों को तो जमीन से उखाड़ना है जहाँ तक रंच मात्र भी जड़ है वहाँ तक उखाड़ना, फिर उस जगह को भी साफ करना है। फिर उस मिट्टी को भी फैला दो, तप जाये मिट्टी गर्म हो जाए कहीं अंश न रह जाये फिर जो गड्ढा

खाली हो गया है उसमें मट्ठा भर दो नमक मिर्ची डाल करके फिर कहीं उसमें दल का अंश भी न रह जाये, तब ये कर्म नया पाठ सीख पायेंगे, तभी आत्मा को मुक्ति मिलेगी। ये कर्म कहेंगे-जिनराज और सिद्धदेव के सामने तो भईया हम जा नहीं सकते उनका नाम सुनते ही कपकपी आ जाती है, वे तो ऐसे अत्याचारी हैं कि हम पर रंचमात्र भी दया नहीं करते। भईया! कर्म तो हैं ही ऐसे। उनके साथ तो ऐसा ही करना पड़ेगा, इन कर्मों ने अनंतबार हमको रुलाया, एक बार तुम कर्म को रुला दो दूसरी बार वे कर्म तुमसे थरथर काँपेंगे। तो महानुभाव हमें निर्जरा करना है, बिना निर्जरा के मुक्ति नहीं है। और निर्जरा युक्ति से नहीं यत्न से होती है। निर्जरा के लिये युक्ति और भुक्ति का त्याग करना पड़ता है, इसके लिये आवश्यकता है भक्ति की और आत्मा की शक्ति की ये दो जिसके पास हैं वही कर्मों की निर्जरा करने में सक्षम हो सकता है।

अकाट्य भक्ति हो, अभेद उत्कृष्ट भक्ति हो, एकीकृत भक्ति हो और एक आत्मा की शक्ति हो, आत्मा की शक्ति से ही निर्जरा होती है। बहुत बड़ा पहलवान हो वह निर्जरा नहीं कर सकता और एक क्षीण काय व्यक्ति भी हो वह योगी निर्जरा कर सकता है। पहलवान भी यदि अपनी आत्मा की शक्ति जागरुक कर ले तो वह भी निर्जरा कर सकता है किन्तु अकेली शरीर की शक्ति निर्जरा नहीं करती, अकेले वचनों की शक्ति निर्जरा नहीं करती, निर्जरा के लिये आत्मा की शक्ति चाहिये ? जो मनोबली हो और मनोबली तो संज्ञी पंचेन्द्रिय ही हो सकता है इसीलिये असंज्ञी पंचेन्द्रिय तो उस मोक्षद्वार पर दस्तक भी नहीं दे सकता है, संज्ञी पंचेन्द्रिय होने पर वह दस्तक देने का अधिकारी है दरवाजा खोल पाये या ना खोल पाये यह उसकी सामर्थ्य की बात है। जिसके पास मन नहीं उसके पास चेतना के कोई गुण प्रकट नहीं हो सकते, पहले मनोबली बनना पड़ता है। जो मनोबली नहीं वह साहस की बात भी नहीं कर सकता जिसका मन उत्कृष्ट है वही हिम्मत कर सकता है। जो होगा सो होगा मैं अपने भाग्य को बदलकर ही रहूँगा। मनोबली कभी समझौता नहीं करता कभी अन्याय सहन नहीं करता। महानुभाव ! निर्जरा प्राप्त करना कोई बच्चों का खेल नहीं, निर्जरा प्राप्त करना बनियों का काम नहीं है, शूद्रों का भी काम नहीं है, ब्राह्मणों का भी काम नहीं है इसके लिये तो क्षत्रियों जैसी सामर्थ्य चाहिये, इसीलिये जितने भी तीर्थंकर रहे सब क्षत्रिय ही रहे, उन्होंने निर्जरा की। वह निर्जरा बिना संयम के असंभव है बिना संयम के तो सविपाक निर्जरा हो सकती है।

तो महानुभाव हम देख रहे थे कि कमल पत्र पर पड़ी बूंद के समान क्षणिक क्या है तो वह यौवन है। यह यौवन दिखता है यह आकाश में दिखने वाली परी की तरह है। यह अप्सरा की तरह दिखने में तो आती है पर पकड़ में नहीं आती, ये तो पारे की तरह से है पकड़ने में नहीं आता पकड़ने के लिये चाहिये आधार, जैसे पारा हाथ में से फिसल जाता है किन्तु किसी बर्तन में रख दिया जाये तो ठहर जाता है। ऐसे ही यौवन को धर्म का आधार मिल जाये तो वह सरक

के नहीं जायेगा, सार्थक हो जायेगा यौवन का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जा सकता। उस यौवन को यदि भोग पात्र में रखोगे तो पूरा यौवन भोगों में चला जायेगा और धर्म पात्र में रखोगे तो वह यौवन पूरा धर्म के लिये समर्पित हो जायेगा, वह धर्म के फल को प्रदान करके ही जायेगा। दूसरी बात कही 'धन'-लक्ष्मी किसी के लिये शाश्वत नहीं रह सकती, जो-जो व्यक्ति पकड़ता है उसकी सम्पत्ति नियम से छूटती है, ऐसा कोई भी व्यक्ति संसार में नहीं रहा जिसने सम्पत्ति को पकड़ा हो और वह नहीं छूटी हो और जिसने छोड़ी है उससे कभी छूटी नहीं है। लक्ष्मी का तो मध्यम भाव से सेवन करो। अगली बात कही 'आयु'-आयु का कोई भरोसा नहीं, किसे पता है कि वह कितने साल जियेगा? यदि कुण्डली से भी देख लिया, हस्त रेखा से भी देख लिया, मस्तक रेखा से भी देख लिया, सामुद्रिक शास्त्र के अकॉर्डिंग देख लिया, सभी प्रकार से देख लिया उसके बावजूद भी कोई अनहोनी घट गयी तो, कुछ नहीं कहा जा सकता। महानुभाव! जब तक आयु है तब तक वायु की तरह दौड़कर काम करो, अन्यथा ये आयु वायु की तरह से कब निकल जायेगी कुछ कह नहीं सकते। युवा यदि पलट के देख ले तो युवा भी वायु की तरह से तीव ग्रामी बन सकता है। युवा का उल्टा करें तो क्या बनेगा-वायु। युवा के पास वह तेज ओज, होश सब कुछ है और युवा चाहे तो वायु को भी रोक सकता है, वह भी युवा के सामने नत मस्तक हो जाती है किन्तु वह पलट कर खड़ा हो जाये, जब तक झुका है वायु उसे दबाकर के चलेगी। आयु वायु की तरह बह रही है, फिसल रही है, इसे रोका नहीं जा सकता, आयु की वायु इस शरीर में से कब निकल जाये, जब नासिका के द्वि छिद्रों से आयु की वायु निकल जाती है तो कोई भी रोकने में समर्थ नहीं रहता है इसलिये इस जीवन पर भी ज्यादा भरोसा नहीं करना है, जीवन का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करना पर ज्यादा भरोसा नहीं करना। यौवन का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करना पर यौवन पर भरोसा नहीं करना, ये वस्तुऐं उपयोग की हैं, उपयोगी है किन्तु भरोसे मंद नहीं है, विश्वास के योग्य नहीं हैं। ये ऐसे बीज हैं जिनके माध्यम से शाश्वत फलों की प्राप्ति की जा सकती है, किन्तु इन बीजों की कोई म्याद नहीं है क्षण भर में भी सड़कर खराब हो सकते हैं, नष्ट हो सकते हैं।

किन्तु आपने जल्दी से बो दिया तो इनके फल आप प्राप्त कर सकते हैं, और नहीं बोया तो, कोई भरोसा नहीं। थोड़ी सी हवा लगते ही ये बीज खराब हो जाते हैं, थोड़ा भी प्रकाश मिले तो सड़ जाते हैं। ऐसे ही यौवन, धन और आयु संसार की थोड़ी हवा लगी तुरंत ही तीनों बीज सड़ जाते हैं, इसीलिये संसार की इन्हें हवा लगे इससे पहले इनका उपयोग कर लो। महानुभाव ! इस प्रकार प्रथम पंक्ति का अर्थ देखा अगली बात कह रहे हैं-**''के शशिधरकर निकरा नुकारिणः सज्जना एव''**

के-कौन-कौन हैं वे **शशिधर**-चन्द्रमा **कर**-किरण **निकर**-समूह चन्द्रमा की शीतल किरणों की तरह से **नुकारिणः** अनुकरण करने वाले। तो बताते हैं **सज्जना**-सज्जन। संसार में हमें किनका अनुकरण करना चाहिये। वह कौन हैं जिनके कदमों पर हम चलें, ऐसा क्या जिनका हम अनुकरण कर सके-सीधी बात कही-सज्जन का ही अनुकरण करो, दुर्जन का अनुकरण नहीं करना चाहिये।

''सज्जन पे सौ-सौ चले दुर्जन चले न एक।
ज्यों जमीन पाषाण की ठोके ठुके न मेक॥

सज्जन पुरुष के साथ तुम्हारी 100-100 बार मित्रता हो सकती है, 100 बार संबंध टूट सकते हैं किन्तु वह सज्जन है तो तुम्हारे साथ दुर्जनता का व्यवहार नहीं करेगा और दुर्जन के साथ कितनी भी सज्जनता दिखाओ वह दुर्जन सज्जनता का परिणाम भी दुर्जनता में देगा। गाय को घास-फूस भी खिलाया है तो भी वह दूध ही देगी और सर्प को दूध भी पिलाया हो तो वह जहर ही उगलेगा। तुम्हारे पास दूध है वह गाय ने तुम्हें उदारता के साथ दिया, अपने बछड़े को नहीं पिलाया तो वह गाय का दूध सर्पों को पिलाने के लिये नहीं है, किसी ऐसे बच्चे को पिलाने के लिये है जिसकी माँ मर गयी है उस गाय के दूध से बच्चा पल सकता है, उसका जीवन आगे चल सकता है। धर्म के मार्ग पर उसका जीवन ढल सकता है गाय का दूध सात्विक होता है, उत्तेजना देने वाला नहीं होता। गाय के दूध में स्वर्ण की मात्रा होती है कपिला गाय तो और श्रेष्ठ मानी जाती है। जो काली कपिला गाय जिसकी पूंछ के बाल जमीन का स्पर्श करें ऐसी कपिला गाय बहुत ही उत्तम मानी जाती है, महानुभाव ! गाय चाहे सामान्य हो तब भी वह दूध पौष्टिक ही देगी, चाहे तुमने उसे घास खिलायी चाहे चारा खिलाया चाहे दाना खिलाया कुछ भी खिलाया। वह उस खल को लेकर भी 'खल' अर्थात् दुष्ट वह गाय खल को लेकर दुष्टों को भी स्वीकार करती हुयी चूमती हुयी, उसे रोंदती नहीं है वह खल को पय बनाकर के देती है। वह खल भी गाय की संगति में मिष्ट पय बन जाता है, ऐसे ही कोई दुष्ट भी साधु की संगति में आ जाये तो वे उस खल को भी निर्मल बना देते हैं, सबल बना देते हैं। वह भी प्रबल हो जाता है, दुर्बल नहीं रहता, उस खल में खलपना नहीं रहता। वह खल भी जल की तरह से तरल हो जाता है अब उसके अंदर का गरल निकल जाता है, वह सरल हो जाता है। कौन ? वह खल कल में परिवर्तित हो जाता है, 'क'-आत्मा 'ल'- लक्ष्मी से शोभायमान हो, वह खल भी आत्मा के गुणों से शोभायमान हो जाता है, कब? जब गईया रूपी संत के सान्निध्य में आ जाये तो। जो हरी घास फूस गाय के अंदर तक पहुँच जाये वह दूध बन सकता है। गाय की पीठ पर रखा चारा दूध में परिवर्तित नहीं होता, गाय की पीठ पर रखी हुयी खली वह दूध नहीं बन सकती, घी नहीं बन सकती किन्तु जो खली, घास, फूस, दाना चारा गाय के उदर में पहुँच जाये तो ही गाय उसे दूध रूप, पनीर रूप, रबड़ी, दही, मावा रूप परिवर्तित कर सकती है। उस दूध में बहुत गुण हैं उस दूध में भी स्वर्ण का अंश आ जाता

है गाय की पाचन शक्ति के साथ, ऐसे ही संतों के सान्निध्य में कल्पवृक्ष की छाया में जो आ गया उसे किमिच्छिक दान अपने आप मिल जाता है। संत रूपी सरिता के तट पर, संत रूपी घाट के पास जो पहुँच गया चाहे संत रूपी सरिता का निर्मल पान करे या न करे, चाहे संत रूपी सरिता में अवगाहन करे या न करे पर संत रूपी सरिता के घाट पर खड़ा भी हो जायेगा तब वहाँ से बहने वाली शीतल हवा शरीर के ताप को तो दूर करेगी ही करेगी, जो थकान भरी है शरीर में, उस को भी दूर करेगी और यदि सरिता में अवगाहन किया तो शरीर पर लगी धूल भी धुलेगी। धूल धुलेगी, धूल धुलने के लिये लगती है न धोये तो वह तो धोबी से भी गया बीता है। धोबी वह जो वीरतापूर्वक धूल को धोने को तैयार हो गया है, वह धोबी है तो धूल तो धोना है, सरिता में अवगाहन करने से शरीर की धूल धुलती है। और माँ जिनवाणी रूपी सरिता में (सांची तो गंगा है यह वीतरागी वाणी) इसमें अवगाहन करने से, संत रूपी सरिता में अवगाहन करने से चित्त में जमी, चेतना में जमीं हुयी ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म की धूल धुल जाती है और मोहनीय कर्म की चिकनाई सरिता में ऐसे ही नहीं धुलती किन्तु थोड़ा सा रगड़ लो तो वह मैल फूल जाता है, वह भी छूट जाता है। जब संत रूपी सरिता में अवगाहन करोगे, रगड़ोगे तब वह स्वयं छूटता है। संत पहले धर्म का उपदेश देकर फुलाता है, फूलो, जो फूलता है वही फलता है, जो फूलता नहीं वह फलता नहीं, हाँ ऐसा तो हो सकता है कि दुष्ट व्यक्ति पहले फूल जाये बाद में फले। जैसे-किसी व्यसनी ने इस भव में तो महाराज का उपदेश सुन लिया यहाँ तो सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया, किन्तु नरक में जाकर सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया, आज फूला कल फला, बबूल की तरह से बबूल पर फूल आते हैं सावन के महीने में, ''सावन फूले चैत फलें'' बबूल के पेड़ में फल लगते है चैत्र के महीने में छः महीने बाद यहाँ फूलता है वहाँ फलता है।

''सावन फूले चैत फलें झूठी साख बबूल बड़ी''

बबूल की ऐसी विशेषता होती है। ऐसे ही दुष्ट व्यक्ति हो सकता है महाराज ने आज उपदेश दिया समझ नहीं आया, हो सकता है घर जाकर समझ में आ जाये हो सकता है छः माह में समझ आ जाये, हो सकता है ठोकर लगे तब समझ में आ जाये। जैसे नारकी जीव को जब अन्य नारकी जीव कष्ट देते हैं तब समझ में आता है याद आता है महाराज ने कहा था-बेटा शराब न पी वह बहुत खराब होती है शराब का शर बहुत नुकीला होता है। बेटा ! खण्डे की चोट से तो तू बच जायेगा किन्तु अण्डे की चोट से न बचेगा, अण्डा न खा समझाया था, यदि माँ की अवहेलना की है तो माँ क्षमा कर देगी, किन्तु माँस खाया वह तो तेरा माँस सैकड़ों बार हजारों बार, असंख्यातों बार नरक में काटा जायेगा, इसलिये बहुत समझाया था महाराज ने उस वक्त तो समझ में नहीं आया किन्तु अब जब घानी में पेला जा रहा है तब समझ आया और वहाँ पर सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया। तो फूलने पर फल तो आते हैं, मैं समझता हूँ उपदेश साधु का कभी व्यर्थ नहीं जाता

एक शब्द भी बोला है तो वह एक शब्द भी सार्थक है वह शब्द किसी के जीवन में आज प्रभाव दिखा रहा है, किसी के जीवन में प्रभाव कल दिखाई देगा, किसी के जीवन में चार महीने बाद, किसी के जीवन में चार भव के बाद। किन्तु दिखाई तो अवश्य देगा, ऐसा नहीं है कि शक्कर खाओ मुँह मीठा नहीं हो, ऐसा नहीं कि नमक खाओ तो मुँह खारा न हो। संसार के पौद्गलिक पदार्थ अपना प्रभाव दिखाते हैं। हम जिनेन्द्र भगवान की वाणी को आपके सामने सुना रहे हैं वे शब्द निरर्थक नहीं जायेंगे ये बात बिल्कुल पक्की है, कहीं न कहीं उनका प्रभाव तो रहेगा, आज नहीं तो कल होगा। ये बाण ऐसे बाण हैं विष के भरे बाण ये मिथ्यात्व और मोह को नष्ट करके ही रहेंगे और जो इन बाणों को सहन कर लेगा उसके जीवन में मिथ्यात्व अज्ञान असंयम रहेगा नहीं और सहन नहीं कर पायेगा तो तिलमिला कर उठकर चला जायेगा, दूसरे तीसरे दिन सभा में ही नहीं आयेगा। तो बात यह है कि इस मोहनीय कर्म को धोने की बात कह रहे थे इस संत रूपी सरिता में अवगाहन कर पहले मैल को फुलाओ, पहले बीज को फुलाना पड़ता है तब अंकुरित होता है ऐसे ही मैल को पहले थोड़ा फुलाओ फिर रगड़ो मोहनीय कर्म की चिकनाई जो आत्मा पर लगी है वह भी उतर जायेगी ज्ञानावरण, दर्शनावरण की धूल तो वैसे ही हट जायेगी, और फिर अन्तराय का रूप वह तो पंगु है लंगड़ा लूला सा है वह तो घबराकर के अपने आप भाग जायेगा, जमीन पर धड़ाम से गिर जायेगा वह कहेगा मैं जाता हूँ जब मेरे तीनों अभिन्न मित्र ही चले गये मैं अब कैसे टिक सकता हूँ। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय जब चार नहीं हैं तो अन्य कर्म कहते हैं जब तूने हमारे राजाओं को ही मार दिया तो राजा के समीप रहने वाले वे उनके अभिन्न मित्र और जो सेनापति के रूप में थे, धराशाही हो जाते हैं। मिथ्यात्व मोह रूपी राजा को मार दिया युवराज-सम्यक्मिथ्यात्व को भी मार दिया और सम्यक् प्रकृति भी अंतिम श्वांस गिन रही है। तो बस सब मर ही गये, वंश ही जब निर्वंश कर दिया तो अब हम भी जाते हैं अंतिम प्रयाण करके अघातिया कर्म भी चले जाते हैं। तो संत रूपी सरिता में अवगाहन करने से न तो केवल रज अपितु रहस और कालिख मोह की जो पड़ी है ये सब शांत हो जाते हैं।

तो महानुभाव ! यहाँ कह रहे-सज्जन पुरुष का अनुकरण करना चाहिये, कैसे भी करो। **''सत्संगः स्वर्गवासिनः''** सत्संग में बैठने से स्वर्ग जैसा आनंद मिलता है, यदि तुम्हें घर में स्वर्ग जैसा आनंद मिल रहा हो तो न आओ, और यदि तुम्हें बिना पैसे के एक-दो घंटे के लिये यहाँ स्वर्ग जैसा आनंद मिलता है तो सौ-कामों, हजार कामों को छोड़ दो क्योंकि आचार्यों ने लिखा, चाणक्य ने भी लिखा ''सत्संगः स्वर्गवासिनः'' सत्संग में यदि जीते जी स्वर्ग देखना चाहते हो, मरने पर तो स्वर्ग कोई भी देख सकता है किन्तु जीते जी स्वर्ग देखना चाहते हो तो वह संत के चरणों में, गुरु के चरणों में मिलेगा, प्रभु के चरणों में भी नहीं मिलेगा। जीते जी सत्संग में स्वर्ग सा आनंद मिलता है तो यहाँ कहा-'सज्जना एव' सज्जन पुरुषों का ही अनुकरण करना चाहिये,

दुर्जन पुरुषों का नहीं। ये ध्यान रखना और कान खोल कर सुनना कि, दुर्जन व्यक्ति आकर चरणों में माथा भी रख सकता है, तुम्हारी पूजा भी कर सकता है, प्रशंसा भी कर सकता है, वह लोभ लालच भी दे सकता है किन्तु कभी दुर्जन की बातों में नहीं आना। हमें सज्जनता की राह पर चलना है, धर्म के मार्ग पर चलना है। चाहे धर्म के मार्ग पर चलते-चलते हमारा कोई तिरस्कार ही क्यों न करे, धर्म के लिये चाहे हमें अपमान ही क्यों न सहन करना पड़े धर्म के लिये धन भी जाये तो चला जाये, तन भी चला जाये तो चला जाये, मन भी जाये तो चला जाये सब कुछ चला जाये किन्तु हम धर्म के साथ हैं, नीतिकारों ने कहा-

धन दे तन को राखिये तन दे रखिये लाज।
धन दे तन दे लाज दे एक धर्म के काज॥

यदि धर्म के लिये आवश्यकता पड़ जाये तो मन भी समर्पित, तन भी समर्पित। तुम्हारी प्रतिष्ठा जैन धर्म से है। जिन धर्म है तो हम हैं नहीं तो हम कहाँ ? उस जिनधर्म के बिना कोई चक्रवर्ती भी बन जाये तो वह चक्रवर्ती भी निन्द्य है।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेत् चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासितः॥

हे जिनेंद्र देव ! मैं जिनधर्म से रहित होकर चक्रवर्ती का पद भी नहीं चाहता और स्वर्ग की संपदा भी नहीं। किन्तु जिनधर्म के साथ मुझे दासी पुत्र या दरिद्र होना भी स्वीकार है। जिनधर्म के साथ यदि शूकर भी हो, चाण्डाल भी हो तो वह सम्मानीय है ऐसा आ. समन्तभद्र स्वामी ने कहा है। यदि वह देशव्रती भी बन गया तो क्षायिक सम्यक्दृष्टि के द्वारा पूज्यनीय है। यदि वह देशव्रती है तो वह भी पूज्यनीय है, वह देशव्रती सिंह, हाथी भी पूज्यनीय हो सकता है। आचार्य समंतभद्र स्वामी ने कहा-

''श्वापिदेवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्''

धर्म का साथ कर लिया तो श्वान भी देवों का देव बन गया, पूज्यनीय हो गया और यदि धर्म को छोड़ दिया तो सौधर्म स्वर्ग आदि के देव भी श्वान हो सकते हैं, एकेन्द्रिय तक हो सकते हैं। तो महानुभाव ! आत्मा में पूज्यता आती है धर्म के माध्यम से। तो जीवन में यदि संग करना है तो सज्जन पुरुष का करें, दुर्जन का नहीं।

''उत्तम शिक्षा लीजिये जगत नीच में होय।
परोअपावन ठोर पर, कंचन तजे न कोय॥

यदि सोने का सिक्का तुम्हें यहाँ नाली पर पड़ा मिल जाये तो छोड़ दोगे क्या ? वह सिक्का उठा लोगे, नाली में पड़ा है तो कोई बात नहीं। यदि कोई हीरा पड़ा हो, उसकी कीमत यदि 10-5

करोड़ है तो, तुमसे कोई व्यक्ति कह दे मेरा हीरा गिर गया है तुम उठा लो तो तुम नाली तो क्या नाले में भी होगा तो डूब जाओगे।

ऐसे ही नीतिकार कहते हैं-यदि अच्छी शिक्षा नीच व्यक्ति से भी मिलती है तो प्राप्त कर लो। यदि अपावन स्थान पर कंचन पड़ा है तो व्यक्ति छोड़ता नहीं है, उत्तम शिक्षा प्राप्त करने के लिये, धर्म को प्राप्त करने के लिये, सत्संग को प्राप्त करने के लिये तुम्हें जगह न मिले जहाँ जूते चप्पल उतारे जाते है वहाँ बैठकर के तुम्हें धर्म की बात सुनने का अवसर मिल रहा है तो वहीं सुन लो, और कहीं दुर्जन की सभा में न जाओ। दुर्जन की सभा में जाने का परिणाम दु:ख, दुष्टता और दुर्गति और सज्जन पुरुष की सभा में आ गये यदि सज्जन व्यक्ति सौधर्म इन्द्र बनता है तो तुम सौधर्मइन्द्र की सभा के व्यक्ति बन गये। यदि वह तीर्थंकर बनता है तो तुम तीर्थंकर की सभा के एक मार्मिक पुरुष बन गये। तो महानुभाव यहाँ पर कह रहे हैं ''के शशि धर कर निकरा नुकारिण: सज्जना एव'' सज्जन पुरुष का ही अनुकरण करना चाहिये, सज्जन पुरुषों का अनुकरण ही चन्द्रमा की किरणों की शीतलता के समान शीतलता प्रदान करता है।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

नवग्रह का जनक-परिग्रह

को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसंग विरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं किं प्रेयः प्राणिनामसवः॥१३॥

को नरकः-नरक क्या है ? **परवशता**-पराधीनता ही नरक है, ''पराधीन सपने हु सुखनाहिं, कर विचार देखो मन माहिं'' दूसरी बात कह रहे-

किं सौख्यं-सुख क्या है? **सर्वसंग विरतिर्या**-सर्वपरिग्रह का त्याग ही सुख है परिग्रह ही दुःख है **किं सत्यं**-सत्य क्या है ? **भूतहितं**-प्राणियों का हित ही सत्य है **किं प्रेयः**-प्रिय क्या है? **प्राणिनामसवः**-प्रत्येक प्राणी को अपने प्राण ही प्रिय हैं। ये चार प्रश्न चार उत्तर दिये।

नरक-जहाँ नारकी जीव रहते हैं आपस में लड़ते-झगड़ते रहते है। उनका 24 घण्टे मारपीट डे रहता है आपके यहाँ मार्किट डे। वहाँ मार काट दिनभर चलती है, यहाँ मारकाट भावों से चलती है। वहाँ पर एक क्षण की फुर्सत नहीं, जैसे यहाँ दुकानदार कहते हैं कि मरने की फुर्सत नहीं।

''काम दो कोड़ी का नहीं और फुर्सत एक मिनट की नहीं।''

को नरकः-पराधीनता / परवशता ही नरक है। पराधीनता वह कहलाती है जो हमारे मन के अनुकूल नहीं है, उसकी आधीनता पराधीनता है। पराधीनता वह है जिसकी आप पराधीनता स्वीकार नहीं करना चाहते हैं। जिसकी पराधीनता आप स्वीकार करना चाहते हैं वह पराधीनता नहीं है। योग्य शासक वह होता है जो आत्मानुशासन करे, जिसने अपनी आत्मा को, इन्द्रियों को अपने अधीन कर लिया है ऐसे व्यक्ति के शासन में सब रहना चाहते है। जिन शासन जिनेन्द्र भगवान के शासन में आप और हम रहना चाहते है, क्योंकि वे हमारे ऊपर शासन नहीं करते, वे हमें अनुशासित नहीं करते हैं। उन्होंने स्वयं को अनुशासित किया, उन्हें देखकर हम अनुशासित होते हैं, उनकी आज्ञा का पालन कर सकते हैं। जो स्वयं अनुशासित नहीं है, वह दूसरों पर शासन करना चाहता है ऐसे व्यक्ति की आधीनता खलती है, चुभती है। स्वयं तो मर्यादा का पालन नहीं कर रहे, अपने अधिकार का दुरुपयोग कर रहे हैं। किन्तु दूसरों पर इतना कठिन अनुशासन रखा जा रहा है कि व्यक्ति तिलमिला जाता है। वह कहता है इसके शासन से तो हम ऐसे ही ठीक हैं, इस दुष्ट व्यक्ति की संगति से तो हम यूँ ही भले है। इसलिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचरित मानस में लिखा-**''दुष्ट संग नहिं देय विधाता यासे भलो नरक का वासा''** हे भगवान् ! दुष्ट की संगति न मिले वे तो इतना तक कह रहे हैं कि केवल दुष्ट की अधीनता ही नहीं यदि दुष्ट व्यक्ति आकर मेरे अधीन रहे तो भी उसकी संगति न चाहिये। यदि दुष्ट मालिक है तो भी खतरनाक है और दुष्ट नौकर है तब भी खतरनाक है, दुष्ट कोई भी हो उसका मेल शिष्ट के साथ बैठेगा नहीं।

कह रहीम कैसे निभे बेर-केर को संग।
वे डोलत रस आपने उनके फाड़त अंग॥

'बेर' माने बबूल कांटेदार पेड़ जिसमें बबूल की तरह कांटे होते हैं। और 'केर' माने केले के पत्ते दोनों के पेड़ आस-पास में हो तो कैसे चले। जब हवा चलेगी तो केले के लम्बे-लम्बे पत्ते हिलेंगे बैर के कांटे उन पत्तों को तार-तार कर देंगे, बेशक संग नहीं निभ सकता तो ऐसे ही दुष्ट और शिष्ट एक संग कैसे रहें कालान्तर में या तो शिष्ट भी दुष्ट बन जायेगा या दुष्ट को शिष्ट बनना पड़ेगा दोनों से एक का तो परिवर्तन होगा, और जब तक दोनों की शक्ति एक समान है तब तो कोई किसी को बदल न पायेगा। जब उपसर्ग सहने वाला सहता जाये-भगवान पार्श्वनाथ की तरह से उस कमठ की दस भव में सर्व भड़ास जब निकल गयी तब कमठ चरणों में गिर गया तब धरणेन्द्र-पद्मावती ने उपसर्ग को दूर किया। कमठ सुधर गया। तो या तो दुष्ट सुधर जाये। लेकिन कब ? जब अंदर की सब गुस्सा निकल जाये। पूरी गुस्सा निकल जाये तो निष्क्रोध हो जाता है। जो पूरी गुस्सा नहीं निकालता है बनिया की तरह थोड़ी-थोड़ी निकालता है, तब वह कभी जीवन में निष्क्रोधी के समान नहीं हो पाता। क्षत्रिय निकालता है तो पूरी गुस्सा निकालता है छोड़ता नहीं, मान करेगा तो पूरा, मायाचारी ऐसी कि कोई पकड़ ही न पाये, क्षत्रिय कहता है या तो शत्रु को मार कर आऊँगा या मर कर आऊँगा तो क्षत्रिय में ही ऐसा क्रोध हो सकता है। ऐसा शूद्र वैश्य या ब्राह्मण का नहीं हो सकता। कहने का आशय है जब व्यक्ति पूरा खाली हो जाये तभी क्षमा कर सकता है।

तो दुष्ट व्यक्ति दुष्टता का प्रयोग करता है। यहाँ कह रहे हैं-नरक क्या है-यदि घर में सास बहू रहती हैं आपस में प्रेम नहीं है तो नरक है, पिता पुत्र रहते हैं प्रेम नहीं है तो नरक है, भाई-भाई रहते हैं प्रेम नहीं है नरक है, छः माह तक एक दूसरे से बोले नहीं अनंतानुबंधी कषाय बंध गयी वह नरक के समान होती है अनंत संसार का कारण है। यदि कभी कोई बात भी हो जाये तो बोलना मत बंद करो, जब तक तुम्हारे मुँह में बोली है तब तक बोलना बंद मत करो, बोलते रहोगे तो संभावना है वह कषाय की गाँठ ज्यादा मोटी नहीं होगी, वह बैर की धूल ज्यादा नहीं जमेगी गंदगी जम नहीं पायेगी बोलते रहो, आज नहीं कल तुम्हारी कषाय मंद होगी, वह धुल जायेगी यदि तुम नहीं बोलोगे तो गाँठ मोटी होती चली जायेगी फिर दुबारा कभी बोलने का साहस ही न करोगे इसीलिये आपस में ऐसा बैर मत बांधो, कोई ऐसा भाव न रखो नहीं तो घर में जीते जी नरक हो जायेगा, और जो यहाँ जीते जी नरक का अनुभव कर रहा है परलोक में क्या स्वर्ग में जायेगा ? क्योंकि आयु कर्म के बंध के समय व्यक्ति के जैसे परिणाम होते हैं और जैसे परिणाम मृत्यु के समय होते हैं वही परिणाम उसके जीवन में आता है। नियम से आता है, मरण के समय अच्छे परिणाम हों तो गति नियम से अच्छी ही होगी, यदि आयु बंध के समय परिणाम खराब हैं, तो

मृत्यु के समय भी खराब होगें और पुनः आगे भी वही परिणाम। जीवन कैसे जीया है? यदि जीवन 'जी' लगाकर जीया है तब निःसंदेह मानिये जी लगाकर मीठी वाणी बोली है और सरल सहज चित्त रहा हो तो उसे कोई स्वर्ग में जाने से रोक नहीं सकता और जिसने जी नहीं लगाया, लगाया भी तो मायाचारी से, स्वार्थ सिद्धि के लिये लगाया, नहीं तो फटकार दिया अपने स्वार्थ के लिये जी हजूरी की, चापलूसी करता रहा तो तिर्यंच आयु का बंध होगा। यदि अल्प आरंभ परिग्रह के साथ जीया है, तो मनुष्य आयु का बंध कर लेगा और कषाय के साथ जीया हो तो नरकायु का बंध करेगा। वह धर्म के प्रति आस्थावान है तो स्वर्ग में जाने से कोई रोक नहीं सकता। यदि वह धर्म के प्रति उदासीन है किन्तु परिग्रह में ज्यादा आसक्त नहीं है और उसका व्यवहार सबके प्रति ठीक है। जो सबके प्रति अच्छा व्यवहार करता है वह देवगति का अधिकारी है, जो सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार करता है तो मनुष्य गति का अधिकारी, जो सबके प्रति पात्र के अनुसार नहीं अपने स्वार्थ के अनुसार मायाचारी से युक्त व्यवहार करता है वह तिर्यंचगति का अधिकारी और जो सबके प्रति बुरा ही व्यवहार करता है वह नरकगति जाने का अधिकारी है। जिसके मुख से शब्द ऐसे निकलते हैं कि मैं तुझे छोडूँगा नहीं, तेरे टुकड़े-टुकड़े करके ही रहूँगा, मैं तुझे चीर दूँगा-फाड़ दूँगा ऐसे शब्द जिसके मुख से निकलते हैं क्रोध में आकर के, तो समझ लेना कि वह जीव या तो नरक से निकल कर आया है या नरक आयु का बंध कर लिया है तो नियम से नरक में जायेगा, अन्यथा ऐसे शब्द उसके मुंह से निकल नहीं सकते। जिसके मुँह से अच्छे शब्द निकल रहे हैं या तो वह स्वर्ग से आया है या स्वर्ग में जाने वाला है। जो सबके प्रति अच्छे बुरे शब्दों का प्रयोग पात्र के अनुसार करता है संभावना ये है कि वह मनुष्य गति में जा सकता है। और जिसके मुँह से मायाचारी से युक्त वचन निकलते हैं कभी मीठे कभी कड़वे पर हैं मायाचारी से युक्त अपनी वस्तु को छोड़कर दूसरे की ओर निगाह रख रहा है तो समझो वह मायाचारी करने वाला तिर्यंच आयु का बंध करेगा। तो महानुभाव ! यहाँ कह रहे हैं-को नरकः-नरक क्या है ?

इस मध्यलोक के नीचे सात नरक हैं वे ही सिर्फ नरक नहीं है यहाँ पर भी नरक है। कल किसी ने पूछा था क्या धरती पर भी नरक स्वर्ग है ? हाँ यहाँ पर तो सिर्फ ट्रेलर है पूरी फिल्म तो नीचे है। यदि सास बहू आपस में लड़ रही है। कहने में कोई चूक नहीं रही समझ लेना वे ट्रायल दे रहीं है नरक में जाने का। यदि आपस में सास-बहू माँ बेटी की तरह से रह रही हैं दोनों का प्रेम एक दूसरे पर उमड़ रहा है। तो समझो ये ट्रायल है स्वर्ग का। तो नरक-स्वर्ग की यहाँ पर एक क्लिप दिखा रहे हैं आपको, यहाँ पर तो इनडैक्स है पूरी पुस्तक तो वहाँ जाकर पढ़नी पड़ेगी। तो महानुभाव ! पराधीनता ही नरक है कौन सी पराधीनता-जिसकी आधीनता हम चाहते नहीं उसकी आधीनता। चाहे कर्मों की आधीनता हो, चाहे मनुष्यों की आधीनता में रह रहे हो अथवा किसी राजा या सम्राट की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी है वही सबसे बड़ा नरक है।

कई बार राजा लोग युद्ध करते-करते हार जाते थे तो दूसरा राजा बंदी बनाने आता था उसके पहले ही अस्त्र-शस्त्र छोड़कर, आभूषण उतार कर केंशलोंच कर लेते आधीनता स्वीकार नहीं है बस कर्मों की अधीनता से भी मुक्त होकर मोक्ष का राज्य प्राप्त करेंगे अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे। लौटकर राज्य का मुख भी नहीं देखते।

कुंभकर्ण और इंद्रजीत को राम पक्ष ने जब बंदी बनाया था। रावण मृत्यु को प्राप्त हो गया, जब उन्हें छोड़ा भी गया तो लौट कर लंका नहीं गये सीधे जाकर दीक्षा ले ली। तो मनस्वी व्यक्ति जो होता है वह आधीनता नहीं चाहता चाहे वह अपने जीवन को कहीं सन्यास के साथ व्यतीत कर दे, आत्मघात भी नहीं करता, आत्मघात तो कायरता का प्रतीक है। मनस्वी कायर नहीं हो सकता वह तो डटकर के सामना करता है कर्मों का। ये बात भी सही है मनस्वी व्यक्ति उस पुष्प की तरह होता है जो पुष्प जंगल में खिला है या तो किसी राजा के सिर पर धारण किया जायेगा या किसी प्रभु देवता के चरणों में रहेगा, किन्तु वह पुष्प जंगल में बिखरना स्वीकार नहीं करता, किसी मुर्दे पर चढ़ना स्वीकार नहीं कर सकता है। मनस्वी व्यक्ति भीष्म पितामह की तरह से संघर्षों का सामना तो कर सकता है पर किसी की दीनता दासता स्वीकार नहीं करता। तो महानुभाव मनस्वी व्यक्ति स्वाधीन होता है यदि नहीं होता है तो होने के रास्ते पर चलता है किन्तु पराधीनता स्वीकार नहीं करता। अगली बात-

किं सौख्यं-सुख क्या है ? **सर्व संग विरतिर्या**-जिसके जीवन में सम्पूर्ण परिग्रह से विरक्ति हो गयी है वही सबसे बड़ा सुख है। विरक्ति सुख है, आसक्ति दु:ख है चाहे एक अणु के प्रति ही आसक्ति क्यों न हो तो वह दु:ख है और चाहे तीन लोक की सर्व सम्पत्ति से विरक्ति है तो सुख है, इसीलिये आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी मुनियों को डांटते हुये कहते हैं-

रे मुने तूने सब कुछ छोड़ दिया यदि तेरी आसक्ति बाल के अग्रभाग में भी है देख सावधान हो जा, इतनी सी भी आसक्ति रखेगा तो नरक-निगोद में चला जायेगा, इतना तेज डांट दिया-छोड़ आसक्ति को ये आसक्ति ही संसार है तू चाहे मुनि बन गया पर चित्त में से आसक्ति नहीं गयी तो तेरा मुनि बनना बेकार है, ढोंग है इतना डांट फटकार के जैसे माँ अपने बेटे को डांटती है।

और कहती है तुझसे अच्छा तो गधा है गधा। आचार्य भगवन् कहते है एक परमाणु के प्रति भी आसक्ति होना तुम्हारी गलत धारण है क्योंकि एक परमाणु भी तुम्हारा नहीं हो सकता। कोई श्रमण, मुनि एक परमाणु के प्रति भी आसक्त है तो आ. कुन्दकुन्द स्वामी उसे बड़ी बुरी तरह डांटते हैं कि तू इसमें अटक कर रह गया धिक्कार है तेरे लिये तुझसे अच्छा तो पशु है तू तो ऐसा है, वैसा है क्या कुन्दकुन्द आचार्य नहीं जानते कि पशु कभी साधु मुनि से अच्छा हो सकता है? लेकिन डांटते हैं, माँ भी डाटती है बेटे को-तू तो नहीं होता तो अच्छा किन्तु ऐसा है नहीं यह तो

डाँटने की भाषा है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने मुनियों को ऐसा डांटा है कि जितने भी बुरे से बुरे शब्द मिल सकते थे खूब कहे, क्यों ? क्योंकि जिससे चुभें, चुभेंगे तो मुनि की गलती निकलेगी। इसलिये अष्ट पाहुड़, मूलाचार संहिता जैसे ग्रंथ श्रावक एवं प्रारंभिक या अल्पज्ञ साधु को पढ़ने की आज्ञा नहीं।

तो महानुभाव ! सर्वसंगविरतिर्या-संग ही दु:ख का कारण है संग अर्थात् परिग्रह-ग्रह कितने होते हैं-9 होते हैं। और 88 भी होते है। 9 ग्रह मुख्यरूप से लिये जाते हैं एक चन्द्रमा के परिवार में 28 नक्षत्र होते हैं, एक सूर्य होता है। 66975 कोड़ाकोड़ी तारे होते हैं इतने उस परिवार में रहते है। किन्तु नौ ग्रह जो वर्तमान काल में देखे जाते हैं जिसे मुख्यता दी जाती है कुण्डली बनाते समय जो नौ ग्रह की स्थापना करते हैं। उनमें कुछ ग्रह अच्छे भी माने जाते है कुछ बुरे भी माने जाते है। बुरे ग्रह बुरा फल देते हैं, अच्छे ग्रह अच्छे फल देते हैं। अच्छे ग्रह बुरे स्थान पर बैठ जायें तो अच्छा फल देने में असमर्थ होते हैं तो उन्हें अच्छा बनाया जाता है, उन्हें संतुष्ट किया जाता है। आ. कहते हैं ये नौ ग्रह मिलकर इतनी पीड़ा नहीं दे सकते जितनी पीड़ा एक ग्रह दे सकता है। कौन सा ग्रह 'परिग्रह' जो परिग्रह के जाल में फंसा हुआ है ऐसा व्यक्ति जीवन में नौग्रह की पीड़ा से मुक्त नहीं हो सकता, दशवाँ ग्रह नीतिकारों ने माना है 'दामाद'।

''जमादा दशमो ग्रह: कन्या राशि स्थित:'' जमाता को दशवाँ ग्रह माना है नीतिकारों ने कहा जो कन्या राशि पर स्थित रहता है।

धर्माचार्यों ने परिग्रह को दशवाँ ग्रह माना है, जो नौ ग्रहों का बाप है उन्होंने कहा-जिसके पास 9 ग्रह है वे दु:ख देते हैं जो परिग्रह से रहित हो गया उसे कौन क्या दु:ख देगा।

अगुना सगुना बेगिने जिनका रिद्ध न सिद्ध।
यति मुनि ऋषि अनगार जो चाले तब सिद्ध॥

जो यति हैं, निर्ग्रंथ हैं, दिगम्बर साधु हैं उनको क्या है ? उनको कोई परवाह नहीं है, व्यक्ति घबराता वही है जब वह अपने कर्त्तव्य की चोरी करता है जो कर्त्तव्यलीन है तो जो होगा सो होगा। यहाँ पर महोदय जोर दे रहे हैं-कि परिग्रह की कीचड़ में डूबा हुआ व्यक्ति ही दु:खी रहता है, चाहे उसके साथ कितने भी सुख हो जायें वह परिग्रह वाला दु:ख वह ग्रह उसे सबसे ज्यादा दु:ख देने वाला है। तो ''सर्वसंगविरति'' सम्पूर्ण परिग्रह से विरक्ति ये ही वास्तव में सुख है सम्पूर्ण परिग्रह से विरक्ति होगी फिर त्याग का संकल्प लिया जाता है कहीं ऐसा नहीं हो विरक्ति का भाव बदल कर आसक्ति में हो जाये यदि किसी वस्तु से तुम्हें विरक्ति हो गयी तो साथ के साथ संकल्प ले लो कि इसका मैं सेवन नहीं करूँगा तो तुम्हारा नियम पल जायेगा, फिर उसके प्रति भाव नहीं बनेगा, तुम्हें विरक्ति हुयी पुन: आसक्ति हो जाती है। शमशान में जाते हो-क्या कहते हो-संसार

में कुछ भी नहीं है क्षण-भर का भरोसा नहीं है देखते-देखते वह चला गया। इससे आपको शमशान में वैराग्य हो जाता है, यदि शमशान में कोई मुनि महाराज मिल जायें, (पहले तो मुनिमहाराज श्मशान में ही रहते थे) आने दो, इसको केशलोंच जल्दी करो नहीं तो घर जायेगा इसके विरक्ति के परिणाम धुल जायेंगें ये जाते ही सीधा नहा लेता है, तो इसलिये मुनिमहाराज अब मंदिर में बैठते है। शमशान में क्यों रहते थे तो वे कहते-तेरे परिणाम घर जाकर धुल जायेंगे, वैराग्य के भाव टिक न पायेंगे। यदि शमशान में हो तो जैसे ही वैराग्य हो-कहेंगें संसार में कुछ भी नहीं है तो मुनिमहाराज कहते ठीक कहते हो फिर जल्दी आओ लोंच मैं करता हूँ श्मशान की राख रखी है ही कोई बात नहीं पिच्छी कमण्डल आ जायेगा जब तुम्हारे घर वाले आयेंगे तब दिलवा देंगे। तो बात ये है कि विरक्ति का भाव जब आता है तब विरक्ति के साथ ही संकल्प होता है फिर आसक्ति नहीं होती और विरक्ति के साथ जब नियम नहीं लेता है, संकल्प नहीं लेता तो उसके प्रति पुनः आसक्ति हो जाती है। आपके जीवन में भी सैकड़ों बार विरक्ति के भाव बने होंगें किन्तु वे स्थिरता को प्राप्त नहीं होते। यदि उस भाव के साथ तुम संकल्प ले लेते हो तो वे भाव लौटकर नहीं जाते लौटकर जाते तो तुम दृढ़ हो जाते और अपना मुख ही मोड़ लिया तो फिर तो कोई बात ही नहीं। तो महानुभाव जो कहता है मैंने रात्रि भोजन का त्याग नहीं किया पर मैं रात्रि भोजन करता भी नहीं। तो भईया त्याग कर दे, त्याग नहीं करूँगा इसका आशय है वह रात्रि भोजन करेगा, आज नहीं तो कल करेगा, क्योंकि उसके मन में कच्चापन है और नहीं करेगा तो त्याग कर देगा ठीक है जब मुझे करना ही नहीं है तो नियम लिये बिना नहीं मानेगा। नियम इसीलिये लिये जाते हैं जिससे विरक्ति का जल बह न जाये। विरक्ति के पात्र में नियम का जल स्थिरता को प्राप्त हो जाता है, ज्यादा स्थिरता को प्राप्त हो जाता है तो जमकर के बर्फ बन जाता है। और यदि आपने विरक्ति के जल को आधार नहीं दिया तो वह जल बह जायेगा, सूख जायेगा। महानुभाव ! विरक्ति के भाव जब-जब भी आते हैं तब-तब क्षण भर की सुख शान्ति का अनुभव भी होता है। परिग्रह से आसक्ति आती है कई बार ऐसा होता है कि परिग्रह का त्याग तो किया नहीं क्योंकि था नहीं कहाँ से करता, भिखारी है उस पर परिग्रह है भी नहीं और त्याग भी नहीं किया तब भी उसकी आसक्ति है मैं ऐसा करूँगा, वैसा करूँगा, महल बनाऊँगा तो भविष्य के लिये आसक्ति में जी रहा है वह भी पापी है। चाहे भूतकाल की आसक्ति में जी रहा है तब भी पापी है चाहे भविष्य की आसक्ति में जी रहा है तब भी पापी है, चाहे वर्तमान की आसक्ति में जी रहा है, तीनों ही पापी हैं। और जो आसक्ति से रहित हो गया, चाहे अतीत में उसके पास बहुत वैभव था, पर आसक्ति नहीं सब मिट्टी है। चाहे वर्तमान में भी खूब हो पर आसक्ति नहीं, भविष्य में खूब मिल जायेगा पर आसक्ति नहीं है और जो निरासक्त, अनासक्त भाव से जीता है वह निःसंदेह पुण्यात्मा है, वर्तमान में निरासक्त भाव से कौन जिये 'भरतचक्रवर्ती'। और भूतकाल

में निरासक्त भाव से कौन जिया ? जो व्यक्ति राजा था, राज्य अवस्था को छोड़कर पुत्र को राज्य देकर या पुत्र नहीं है तो उसको राजा बना दिया हाथी ने जिसका अभिषेक कर दिया माला डाल दी स्वयं राजा ने दीक्षा ले ली भूतकाल के वैभव की कोई आसक्ति नहीं। और भविष्य की निरासक्ति जो अभी राजकुमार है, राजा बनेगा, ऐसी राजा ने घोषणा भी कर दी किन्तु वह कहता है-पिता जी क्षमा करो मैं राज्य नहीं चाहता अथवा कोई मुनिराज साधना कर रहे हैं किसी ने बता दिया-तुम देव बनोगे। इन्द्र बनोगे, पर वे मुनि उस फल की आशा में आसक्त नहीं निरासक्त भाव से लीन बस अपनी आत्मा का कल्याण करना है। भूत भविष्य वर्तमान तीनों से निरासक्त होकर चलता है तब उसे सुख का अनुभव होता है। कई बार व्यक्ति कहता है सुख तो मिल नहीं रहा हमारे पास है नहीं सब छोड़ दिया, तुमने वर्तमान का छोड़ा है, भूतकाल के प्रति जो तुम्हारा नष्ट हो गया है उसके प्रति आसक्ति आज भी हो सकती है, तुम्हारे पास भूतकाल में नहीं था, वर्तमान में नहीं है पर भविष्य की आसक्ति हो सकती है, मिलेगा तब भी तो दुःखी हो सकते हो, जो तीनों कारणों से निरासक्त होकर जीता है तब उसे सुख मिलता है। तो 'सर्वसंगविरतिर्या' का अर्थ आचार्य महोदय शायद यही कहना चाह रहे हैं कि तीनों कालों की निरासक्ति हो। वो सुख ही सुख है। तीसरी बात यहाँ कह रहे-

किं सत्यं-संसार में सत्य क्या है ? **भूतहितं**-सत्य वह है जिससे प्राणी का हित हो। प्राणी का कल्याण हो अनुग्रह हो तब तो वह सत्य है जो प्राणी का अहित करने वाला होता है वह सत्य असत्य से भी ज्यादा बदतर होता है। किसी सत्य से किसी जीव के प्राण चले गये, कहीं कुछ अनर्थ हो गया तो वह सत्य असत्य से भी बदतर है ऐसा सत्य नहीं बोलना चाहिये। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने भी लिखा-

स्थूल मलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावाद वैरमणम्॥५५॥

स्थूल झूठ नहीं बोलता और न दूसरों से बुलवाता और विपत्ति आने पर वह अहिंसा की रक्षा करता है अहिंसा प्रथम व्रत ही आधार है, जहाँ अहिंसा चली जाती है तो चार व्रत वहाँ ठहरते नहीं है यदि नीचे की मंजिल गिरा दो तो क्या ऊपर की मंजिल टिकी रहेंगी ? नहीं टिक सकती वे भी धराशाही हो जायेंगी, इसलिये अहिंसा की रक्षा पहले है। अहिंसा की रक्षा, फिर सत्य की रक्षा, फिर अचौर्य की रक्षा, फिर ब्रह्मचर्य की रक्षा फिर अपरिग्रह व्रत की रक्षा ऐसे बढ़ते चले जाओ। तो यहाँ पर कहा ''किं सत्यं'' सत्य क्या है। जिससे प्राणी का हित हो। राजा के सामने एक नारद (सामान्य व्यक्ति) भी कह सकता है कि अज का अर्थ इस कथन में बकरा नहीं होता, इस प्रसंग में अज का अर्थ तो 'अजन्मा' जिसका जन्म नहीं हुआ हो। यूँ तो अज का अर्थ ब्रह्मा भी होता

है, किन्तु अज का बकरा भी होता है, किन्तु अज का अर्थ तीन साल का पुराना धान्य भी होता है, अज का अर्थ सिद्ध परमेष्ठी भी होता है जिसका कभी जन्म न हो वह सब 'अज' कहलाता है। अ-रहित-ज-जन्म-जन्म से रहित जो कोई भी हैं सब अज हैं तो महानुभाव ! प्रसंग के अनुसार अर्थ लिया जाता है, और प्रसंग के अनुसार भी अर्थ ऐसा करना चाहिये जिस अर्थ से प्राणियों का हित हो। ''शब्दानामनेकार्थं'' शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं एक-एक शब्द के कई-कई अर्थ होते हैं किन्तु वे कई-कई अर्थ में से केकैई जैसा अर्थ नहीं लेना। वरदान मांगा अपने पुत्र के लिये राजगद्दी यह वरदान उसने न्याय नीति से नहीं मांगा, यह वरदान उसने मोह में आविष्ट होकर मांगा, क्योंकि उसका पति दीक्षा लेने जा रहा था, पुत्र भी दीक्षा की जिद्द कर रहा था, उसने सोचा पिता मेरे हैं नहीं दीक्षा ले चुके, मैं किसके सहारे रहूँगी, नारी के तो तीन ही स्थान हैं पिता, पति या पुत्र। प अक्षर नारी के लिये 'पांतु' रक्षा का कार्य करते हैं, न के बाद प अक्षर आता है। नारी की रक्षा करने वाले ये तीन ही हैं।

कई-कई अर्थ में से समभिरूढ अर्थ लगाना है गूढ़ अर्थ नहीं रूढ़ अर्थ को देखना है सम प्रत्यय लगाया, समीचीनता को लेकर के, कौन सी समीचीनता-भूतहितं जिस अर्थ को निकालने से प्राणी का हित होता है। ऐसा समभिरूढ अर्थ निकालना है। गूढ़ अर्थ में नहीं जाना है, गूढ़ अर्थ तो विद्वता का प्रतीक है किन्तु रूढ अर्थ ये विवेक का प्रतीक है और यदि समभिरूढ अर्थ है तो वास्तव में धर्मात्मा का प्रतीक है। धर्मात्मा ऐसा सत्य बोलता है जिससे सबका कल्याण हो, जिस वचन के बोलने से प्राणी का अहित हो रहा है वह वचन व्यर्थ है जिससे स्वपर का कल्याण हो वही वचन सार्थक हो रहा है जिन वचनों के माध्यम से प्राणी मात्र का कल्याण होता है वे वचन परमार्थी कहलाते हैं। चौथी बात कही-

किं प्रेय:- प्रेय क्या है ? वैसे तो अंग्रेजों का कहना ये है कि हम संस्कृत का आदर करते हैं प्रेय तो प्रेयर ही होनी चाहिये। प्रेयर ''प्रार्थना'' ही प्रेय होना चाहिये, जिसके जीवन से प्रार्थना नहीं उसके पास सब कुछ बना भी रहे तब भी अप्रेय के समान है। क्योंकि वह अश्रेय है। प्रेय ही वास्तव में श्रेय होती है इसीलिये Pray होनी चाहिये। अभी तक हम प्रिय वस्तुओं से प्यार करते है श्रेय वस्तुओं से प्यार नहीं करते जीवन में हमारा प्रेय, स्नेह, राग हमारी रति श्रेय के प्रति हो जायेगी तब नि:संदेह हमें आत्मकल्याण से कोई रोक नहीं सकेगा। हमने अभी तक प्रेय को श्रेय मान लिया है चाहे पत्नी हो, चाहे धन दौलत मकान, दुकान हो उसमें ही हमने अपना हित मान लिया है, उससे ही अपना कल्याण मान लिया किन्तु हम चाहते हैं कि अब थोड़ा सा उल्टे हो जायें, कैसे ? पीछे मुँह करके बैठ जायें क्या ? हाँ यही कहना चाह रहा हूँ पेट में यदि कोई ऐसी वस्तु चली जाये तो उल्टी करना जरूरी है तो आपको कैसे उल्टा होना है-जो अनादि काल से ग्रहण करते आये हैं प्रेय को श्रेय मानते रहे अब उल्टा कैसा है-श्रेय को प्रेय मानना है। अभी तक जिस

चीज को हम प्यार करते हैं उसे ही कल्याणकारी मान लिया है। किन्तु अब हमें जो वास्तव में कल्याणकारी है उसे ही प्रेय बनाना है। कल्याणकारी कौन है ?

देव शास्त्र गुरु रत्न शुभ तीन रतन करतार

ये तीन ही हमारे लिये श्रेय हैं क्योंकि इन्हीं से हमारा कल्याण होगा, ये तीन श्रेय ही हमारे लिये प्रेय हो जाना चाहिये। अभी तक प्रेय थे-रोटी, कपड़ा और मकान ज्यादा हुआ तो स्त्री पुत्र और दुकान ये मान लिया किन्तु वास्तव में न रोटी कपड़ा मकान, न स्त्री पुत्र दुकान ये श्रेय नहीं है। श्रेय तो देवशास्त्र गुरु हैं, सम्यकदर्शन ज्ञान चारित्र हैं ये श्रेय हैं इनको ही प्रिय बनाना चाहिये। यहाँ आचार्य महोदय संसारी प्राणी की अपेक्षा कह रहे हैं संसारी प्राणियों को प्रेय क्या है-तो

जिनकी आप हिंसा कर रहे, घात कर रहे उनको भी प्राण ऐसे प्यारे हैं जैसे तुम्हें। **''आत्मानः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्''** जो तुम अपनी आत्मा के प्रतिकूल व्यवहार समझते हो वह व्यवहार दूसरों के प्रति भी मत करो तुम्हें जितने प्राण प्रिय हैं, उतने ही दूसरों को भी हैं। तुम यदि कांटे की बाधा सहन नहीं कर सकते हो तो दूसरे को सुई चुभाने का तुम्हें अधिकार नहीं। किसी वृक्ष के पत्ते तोड़ने का अधिकार नहीं। महानुभाव ! इसलिये अपने जीवन में यदि सुख शांति चाहते हो तो सुख शांति का उपाय ये है सबकी रक्षा करो, अपनी रक्षा चाहते हो तो सबकी रक्षा करो-इसीलिये आचार्यों ने सबसे पहले कहा-'अहिंसा परमो धर्मः' सबकी रक्षा करो तो तुम्हारी रक्षा हो जायेगी जो हिंसा करता है वह स्व-पर की आत्मा की भी हिंसा करता है। तो संसार में संसारी प्राणी को अपने प्राण सबसे ज्यादा प्रिय होते हैं। प्राणों के लिये संसारी व्यक्ति कुछ भी कर सकता है, हिंसा झूठ चोरी भी कर सकता है। प्राणों की रक्षा के लिये वह धर्ममार्ग का त्याग भी कर देता है। इससे सिद्ध होता है सामान्य संसारी प्राणी को अपने प्राण बहुत प्रिय हैं। इतने सस्ते नहीं हैं। एक धनी व्यक्ति ने दिन रात पैसा कमाया, न खाया न खर्च किया, कोड़ी-कोड़ी जोड़ कर रखा और इकट्ठा कर लिया-वह व्यक्ति भी जब प्राणों पर आ बनती है तब देने को तैयार हो जाता है।

जो व्यक्ति कहता था-कि चमड़ी जाये पर दमड़ी न जाये, किन्तु प्राण जब जाते हैं तब कहते है-प्राण छोड़ दो चाहो तो सब सम्पत्ति ले जाओ। तो प्राण प्यारे हैं इस प्रकार 13वीं कारिका का अर्थ हुआ।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

वचनों का आभूषण

किं दान मनाकांक्षं किं मित्रं यन्निवर्तयति पापात्।।
कोऽलंकारः शीलं किं वाचां मण्डनं सत्यं।।१४।।

किं दानं-दान कौन सा है ? **अनाकांक्षं**-जिस दान के पीछे कोई प्रत्युपकार की भावना नहीं हो वही सच्चा दान है यदि उसके पीछे कोई और भाव छिपा हो चाहे नाम का हो, उसके फल का हो तो सच्चा दान नहीं। दूसरी बात **किं मित्रं**-मित्र कौन है ? **यन्निवर्तयति पापात्**-जो तुम्हें पाप से दूर कर दे। **कोऽलंकारः**-आभूषण क्या है ? **शीलं**-शील धर्म ही सबसे बड़ा अलंकार है। वैश्या बहुत सारे आभूषण धारण कर ले तो भी सुंदर नहीं लगेगी, कोई सती स्त्री यदि धवल साटिका में है एक भी आभूषण नहीं है तो असुंदर थोड़े ही लगती है दुनिया उसके चरण पूजती है क्योंकि वह शील रत्न से युक्त है। चौथी बात कह रहे-**किं वाचां मण्डनं**-वचनों का आभूषण क्या है? **सत्यं**-सत्य से ही वचन शोभा को प्राप्त होता है अन्यथा वह मण्डित नहीं खण्डित हो जाता है, फूटे घड़े की तरह कोई वेल्यू नहीं फेंकने के योग्य है, सत्य है तो हृदय में धारण करने योग्य है।

बड़ी अच्छी सी बात कह रहे हैं-सच्चा दान कौन सा ?

''दान देय मन हरष विषेखे इह भव जस पर भव सुख देखे''

दान आप लोग देते हैं किन्तु आत्मा में उससे खुशी हो तो सच्चा दान है दान देकर यह आकांक्षा न हो कि बदले में कुछ मिले, दान देने के बाद अपने मन से पूछो क्या तुम्हें चार व्यक्तियों से प्रशंसा सुनने की आकांक्षा है, दान तो अन्तरात्मा से होता है कोई लाख रोकने का प्रयास करे तब भी तुम्हारी आत्मा कहेगी दान देना है चुपचाप देना है, इस हाथ से देना है तो दूसरे हाथ को मालूम भी न चल पाये और यदि नींबू की तरह निचोड़-निचोड़ कर दिया जा रहा है तो वह दान थोड़े ही है। तुम कहो हम लाख रुपये दान करते हैं पर काहे का दान ? तुमसे छीन लिया जाता है डाकू आता है तो पिस्तौल रख कर ले लेता है, और समाज का व्यक्ति थोड़ी वैयावृत्ति करके प्रशंसा करके ले लेता है। तुमने मन से तो दिया नहीं। दान वास्तव में आत्मा से होना चाहिये कि मुझे दान तो करना है यदि कहीं कोई कार्य शुभ हो रहा है तो मेरा पैसा कहीं पुण्य काम में लग जाये, एक बार तो ऐसा अवसर मिल जाये कि मेरा दान ऐसा हो जाये कि कोई जान न पाये, मैं भी दान देकर के भूल जाऊँ बहुत अच्छी-अच्छी बातें भूल जाता हूँ किन्तु मैं दान देकर क्यों नहीं भूलता। इसलिये यहाँ कह रहे हैं दान अनाकांक्ष भाव से दो। एक छोटी सी बात बतायें-

16वीं शताब्दी में मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में एक राजा था जिसका नाम था 'अमानसिंह'। वह बहुत धर्मात्मा, श्रद्धालु, पवित्रचित्त वाला था, उसके पिताजी का नाम था छत्रसाल। जिस राजा

छत्रसाल ने कुण्डलपुर के जिनमंदिर का जीर्णोद्धार कराया था, उसके बारे में कहावत आती है बुन्देलखण्ड में-

छत्ता तेरे राज्य में धक-धक धरती होय।
जहाँ जहाँ घोड़ा पग धरे तहाँ-तहाँ हीरा होय॥

तब से सुनते है 16वीं शताब्दी के पहले की बात तो मालूम नहीं, पर कहते हैं कि पन्ना जिले के आस-पास हीरे की खदानें है वहाँ से हीरा निकलता है। तो छत्रसाल का पुत्र अमान सिंह बड़ा उदार हृदय था, कोई भी व्यक्ति उसके द्वार से खाली हाथ नहीं जाता। शरीर के आभूषण भी यदि कोई माँग ले तो वह तुंरत उतार कर दे देता, यद्यपि हर एक व्यक्ति इतना भिखारी नहीं हो सकता कि दाता के शरीर पर पड़े वस्त्रों व आभूषणों को माँग ले, किन्तु यदि कोई माँग भी ले तो वह देने में हिचकता नहीं था। उसकी माँ उसके इस गुण से बड़ी संतुष्ट भी रहती थी और यह भी कहती थी कि इसी में लगा रहता है कुछ राजपाट भी देखो। एक दिन माँ बेटे दोनों महल के आंगन में बैठे थे, चर्चा कर रहे थे, माँ ने बेटे से ऐसे ही कहा-कि बेटा सामने जो इतना बड़ा पहाड़ दिख रहा है 'मदारटूणा' यदि ये पहाड़ पूरा सोने का हो जाये तो तेरे बांटने के लिये कितने समय तक के लिये हो जायेगा। 1 महीने का, 2 महीने का, 6 महिने का, कितने महिने का काम हो जायेगा। वह बोला माँ तुमसे क्या झूठ बोलूँ ? सही-सही बता दूँ हाँ बेटा सही-सही पूछती हूँ बता ? बोला माँ ये पूरा पहाड़ सोने का हो जाये, इतने-इतने 100 पहाड़ और भी सोने के हो जायें, मेरे लिये देने के लिये तो सिर्फ एक जुबान का है ले जाने वाला उठाकर जितने दिन में ले जाये, ये उसकी बात है। मैं एक जुबान में एक क्या ऐसे-ऐसे 100 पहाड़ भी दान कर सकता हूँ। देखो ! कितना बड़ा दिल। तुम्हारे पास कोई चीज हो और कोई तुमसे कहे कि दान दे दो, तो हाथ कांपते हैं। महानुभाव ! बात यह है कि व्यक्ति की भावना प्रकृष्ट होनी चाहिये ''क्षीण पुण्यं विनश्यति विचारं'' व्यक्ति का पुण्य जब क्षीण हो जाता है तब उसके विचार भी क्षीण हो जाते हैं। जब तक तुम्हारे मन में भावना थी कि मैं ऐसा करूँगा, वैसा करूँगा, हे भगवान्! जीवन में चाहे कुछ भी हो प्रभु परमात्मा का छोटा सा मंदिर तो बनवाऊँगा मैं उस पिसनहारी से गया बीता तो नहीं हूँ जो दूसरे के घर जाकर आटा पीसती थी चाहे अस्वस्थ हो या स्वस्थ, शरीर की परवाह नहीं। उसकी कोई सम्पत्ति नहीं, फिर भी वह उस पहाड़ पर जहाँ कर्णवती का महल था वहाँ जिनमंदिर बनवा गयी, वह मंदिर हजारों साल के लिये जीवंत हो गया 450 साल हो गये। कई बार मन में भाव आता है कि हे भगवान् ! क्या हमारा पुण्य इतना गया बीता है कि जीवन में हमारी एक भावना पूरी नहीं करेगा ? पूरी करेगा पर तुम भाओ तो सही। तुम तो भावना भाते हो लड़के की नौकरी लग जाये लड़की के हाथ पीले हो जायें। तुम तो भावना ये भाते हो मेरा शरीर स्वस्थ रहे। महानुभाव ! कहने का आशय है कि व्यक्ति दान भी सही भावना से दे नहीं पाता। एक बात आपको

बतायें-आप कहेंगे कि किंवदंती है कि वास्तव में सत्य है आगम की बात कोई असत्य नहीं होती, आगम में जो भी कथानक दिये हैं चाहे किसी ने थोड़ा भी दान दिया पर उसका बहुत बड़ा फल प्राप्त किया। प्राय:कर के जितने भी तीर्थंकर हुये हैं उन्होंने अतीत काल में जीवन में चाहे सिर्फ एक बार ही पर आहार दान कहीं न कहीं दिया है, आदिनाथ भगवान ने राजा वज्रजंघ की पर्याय में, राजा श्रेयांस ने श्रीमती की पर्याय में, शांतिनाथ भगवान ने श्रीषेण की पर्याय में, भरत चक्रवर्ती ने भी अनुमोदना की थी सिंह की पर्याय में। महानुभाव ! उस थोड़े से दान से, अनुमोदना से इतना सारा पुण्य मिल जाता है कि शूकर बंदर, नेवला आदि भी तिर गये। आश्चर्य है कि दिया नहीं पर भावना बहुत विशुद्ध कर ली। व्यक्ति दूसरे को देते हुये देखकर मन में भावना भा रहा है कि हे भगवान् ! मैं तुमसे कुछ नहीं चाहता इतना मिल जाये कि मेरे दो हाथ श्री जी के सिर पर कलशा ढालते रहें उनके श्री चरणों में अर्घ चढ़ाते रहें और दिगम्बर साधु के हाथ पर एक अंजुली पानी व ग्रास जिंदगी भर रखता रहूँ इतना पुण्य मुझे दे दे। चाहे मैं झोंपड़ी में रहूँ या महलों में इतना पुण्य मेरे जीवन में आ जाये कि मेरा कोई भी दिन खाली न जाये कि जिस दिन मैं श्रीजी का अभिषेक व अर्घ भी न चढ़ा पाऊँ। और वह दिन भी न जाये कि दिगम्बर संत के हाथ पर एक ग्रास रखकर एक अंजली पानी न पिला सकूँ। इतना यदि मेरे पास है तो तीन लोक की सम्पत्ति तो मुझे वैसे ही मिल गयी। पर प्राय:कर के ऐसा मांगता कौन है ? वह तो कबीर का दोहा है इसलिये पढ़ लेते हैं कि-

साईं इतना दीजिये जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाये।।

पढ़ तो लेते हैं-पर वास्तव में अपनी आत्मा से पूछो कि तुमने भगवान से कितनी बार कहा है कि मेरा एक भी दिन ऐसा न जाये कि मैं दिगम्बर साधु को आहार न दे पाऊँ, इससे 100 गुनी बार माँगा भी होगा तो अन्य चीजें माँगी होंगी, संसार की नश्वर वस्तुयें माँगी होंगी। शाश्वत अवस्था को प्राप्त करने की तुमने भावना भी कब भायी। तो यहाँ दान के बारे में रह रहे हैं कि अनाकांक्षित भाव से आहार देने से सम्पत्ति बढ़ती है। कैसे बढ़ती है ? Compound Interest चक्रवर्ती ब्याज की तरह से, चक्रवर्ती कौन बनता है मालूम है ? जो अपने पुण्य को चक्रवर्ती ब्याज की तरह से बढ़ाता जाता है वही चक्रवर्ती बन जाता है। अपने पुण्य को पुण्य में लगायें, पुण्य के फल से सेठ बना, राजा, महाराजा बना, उससे फिर पुण्य कमाया, पुण्य कमाता गया तो एक दिन चक्रवर्ती बन गया। महानुभाव ! जो अपनी सामर्थ्य का सही सदुपयोग नहीं कर पाता उसे आगे उतनी सामर्थ्य मिल नहीं पाती, घटती जाती है।

एक श्रावस्ती नगर का सेठ पुण्णंकर अपने पाप कर्म के उदय से बहुत गरीब हो जाता है, नगर के बाहर एक झोंपड़ी में रहने लगा, उसकी पत्नी कहती है-आप व्यापार करो। वह कहता

है व्यापार करने से क्या होगा ? जब पाप का उदय चल रहा है, जिस काम में हाथ डालता हूँ घाटा ही लगता है। बीसों काम बदल चुका सब में ही घाटा लगा, अब मुझे चैन से बैठ जाना चाहिये, जब पाप कर्म का मंद उदय होगा तब सब काम अपने आप बन जायेंगे। और जब पाप कर्म का तीव्र उदय चल रहा है तब सोने में भी हाथ डालूँगा तो वह भी मिट्टी हो जायेगा। इसीलिये मुझे तो पुण्य करना चाहिये, जो व्यक्ति बार-बार मात खाता है उसे पुण्य संचय कर लेना चाहिये कि फिर जो कोई भी कार्य करे तो उसे सफलता मिल जाये। पुण्य संचय हो जायेगा तो काम चलकर के तुम्हारे पास आ जायेगा, पुण्य उदय नहीं है पाप का तीव्र उदय है तो व्यक्ति जगह-जगह भटकता है उसे ठोकरें ही मिलती हैं काम नहीं मिलता, पुण्य का उदय हो जाये तो काम स्वयं चलकर उसके पास आ जाता है।

महानुभाव ! वह पुण्णंकर सेठ बहुत गरीब हो गया तो फिर सोचता है क्या करूँ उसकी पत्नी ने कहा-एक काम करो-व्यापार तो करना चाहिये, निरुद्यमी व्यक्ति स्वयं पर भार होता है उद्यमशील बनो, पुरुषार्थ करो कहीं न कहीं सफलता मिलेगी। वह बोला-तू कहती तो ठीक है किन्तु अब तो पूंजी भी मेरे पास नहीं है बोली कहीं से उधार ले आओ बोला कोई उधार भी नहीं देगा मुझे, भले ही मैंने अपने जीवन में एक पैसे की बेईमानी नहीं की पर सबको पता है इस पर कुछ है नहीं। उधार नहीं देगा उन्हें पता है चुकायेगा कैसे ? फिर पत्नी कहीं सुनकर आती है कहती है मैंने सुना है कलिंग देश में कोई एक सेठ है जो पुण्य खरीदता है पुण्य को गिरवी रखता है, तुमने अपने जीवन में बहुत सारा पुण्य किया है। धर्मशालायें बनवायी हैं, प्याऊ खुलवायी, बगीचे लगाये, स्कूल बनवाये बहुत सारे काम किये, उनमें से कोई एक पुण्य गिरवी रखकर थोड़ा सा पैसा ले आओ। बोला ठीक है, यदि पुण्य होगा तो यहीं मिल जायेगा और नहीं होगा तो वहाँ से भी खाली हाथ लौटना पड़ेगा। बोली तुमने पुण्य बहुत सारे किये हैं-वह बोला देखो जब पाप का उदय होता है तब मेघ भी पुण्यात्मा के खेत में वर्षा कर जाते हैं जहाँ आवश्यकता है पापी के खेत में ओले बरस जाते हैं फसल नष्ट हो जाती है, तो देखता हूँ पुण्य को अजमाकर के। वह चल देता है पत्नी ने रास्ते के लिये थोड़ी सी मूंग की दाल और चावल पोटली में बांध दिये रास्ते में कहीं भूख लगे तो कहीं नदी किनारे दो ईंट रखकर चूल्हा बनाकर मिट्टी के बर्तन में उन्हें तपा लेना व खा लेना। वह गया, सुबह तो खा पीकर गया शाम को विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल उठा हाथ पैर धौये भगवान का स्मरण किया जाप आदि लगायी, फिर सोचा कि भोजन बना लूँ पर सोचा प्रातःकाल ठंडा समय है अभी चल लेता हूँ पुनः धूप हो जायेगी, और सामान उठाकर जंगल की ओर चला, पहुँचा वहाँ देखा कुछ लोग खड़े तम्बू लगा रहे हैं, आवाज आ रही है, जाकर पूछा-तो पता लगा कि वहाँ पर कोई सेठ ठहरा हुआ है। नगर सेठ कहीं का आया है। वह यात्रा के लिये जा रहा है उसका पड़ाव आज यहीं है उसकी रसोई बन रही है वह भी वहाँ पहुँच गया

सोचता है यहाँ से थोड़ी सी अग्नि लेकर के अपनी खिचड़ी पका लूँगा। सोचता है अब मिट्टी का बर्तन कहाँ से लाऊँ इन सेठ जी के कर्मचारी को ही दे देता हूँ वे मेरी खिचड़ी भी पका देगें, वह उनको दे देता है। और स्वयं बाहर बैठ जाता है सेठजी से चर्चा करने लगता है। सेठ बहुत धर्मात्मा था, तभी सेठ जी का नौकर कहता है कि रसोई तैयार है, सेठ जी कहते हैं ठीक है मंगल कलश, श्रीफल लाओ और सामान लेकर पड़गाहन के लिये खड़ा हो गया कि जब तक कोई मुनिमहाराज नहीं आयेंगे या कोई त्यागी व्रती नहीं आयेंगे उनको बिना आहार दिये मैं आहार ग्रहण न करूँगा, मेरा आज का उपवास। वह खड़ा रहा, बहुत देर हो गयी, परीक्षा तो होती है, परीक्षा के बाद ही प्रमाण पत्र मिलता है, किन्तु उसका धैर्य बना रहा, तभी एक ऋद्धिधारी मुनिराज वहाँ पर आये, सेठ ने पड़गाहन किया, आहार दिया, यह जो पुण्णंकर सेठ था वह भी चौके के बाहर खड़ा अनुमोदना कर रहा था। संयोग की बात जो मुनि महाराज थे उन्होंने सेठ जी के 56 प्रकार के व्यंजन में से एक भी चीज नहीं ली सिवाय पानी के मुनिमहाराज का न जाने क्या व्रत था, खिचड़ी मात्र ली और पानी पी कर आ गये। वह पुण्णंकर तो खुशी के मारे इतना आनंदित हुआ जा रहा कि न जाने उसे क्या मिल गया, अब वह जाने लगा, सेठ जी से विदा लेते हुये चलता है सेठ जी कहते हैं भोजन करके जाओ बोला मेरा पेट तो भर गया-सेठजी बोले-तू ऐसे नहीं जा सकता तू यदि ऐसे चला गया तो मैं भोजन नहीं करूँगा। उस सेठ ने जबरदस्ती बिठाया और उसे खूब 56 प्रकार के व्यंजन खिलाये। भोजन करके चला, अब उसके चेहरे पर प्रसन्नता की लकीरें हैं ऐसा लग रहा है न जाने क्या मिल गया उसे, जीवन में उसने बहुत समय पहले ऐसा भोजन किया था जब वह स्वयं नगर सेठ था, आज कम से कम 16 साल बाद उसने ऐसा भोजन किया।

पहुँच गया कलिंग देश जहाँ का राजा था वह पुनिया सेठ। वहाँ पहुँचकर देखा लम्बी लाइन लगी है, धर्म का कांटा रखा है जहाँ लोग अपने पुण्य की स्लिप रखते हैं वह पुनिया सेठ उतनी स्वर्ण मौहरें चढ़ा देता है किसी पर 5-10-20 दे देता है और स्लिप रखवा लेता है हस्ताक्षर करवा करके। जब धन वापस कर जायेगा तब मैं तेरा गिरवी रखा पुण्य वापिस कर दूँगा, ठीक है, उसका नंबर भी आया, उसने अपनी चिट लिखकर रखी मैंने जो धर्मशाला बनवायी थी मैं उसका पुण्य गिरवी रखता हूँ, जैसे ही चिट रखी तराजू का पलड़ा बिल्कुल नहीं झुका, उसमें से ये आवाज आयी तूने ये अपने नाम के लिये किया, तेरा पटिया लगा है वहाँ, दूसरी तीसरी चिट लिखी-बाग बगीचे, प्याऊ, स्कूल आदि सब लिखे सब पर यही उत्तर आया कि सब जगह तेरे नाम का पटिया लगा हुआ है। तूने पुण्य भी किया अपने नाम के लिये किया। अब पुनिया सेठ कहता है तूने क्या कोई एक ऐसा काम किया जो बिना नाम की चाहना से किया हो, वह बोला बिना नाम के तो कोई काम नहीं किया, मैं तो नगर सेठ था, लोगों ने मुझसे उद्घाटन करवाया, मेरे नाम का पटिया लग गया दो पैसे भी खर्च नहीं किये। बेचारा उदास सा हुआ लौटकर जाने लगा। पुनिया सेठ

बोला-थोड़ा और सोच ले, वह बोला-सोच क्या लूँ एक बात है अभी आते हुये रास्ते में कहूँ क्या कहने में शर्म आती है 100 ग्रा. मुश्किल से दाल चावल होंगे उसकी खिचड़ी भी मैंने स्वयं नहीं बनाई सेठ के यहाँ बनवाई किन्तु मुनिमहाराज ने वह तीन अंजली खिचड़ी तो ली है। उस खिचड़ी में मूंगदाल चावल तो मेरे थे किन्तु इतनी सी खिचड़ी और मैं 56 प्रकार के व्यंजन खाता हुआ यहाँ पर आ गया। पुनिया सेठ बोला तो फिर-लिखकर रख देता हूँ। जब लिखकर के रखा तो पलड़ा नीचे हो गया। पूनिया सेठ चढ़ाता गया 10-50-100 किन्तु सोने के सिक्कों से काम न चला, रत्न चढाये सिक्के अलग कर दिये-10-20-50-100 किन्तु फिर भी काम न चला, सेठ पुनिया खड़ा हुआ अपनी गद्दी से पैर पकड़ लेता है और कहता है-वास्तव में तेरा पुण्य इतना है कि मेरा खजाना इसमें कम पड़ रहा है मैं तेरा पुण्य तो गिरवी रख नहीं सकता किन्तु तुम्हारे पुण्य पर विश्वास है मैं तुम्हें 10,000 स्वर्ण मोहरें ऐसे ही देता हूँ अपना व्यापार करो वह सोने की मोहरें लेकर जाता है। जैसे ही उसका पुण्य का उदय आया तो वह देखता है कि पत्नी खुश दिखाई दे रही है पूछा क्या हुआ-बोली जब तुम गये थे दूसरे दिन ही नगर सेठ आया बोला सेठ जी की पूंजी मेरे पास रखी है और 5000 मुहरे दे दीं हवेली अपनी वापस आ गयी, वह बोली तुम्हें कुछ मिला क्या? बोला हाँ 10,000 मुहरें मुझे भी प्राप्त हुयीं। संयोग की बात व्यापार प्रारंभ किया और जो काम वर्षों में होता वही काम महीनों में हुआ फिर उसी स्थान पर पहुँच गया, और फिर सोने की मुहरें सेठ को लौटा आया। तो महानुभाव ! कहने का आशय यह है जो दान उसने वहाँ दिया था उसमें उसके कोई आकांक्षा नहीं थी। जब निष्कांक्ष भाव से आहार दिया जाता है तो बहुत फलता है। क्योंकि हम तो वास्तव में मांगना भी नहीं जानते, ये भी नहीं जानते कि भगवान से हमें क्या मांगना है, हमारी तो ऐसी स्थिति बन गयी है। अपने को बुद्धिमान समझते हैं और मांग लेते है किन्तु जो मांगते है वह जब पोटली खोलकर देखते हैं तो दु:ख निकलता है चाहते हैं सुख, सुख की चादर पर रीझ जाते हैं किन्तु संसार का नियम यही है कि सुख की चादर में दु:ख और दु:ख की चादर में सुख। नहीं जानते है कि इसमें क्या हैं ? महानुभाव ! मांगने की प्रवृत्ति हमारी ऐसी बन गयी है-

एक जेल में कुछ कैदी बंद थे, उनमें से कुछ कैदियों को छोड़ने राष्ट्रपति आये, जैसे ही आये तो कैदी अपनी शिकायत लेकर बैठ गये, एक कहता है, यहाँ पर नहाने की व्यवस्था नहीं है, ठीक है व्यवस्था हो जायेगी, एक कहता है-सूखी रोटी मिलती है-ठीक है घी लगी मिल जायेगी, तीसरा, चौथा पाँचवा सब कुछ न कुछ माँग रहे हैं एक कैदी सिर्फ ऐसा निकलता है जो कहता है मैंने सुना है-आप राष्ट्रपति हैं, देश के राजा हैं, ठीक सुना है, आप राजा हैं समर्थ हैं आप सबको सब कुछ देने को आये हैं मैं भी चाहता हूँ कि आप मुझे इस जेल से मुक्ति दे दें, राष्ट्रपति ने उसे मुक्त कर दिया, राष्ट्रपति लौटकर आ गया। किसी और कैदी ने जेल से मुक्ति नहीं माँगी।

महानुभाव ! संसार से मुक्ति माँगने वाला तो कोई विरला ही होता है। राष्ट्रपति जो मुक्ति दे सकता है उससे कंघा, तेल की शिकायत करना, या छोटी-मोटी बातें करना मांगना तुच्छता है ऐसे ही अपने तीन लोक के नाथ वीतरागी भगवान से ये राग की उपासना करना, मांगना ये ऐसे ही है कि जैसे राष्ट्रपति से कोई कंघा और तेल मांग रहा हो, ये वीतरागी भगवान का अपमान जैसा है हम उनकी सही विनय नहीं कर पा रहे हैं। उनके पास जाकर क्या मांगना कुछ मांगना ही नहीं हैं बस उनसे लगन लगाकर बैठ जाओ, बस उनसे एकीभाव कर लो, जो उनका है सो तुम्हारा है तुम उनको ही माँग लो मैं किससे क्या मागूँ ? संसार से क्यों कुछ माँगू? संसार से मांगने पर संसारी प्राणी कुछ देते नहीं हे भगवान तुमसे ही माँगता हूँ तुमसे क्या मैं तो तुम्हीं को माँगता हूँ। बस भगवान को माँग लो। भगवान का सहारा लो भगवान की सत्संगति? भगवान जैसी निधि तुम्हारे अंदर प्रकट करने में समर्थ हो जायेगी। तो यहाँ पर हम देख रहे है 'दानं अनाकांक्षं।' ज्यादा से ज्यादा देने की अपेक्षा ज्यादा से ज्यादा अच्छे तरीके से दो। ज्यादा कम तो अलग बात है ''विधि द्रव्यदातृपात्रविशेषात्तत्वविशेषः'' विधि, द्रव्य, दाता, पात्र इन सबकी विशेषताओं से दान में भी विशेषता आती है ऐसा नहीं कि तुमने बहुत ज्यादा दिया, अविनय के साथ ज्यादा भी दे दिया तो उससे ज्यादा पुण्य नहीं मिल जायेगा, किन्तु अत्यंत विनय, परमभक्ति, परम श्रद्धा, उत्कृष्ट परिणामों से दिया है तो यदि तुमने एक घूंट पानी भी पिलाया है राजा श्रेयांस ने तो भगवान आदिनाथ को तीन अंजली गन्ने का आहार ही दिया था उसके बाद कहाँ दिया, दीक्षा ली और अपना कल्याण किया, ऐसे ही कई महापुरुषों का आता है कि जीवन में एक बार आहार दिया, वह पुशिवंकर और प्रभंकर अग्निला ब्राह्मणी के बेटे एक बार आहार की अनुमोदना करके गिरनारपर्वत से भगवान नेमिनाथ के साथ मुक्ति को प्राप्त हुये। अग्निला ब्राह्मणी आहारदान देकर भगवान नेमिनाथ की यक्षिणी अम्बिका बनी। तो एक बार भी आहार देने का परिणाम बहुत होता है, देने का तो ठीक है, अनुमोदना का भी बहुत पुण्य होता है पर शर्त ये है कि भाव उसमें होना चाहिये। ''यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः'' बिना भाव की क्रियायें फल को प्राप्त नहीं होती, भावों के प्राण तो क्रिया में होना ही चाहिये भावों के प्राण नहीं होते हैं तो वे क्रियायें मुर्दा हो जाती हैं। तो महानुभाव !

यहाँ पर पहला शब्द देखा किं दानं-अनाकांक्षं-दूसरी बात कह रहे हैं-

'किं मित्रं'- मित्र कौन है **''पापान् निवारयति योजयते हिताये''**

जो पाप से निवृत्त करे हित के मार्ग में नियुक्त करे। जो दोषों को ढाके गुणों को प्रकट करे, जो मित्र के लिये हमेशा प्रेरणा दे, जो अपने प्राणों की बाजी लगाकर मित्र के प्राणों की सदा रक्षा करे सच्चा मित्र तो वही होता है। केवल धन सम्पत्ति देने वाला मित्र थोड़े ही है, धन सम्पत्ति तो

कोई भी दे सकता है। सच्चा मित्र वही है जो वास्तव में अपने मित्र को पापों से बचायें। मणिचूल-रत्नचूल की कहानी आपने शास्त्र में पढ़ी होगी जो बाद में सगर चक्रवर्ती बने, दूसरा मित्र जो देव की पर्याय में ही था, समझाने आता है, एक बार जब दोनों देव मणिचूल व रत्नचूल नंदीश्वर द्वीप की वंदना करने जा रहे थे जाते समय मानुषोत्तर पर्वत के पास से निकले तब एक विद्याधर राजा नंदीश्वर द्वीप जाने की जिद कर रहा था, मानुषोत्तरपर्वत से टकराकर तीन बार गिरा, उन दोनों देवों ने देखा-देखकर कहा कि-इस मनुष्य के मन में कितना विकल्प हो रहा है, वह नंदीश्वर द्वीप जा नहीं सकता, उसे संबोधन दिया, देवों ने जाते-जाते विमान में एक संकल्प ले लिया कि यदि पहले मैं मनुष्य बन गया तो तुम तुझे संबोधन करने आना और यदि तू पहले मनुष्य बना तो मैं तुझे संबोधित करने आऊँगा। रत्नचूल मणिचूल दोनों ने संकल्प लिया। उनमें से एक देव आकर के सगर चक्रवर्ती बना दूसरे देव ने संबोधन देने का प्रयास किया वह नहीं समझा तो उसके साठ हजार पुत्रों को मूर्च्छित कर दिया, उसे जब वैराग्य हो गया तो पहले ब्राह्मण के रूप में आया बाद में असली रूप में। तो वास्तव में सच्चा मित्र तो वह है जो अपने मित्र को सद्मार्ग में प्रवृत्त करे। सच्चा मित्र तो वह कृतान्त वक्र है जो रामचन्द्र जी के जीव को समझाने आया, सच्चा मित्र तो वह है जटायु पक्षी जो रामचन्द्र जी को समझाने आया जब लक्ष्मण को लेकर राम घूमते रहे। सच्चा मित्र कौन है तो हमारे आचार्य गुरुवर विद्यानंद जी महाराज कहते हैं-**''एको मित्रो भवति यति वा भूपति वा''** संसार में मित्र तो एक ही होता है या तो यति या भूपति। भूपति से मित्रता कर ली तो तुम्हें किसी का कोई भय नहीं, ''सैंया कोतवाल तो डर काहे को'' जब सैंया ही कोतवाल है तो नगर में डर किसका ? ऐसे ही जब राजा से मित्रता कर ली तो फिर डर किसका किन्तु-

''राजा मित्रः भवति केन दृष्टं श्रुतंवा''

राजा किसी का मित्र हुआ है ऐसा कभी तुमने सुना है, देखा है ! राजा कभी किसी का मित्र नहीं हो सकता क्योंकि वह किसी से मित्रता निभा नहीं सकता, न्याय की गद्दी पर वह बैठा है तो वह मित्रता निभा नहीं सकता, न्याय का पक्ष लेना पड़ेगा। राजा का बेटा भी यदि अपराध करेगा तो उसे भी फाँसी पर चढ़ा सकता है। तो तुम्हारे साथ पक्षपात क्यों करेगा ? अतः राजा तो मित्र हो नहीं सकता। संसार में मित्रता करने के लिये केवल दो ही हैं यति या भूपति, पर भूपति तो कभी किसी का मित्र हुआ नहीं हमने ऐसा देखा नहीं सुना नहीं, फिर मित्रता के लिये कौन बचा ? यति बचा, जो यति से मित्रता करता है उसका यह लोक भी सुधर जाता है और परलोक भी सुधर जाता है। यति से मित्रता करते ही नगर में तुम्हारी पूछ बढ़ जाती है जैसे हनुमान की पूंछ बढ़ी थी न, हनुमान की पूंछ बढ़ी तो लंका जल गयी, तुम्हारी जब पूछ बढ़ जाती है तो पाप कर्म की लंका जल जाती है। तुम्हारा अपयश जल जाता है और यश चमक जाता है।

श्रावकों के जीवन की ये बहुत बड़ी कमी है कि वे अपने जीवन में किसी साधु से मित्रता नहीं करते। अपने मन की बात किसी साधु से कह सको, अभी तुम अपने मन की बात अपने पिता से, पत्नी से कहते हो संसारी प्राणियों से कहते हो, किन्तु तुम्हारे मन की पुण्य रूप या पाप रूप बात किसी यति के चरणों में या कानों में नहीं पहुँची। और जब तक नहीं पहुँची तब तक सही समाधान मिल नहीं सकता। यति के पास पहुँच गयी, समझो तुम्हें पापों से मुक्ति मिल गयी। तो महानुभाव ! अपने जीवन में एक अच्छा मित्र तो बनाना चाहिये और जिसके पास अच्छा और सच्चा मित्र है उसका कोई बाल बांका नहीं कर सकता, लोग तो कहते हैं तुमने मित्र यदि किसी पशु-पक्षी को भी बना लिया तो पशु-पक्षी भी ऐसे बफादार निकले कि अपने मालिक की रक्षा में प्राण भले ही दे दिये पर मालिक पर आँच नहीं आने दी। और इंसान यदि सच्चा मित्र मिल जाये तो मुश्किल है। इंसानों में बफादारी थोड़ी कम मिलती है, इसलिये बफादारी में कुत्ते का नाम लिया जाता है। कई बार ऐसा हुआ कुत्ता भले ही मरण को प्राप्त हो गया पर मालिक के यहाँ चोरी नहीं होने दी, भौंकता रहा–तो ऐसे बफादार जानवर भी होते हैं। महानुभाव ! एक व्यक्ति तीर्थयात्रा पर जा रहा था, अकेला जा रहा था, जैसे ही गाँव के बाहर निकला गाँव के लोगों ने पूछा कहाँ जा रहे हो-बोला तीर्थ यात्रा के लिये।

पहले तीर्थयात्रा के लिये पैदल जाते थे, वे बोले-भईया-अकेले मत जा। ''इक्का से दुक्का भलो'' वह चलने लगा सोच रहा दूसरा व्यक्ति कौन लूँ–तो कोई व्यक्ति नहीं गरीब के साथ कौन व्यक्ति जाये, अमीर के साथ जाने तो दुनिया तैयार हो जाती है जब कोई नहीं मिला तो उसने अपने गाँव के बाहर तालाब के पास आवाज लगाई, कोई मेरे साथ चलने को तैयार है क्या? संयोग की बात तभी एक कछुआ अपनी गर्दन बाहर निकालता हुआ आया, उसने सोचा कि ये कह रहा है मैं चलने को तैयार हूँ, उसने पानी में हाथ डालकर कछुआ बाहर निकाला और पोटली में दबा कर चल दिया। रास्ते में वृक्ष के नीचे अपनी थकान दूर करने के लिये बैठ गया, वह वृक्ष की घनी छाया में भोजन पानी करके विश्राम करने लगा, उसकी पोटली पर एक कौआ बैठा, उस कौए की, सर्प की और डाकू की बड़ी मित्रता थी। कौआ काँव-काँव करता तो सर्प निकलकर आ जाता, उस यात्री को सर्प डंस लेता और डाकू आकर के उसके धन को लूट कर ले जाता। बड़ा मुश्किल था, वह यात्री जैसे ही सोया, कौआ काँव-काँव करने लगा सर्प निकलकर आया और उसे डस लिया, वह मूर्च्छित हो गया, कौए के मन में लोभ आया कि इसके पास पोटली है, जरूर इसमें खाने को कुछ सामान होगा। कौए ने पोटली खोली, उसमें कलेवा तो कुछ था नहीं, कछुआ था, कछुए ने कौए का पैर पकड़ लिया, कहानी बच्चों की पुस्तकों की है किन्तु मैं यहाँ तथ्य बता रहा हूँ वह बोला पहले मेरे मित्र को जीवित कर, नहीं तो मैं तुझे मार देता हूँ, कौआ काँव-काँव करता है, सर्प सोचता है बात क्या है अभी-अभी तो मैं डस कर आया हूँ, सर्प निकल कर आता

है, कौआ कहता है मेरे प्राण संकट में है तू मेरा मित्र है, तू इसका अभी जहर खींच ये मुझे मार देगा, सर्प ने उसका जहर खींचा, वह व्यक्ति उठकर बैठ गया, कछुआ कहता है अभी नहीं छोडूँगा पहले इसका लूटा हुआ धन वापस करवा, बुला अपने मित्र डाकू को। पुनः उसका तीसरा मित्र आता है और उसका धन वापस कर देता है, पुनः वह राहगीर अपनी पोटली उठाकर, कछुऐ को लेकर आगे यात्रा के लिये चला जाता है। यह कहानी कितनी सत्य है मैं कह नहीं सकता, पर इतनी बात अवश्य समझ में आती है कि एक के साथ दूसरा व्यक्ति जाये तो अच्छा है, वह कछुआ, जानवर ही भले हो पर हो विश्वस्त। साथी विश्वस्त होता है तो निःसंदेह दोनों की रक्षा हो जाती है।

फूट यदि पड़ जाये तो फूट के कारण व्यक्ति केवल पिटता-पिटता ही चला जाता है और यदि घनिष्ठता हो तो दोनों एक दूसरे को बचाने में समर्थ हो जाते हैं।

यहाँ पर दूसरी बात कह रहे थे-मित्र कौन है ? जो पापों से छुड़ाने में समर्थ है वो ही सच्चा मित्र है, पापों से जो न छुड़ा पाये, चाहे वह कोई भी है, चाहे सगा पिता ही हो यदि वह उसे पापों से न छुड़ा पाये तो पिता उसका मित्र नहीं है यदि उनके लाड़ में बेटा बिगड़ गया तो वे उसके शत्रु हैं।

''मात पिता बैरी भये जिनने न पढ़ाये बाल।
अपयश के भागी बने दिया नरक में डाल॥''

जिन्होंने अपने बच्चों को संस्कार नहीं दिये वे बैरी हैं। छूट देते गये और बच्चे बिगड़ते गये। **''माता शत्रु पिता बैरी येन बालो न पाठितः।''** वह माँ शत्रु और पिता बैरी के समान है जो अपने बच्चों को पढ़ाते नहीं है, सुसंस्कार नहीं देते, सदाचरण की शिक्षा नहीं देते। जो माता-पिता बचपन में ही बच्चों के जीवन में सद् संस्कारों के बीज बो देते हैं उन बालकों का जीवन रूपी वृक्ष सदाचरण रूपी तने, सहनशीलता रूपी फल, विद्वता रूपी फूल और विभिन्न गुण रूपी पत्तों से युक्त होता है। और सच्चे मित्र कौन है ? जिन्होंने पाप से बचाया, संसार के गर्त से निकाला, नरक जाने से बचाया वह यति साधु त्यागीव्रती उसका सच्चा मित्र होता है। तीसरी बात कह रहे-

कोऽलंकारः शीलं-अलंकार मनुष्य का क्या है ? शील व्रत ही मनुष्य का सबसे बड़ा अलंकार है, कितनी ही सतियों की कहानियाँ, पुरुषों के उदाहरण आते हैं जिन्होंने शील का पालन किया, प्राणों की परवाह नहीं की, उनके प्राणों की भी रक्षा हुयी, उनके शील की भी रक्षा हुयी, धर्म की रक्षा हुयी आज तक उनका नाम शास्त्रों में उल्लिखित है कि कैसे-कैसे उपसर्गों को सहन किया किन्तु अपना शील नहीं दिया। शील ही आत्मा का श्रृंगार है जिसकी आत्मा श्रंगारित होती है उसका शरीर तो स्वयं पूज्यनीय हो जाता है, श्रावक-श्राविकायें शील के माध्यम से धर्म के माध्यम से अपनी आत्मा को श्रंगारित करते हैं। चौथी बात-

किं वाचां मण्डनं-वचन की शोभा किससे है ? वचन का आभूषण क्या है ? 'सत्यं'-सत्य से ही वचन सुशोभित होता है, सम्मानीय, आदरणीय पूजनीय होता है। असत्य वचन हम कितना भी मीठा बोलें, तो वह ऐसे ही है जैसे शहद लपेटी हुयी तलवार। तो बात ये है मीठे वचन असत्य हैं तो अहितकारी हैं कड़वे वचन सत्य होते हुये भी हितकारी हो सकते हैं। वे तो चिरायते के काढ़े की तरह से हैं यदि स्वीकार कर लिया तो अनादिकाल से लगा वह ज्वर उसकी आत्मा में से निकल जायेगा।

''किमनर्थ फलं मानस, मसंगतं का सुखावहा मैत्री।
सर्व व्यसन विनाशे, को दक्षः सर्वथा त्यागः॥१५॥

किं अनर्थ फलं-अनर्थ का फल क्या है ? अनर्थ means दोष, सावद्य तो इसका फल क्या है। **मानसं असंगतं**-मन की असंगति, मन का असन्तुलित हो जाना यदि मन आकुलित, व्याकुलित, असंतुलित है तो ये पाप का फल है, जिसके चित्त में शांति है वह पुण्य का फल भोग रहा है, जिसके चित्त में आकुलता व्याकुलता है वह पाप का फल भोग रहा है, चाहे रत्नों के ढेर ही क्यों न लगे हों पर जिसके चित्त में आकुलता है तो पाप का फल। अगली बात कह रहे हैं-**का सुखावहा**-संसार में सुखदायक क्या है ? तो आचार्य महाराज कह रहे हैं ''मैत्रीभाव''। इसलिये संसार के प्रत्येक प्राणियों से मैत्री करना चाहिये और आप पढ़ते भी हैं-

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥

ये चार गुण तो अमितगति स्वामी जी ने कहे-तो मैत्री भाव को सबसे पहले क्यों रखा? उसका भी कारण है, क्योंकि मैत्री भाव सुख का कारण है, हम सबसे मित्रता रख सकते हैं। चारों को क्रम से रखने का अलग-अलग तथ्य है। अभी इतना ही देखें-''सुखावहा'' सतत प्रवाही नदी की तरह से सदैव सुख देने वाली कोई चीज है तो वह है मैत्री। सबके प्रति मित्रता। तीसरी बात कह रहे-**सर्वव्यसन विनाशे को दक्षः** सभी व्यसनों का, सभी पापों का त्याग करने में कौन व्यक्ति कुशल हो सकता है व्यसन का आशय यहाँ बुरी आदतों से लेना है। 'व्यसन' का वैसे अर्थ होता है-आदत। दुर्व्यसन न कहकर यहाँ व्यसन इसलिये कह दिया कि व्यसन शब्द बुरी आदतों के लिये अब रूढ़ हो गया है इसलिये व्यसन कहने से व्यक्ति समझ जाता है कि यहाँ यह शब्द बुरी आदतों के लिये प्रयोग किया जा रहा है, यद्यपि व्यसन शब्द का अर्थ शास्त्रों में 'आदत' से लिया गया है जैसे वह स्वाध्याय व्यसनी है। किन्तु अब बुरी आदतों के लिये प्रयोग होने लगा। जैसे पाखण्ड शब्द का प्रयोग पहले अच्छे साधु के लिये होता था, पापों को खण्ड-खण्ड करने वाले दिगम्बर साधु। किन्तु अब उस शब्द का डिमोशन हो गया, तो दूसरा अर्थ निकलता है। तो कौन व्यक्ति कुशल है अपनी बुरी आदतों को छोड़ने में-

सर्वथा त्याग:-जो सब कुछ त्यागने में समर्थ है उसके लिये क्या असाध्य है। क्योंकि बुरी आदतें उससे संपोषित होती हैं जिस संगति में तुम रहते हो। जिन चीज का तुम सेवन करते हो उस वस्तु का त्याग करो। जैसे की मानो कोई व्यक्ति तम्बाकू खाता है, और तुम तम्बाकू खाने वालों के बीच में बार-बार रहोगे तो तम्बाकू छूटना बड़ा मुश्किल है, तम्बाकू की दुकान के आस-पास रहोगे तो तम्बाकू छोड़ना बड़ी मुश्किल है, तुम ऐसे स्थान पर पहुँच जाओ जहाँ तम्बाकू मिलती ही नहीं, तो स्वयं छूट जायेगी, ऐसे ही कोई भी चीज है उस चीज का, उस द्रव्य का, उस क्षेत्र का, जिस वक्त तम्बाकू खाते हो उस वक्त मन को किसी और काम में लगा दो तो वह चीज छूट जाती है। उन भावों को किसी और काम में लगा दो तो वह चीज छूट जाती है, तो उस द्रव्य क्षेत्र काल भाव का त्याग करने में जो व्यक्ति समर्थ है सब कुछ त्यागने में जो समर्थ है वो व्यक्ति किसी भी व्यसन को छोड़ सकता है किसी व्यसन को छोड़ना उसके लिये दु:साध्य, असाध्य नहीं हैं। संक्षेप में यह हुआ विस्तार से आगे देखेंगें।

बोलो श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

(167)

मन की तरंगें बांध ले

महानुभाव !

पहली बात कही-कि असंगतं-यहाँ असंगत का अर्थ लिया जो अनुकूल नहीं प्रतिकूल हो, अनर्थरूप से अनर्थता कौन सी हो सकती है एक तो होता है संगीत। संगीत शब्द संगत से बना है, और संग शब्द जो चलता है वह इस प्रकार से जैसे-एक स्वर, एक लय, एक साथ तालमेल, आप कहते हैं कि इनसे संगत/तालमेल नहीं बैठ रही है। तो मानस असंगत मन की हमारी आत्मा व शरीर के साथ जब संगति नहीं बैठती है तब वह मन नि:संदेह हमारे लिये दु:ख का कारण बन जाता है। मन एक ऐसी बीच की सीढ़ी है, बीच की कड़ी है जो आत्मा के भी निकट है और शरीर के भी निकट है अन्य कोई इसके अलावा बीच की चीज नहीं है जो हमारे बीच में रहकर एक बिचौलिया का काम करे, मन आत्मा के निकट इसलिये है कि कई बार व्यक्ति मन की परिणति व आत्मा की परिणति में भेद नहीं कर पाता। हम आपसे पूछें आप भगवान की पूजा भक्ति, धर्मध्यान, स्वाध्याय करते हैं तो वह आप मन लगाकर करते हो या ऐसे ही, तो कहोगे-मन लगाकर के करते हैं, फिर कहते हैं हमारे परिणाम नहीं लग रहे चित्त नहीं लग रहा। तो परिणाम होते हैं आत्मा में, मन को लगाया जाता है ऐसा क्यों ? परिणाम आत्मा में होते है क्योंकि आत्मानुभूति होती है। यदि आत्मा में परिणाम नहीं हो तो मन वचन काय का व्यापार सब व्यर्थ है तो आत्मा की परिणति को शुद्ध करना है। आत्मा की परिणति शुद्ध कैसे हो ? आत्मा की परिणति शुद्ध शरीर की क्रिया के माध्यम से भी होती है, वचनों के माध्यम से भी होती है और मन के माध्यम से भी होती है।

जैसे किसी बर्तन में पानी भरा है बर्तन तो मान लें शरीर। जो पानी भरा है वो मान लें चेतना के प्रदेश। उस पानी में कुछ पुष्प खिल रहे हैं, खिलते हुये पुष्पों को वचन मान लें उस जल में कोई जलचर जीव भ्रमण कर रहा है तुम्हें मालूम नहीं पुष्प जल के थोड़ा ऊपर है। यद्यपि उसकी जड़ नीचे है वह पात्र उसमें उसकी जड़ छू रही है, तो वचन आत्मा से शरीर से दोनों से अनुस्यूत हैं किन्तु वह बार-बार आत्म प्रदेशों को नहीं छू रहा, वह पुष्प हिलता है तो पानी भी हिलता है, वचन के माध्यम से युगपत् प्रवृत्ति भी होती है यदि बर्तन को पकड़ कर हिलायें तब भी जल हिलता है, शरीर के माध्यम से भी परिस्पन्दन होता है, और यदि उस जल में रहने वाला कोई जलचर है मान लो उस पानी में मछली भी है तो मछली चल रही है, तब भी जल हिल रहा है, तो मछली उस जल के ज्यादा समीप है, जो पात्र है उसमें पानी भरा हुआ है वह बाहर से है, बाहर की ओर आत्म प्रदेश दिखाई नहीं देते अंदर की ओर लगे हैं, तो मन उसमें रहने वाली मछली की तरह से है, वह मछली जल में डूबी हुयी है वह बाहर से दिखाई नहीं देती, पात्र बाहर से दिखाई

देता है, शरीर अपना बाहर से दिखाई देता है, कुछ जल हवा से ऊपर उठता है, तो पुष्प पानी में डूब भी जाता है, तो यह अन्तर्जल्प से होने वाला वचन योग है। कभी ऊपर दिखाई देता है तो वह प्रकट में बोले गए वचनों के द्वारा होने वाला वचन योग है। पात्र जो शरीर है वह हमेशा दिखाई देता है। जब वचन बोलेंगे तब बाद में कुछ काम करेंगे और मन दिखाई देता ही नहीं हैं जलचर मछली पानी में डूबी हुयी है दिखाई नहीं दे रही इससे सिद्ध होता है जो जलचर मछली है जो नीचे जाती है तो तल को स्पर्श करके आती है ऊपर रहती है तब आत्मप्रदेशों को स्पर्श करती है जब वह मछली उस पात्र का स्पर्श कर रही है तब भी जल का स्पर्श कर रही है उससे अलग नहीं है और जल में तब भी स्पर्श कर रही है। और मछली जब चलती है तो उसमें खिले पुष्प भी हिलते हैं तो वह सबका स्पर्श करती है वही एक स्थिति है जब सब जगह उसका साम्राज्य हो सकता है। वह मछली कभी पात्र को भी छू रही है, कभी जल को भी छू रही है। पुष्प को भी छू रही है संग में यदि दूसरी मछली भी हो तो उसका भी संस्पर्श उससे हो सकता है। तो महानुभाव ! ऐसे ही हमारी चेतना में एक प्रवृत्ति है, दरअसल में हमारा पात्र शांत बैठा हुआ है, हमारा शरीर शांत बैठा है आँख बंद करके पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठ गये और जो पुष्प खिल रहे माना कि वचन से पुष्प झर रहे हैं वचन बोले तो जैसे चन्द्रमा से अमृत झरता है ऐसे झरें तो वह भी यदि निकले या नहीं निकले वे शांत भी रह सकते है किन्तु इसके बावजूद भी चेतना के प्रदेशों में मछली तहलका मचा सकती है। मन जब असंगत होता हैं। तो शरीर शांत भी हो जाये मुंह से कुछ भी न बोलो तब भी आत्मा में उथल-पुथल मची रहती है। यह मन बहुत आवेग, आवेश का कारण बन जाता है शरीर जब गर्म होता है तब भी हो सकता है कि मन शांत चला रहे, चेतना के प्रदेश शांत बने रहे, कोई व्यक्ति ऐसा भी हो सकता है कि शरीर में बहुत प्रतिकूलता हो, ज्वर आ गया, या अंग भंग हो गया फिर भी वह धैर्यवान हो सकता है, व्यक्ति यदि बोल रहा है, पुष्प झर रहे हैं, दिव्य ध्वनि खिरती जा रही-तब भी उसका चित्त शांत हो सकता है, किन्तु जब चित्त अशांत है तब आत्मा के प्रदेश में कोई जल को ठहराव नहीं मिल सकता, हो सकता है पात्र आपका गमन कर रहा है और पानी की एक बूंद भी बाहर न छलके पानी हिले नहीं, इतना सावधानी से लेकर जा रहा है। पात्र तो गति कर रहा है किन्तु जल गति नहीं कर रहा, जब ये पात्र दिशा-विदिशा में हिले तो जल में गति हो सकती है किन्तु पात्र को व्यक्ति इतनी सावधानी से उठाये कि जल न हिले संभव है, और कदाचित् ऐसा भी हो सकता है कि व्यक्ति पुष्प को थोड़ा सा छुए यानि वचन कम बोले तो ऊपर-2 अर्थात् आत्मा के प्रदेश यानि जल कम स्पंदन करे ये भी संभव हो सकता है किन्तु मन रूपी मछली थोड़ी भी इधर-उधर जायेगी तो पानी तो हिलेगा ही हिलेगा। इसलिए यदि कोई चीज आपको प्रतिकूल लगती है उसे शरीर तक लो, तो ज्यादा हानिकारक नहीं है, उसे वचनों का जवाब तन से देते हो जैसे कोई तितली तन पर बैठी बस थोड़ा

सा हिला तितली उड़ गयी तो आत्मा में ज्यादा हानि नहीं हुयी किन्तु जिसने उठाकर मछली को कंकड़ मारा तो आत्मा के सब प्रदेशों में खलबली मच जायेगी। जल में भले ही आटा भी डाल दिया तो जल में तरंग पड़ जायेगी, आत्म प्रदेश में खलबली बच जायेगी। आटा फेंको या कंकर, मन जब असंगत होता है तो चेतना आकुल-व्याकुल हो जाती है और जब मन को बांध लिया मन संगत कर लिया, देखो! साधकों ने ये नहीं कहा की शरीर को बांध कर रखो, साधना करने के लिये हाथ-पाँव बाँधना जरूरी नहीं साधना के लिये मुँह पर पट्टी बांधना जरूरी नहीं है साधना करने के लिये मन को बाँधना जरूरी है शरीर को सांकलो से बांधा जा सकता है, रस्सों से बांधा जा सकता है जीभ को बांधने के लिये मुँह में पट्टी बांधो कि बोल ही न पाओ पर मन को कैसे बांधोगे साधना है मन को बांधना। शरीर को बांधने पर साधना नहीं होती और वचनों को रोकने से साधना नहीं होती साधना होती है मन को रोकने से-

मन की तरंगें बांध ले बस हो गया भजन।
आदत बुरी सुधार ले बस हो गया भजन॥

बस ये भजन है, तुम्हारे चित्त रूपी जल में हलचल पैदा न हो, उसमें भूचाल, तूफान न आये। जब अंदर में हाहाकार मचा है तब बाहर की शांति, शांति नहीं कहलाती और जब अंदर में शांति हो जाये तो बाहर से गमन करके कहीं से कहीं पहुँच जाये और पुष्प खूब हिलते रहें, तितलियाँ खूब बैठती रहें, भंवरे मंडराते रहे, ऊपर भंवरों के मंडराने से आत्मा में क्षोभ उत्पन्न नहीं होता, क्षोभ तभी उत्पन्न होता है जब कहीं तुम्हारे मन पर प्रभाव पड़े, उस जल में बैठी मछली ऊपर बैठे भंवरे व तितली को देखती है सोचती है कहीं मेरे ऊपर वार न कर दे, बचाव के लिये जब दौड़ती है तो चित्त चंचल हो जाता है, तो महानुभाव ! तीनों की परणति अलग-अलग है तीनों जल से अनुस्यूत हैं। जल पात्र में है, जल में कमल खिल रहे हैं और जल में जलचर जीव मछली आदि भी है। तो हमें जल की शांति करना है, जल की शांति के लिये हमारे आचार्य महाराज उमास्वामी जी महाराज ने लिखा-**''काय वाङ्मनः कर्म योगः'' 'स आश्रवः'** मन वचन काय के परिस्पंदन से आश्रव होता है फिर बंध होता है। तो क्या करें ? बोले चलती मछलियों को रोका नहीं जा सकता सबसे पहले पात्र को स्थिरता दो, उसके बाद में जो पुष्प खिल रहे हैं जो हिलते हैं उन्हें थोड़ा बांध दो जिससे उसमें (गति) न हो इसके उपरांत मछली के लिये ऐसा वातावरण स्थापित करो कि मछली को नींद आ जाये ये सोया मन जाग नहीं पाये, शरीर थक जाता है तो उसे सुलाते हैं थप्पी देकर माँ सुलाती है ऐसे ही मन भी थकना चाहिये, शरीर थकता है तो सरकार उसे इस्तीफा दे देती है सेवा निवृत्त हो गये अब शांत रहो, वचन बोलते-बोलते थक गये विश्राम दिया मौन का पालन करो, किन्तु मन की थकान को कोई क्यों नहीं समझता, मन को लोग विश्राम क्यों नहीं देते, मन को विश्राम देने का नाम ही है 'कायोत्सर्ग'। मन को विश्राम देने का नाम ही

है विरक्ति, मन को विश्राम देने का नाम ही है सन्यास, मन को विश्राम देने का नाम है–ध्यान। मन को विश्राम ही नहीं दिया जाता है भले ही आँखों को विश्राम दे दिया, आँख बंद करके तुम सोना चाहो मन तुम्हारा उथल-पुथल मचा रहा है, नींद नहीं आयेगी, मौन भी तुमने ले लिया आँख बंद कर ली शरीर पड़ा है मुर्दा सा पर मन में उथली-पुथली मची है तो नींद नहीं आयेगी, वचनों से बोल नहीं रहे, पर बोलने का विकल्प आ रहा है। तो तब भी वचन योग चल रहा है अंतर जल्प के माध्यम से। मौन तो वह है कि अंतर जल्प भी न चले और मौन का आशय वह है कि जो मौन हमारे आत्मा के प्रदेशों को विपरीत दिशा में परिस्पंदन कराने के लिये मजबूर कर रहा था, उससे मौन लेना जरूरी है, सही दिशा में कर रहा तब तो कोई बात नहीं, वह मन की मछली बार-बार नीचे जाती है और नीचे जमीं कीचड़ को बार-बार उचटा देती है। जिससे चेतना अशांत हो जाती है। और यदि मन की मछली ऊपर सतह तक तैरती रहे तो नीचे की कीचड़ न जमेगी शांत हो जायेगी, और जल शांत हो गया, चेतना का जल शांत है, मन शांत है तब जो आनंद आयेगा वह आनंद अन्य किसी प्रकार से नहीं आ सकता। हमारे चित्त का जल समल न हो पाये, यदि चित्त का जल समल हो जाता है तब चित्त में चित्र दिखाई नहीं देता, या चित्त का जल ऊष्ण हो जाता है उस पात्र में रखे पानी को उबालने लगो तो ज्यों-ज्यों उबलेगा मछली ज्यादा दौड़ लगायेगी तो हमारा मन ज्यादा घूमता है तो यहाँ कह रहे हैं मन को सेट करना है मन जो असंगत हो रहा है उसे बैलेंस करना है डिस्बैलेंस हुआ तो दु:ख है, पतन है, आपत्ति है, विपत्ति है, क्लेश है। डिस्बैलेंस व्यक्ति को कभी शांति मिल नहीं सकती। बैलेंस ही नीति है, न्याय है, धर्म है, ध्यान है, सामायिक है, संवर है, निर्जरा है। डिस्बैलेंस नहीं होना। डिस्बैलेंस गाड़ी जब होती है तो ये नहीं कि वो दांयी ओर मुड़ें, बायी ओर डिस्बैलेंस होगी तब गिरेगी। डिस्बैलेंस का रास्ता तो वास्तव में कोई रास्ता ही नहीं है-बौद्ध ने इसलिये कहा-कि महावीर का मार्ग तो बहुत कठिन है मैंने उसको अपना कर देख लिया, मैं तो एक-एक चावल का आहार लेकर के रहा, छ:-छ: महीने के उपवास किये, केशलोंच किया, भूमि पर शमन किया सब कुछ किया पर महावीर का मार्ग तो बहुत कठिन है फिर-शंकराचार्य का मार्ग लो-नहीं-नहीं उसका मार्ग बहुत लूज है। इसलिये उस पर भी नहीं चलूँगा मैं तो मध्यम मार्ग निकालूँगा, तो बौद्ध ने मध्यम मार्ग निकाला, ऐसे ही वर्तमान काल में कई व्यक्ति डिस्बैलेंस हो जाते हैं। चाहे कोई तो व्यवहार में ज्यादा झुक गया, चाहे कोई निश्चय में ज्यादा झुक गया, अति कोई भी मार्ग नहीं है मार्ग अति के परे होता है।

एक बौद्ध भिक्षु अपने बौद्ध गुरु से दीक्षा लेकर प्रचार प्रसार के लिये अपने अग्रज ज्येष्ठ दीर्घ काल के दीक्षित वृद्ध भिक्षु के साथ गया। दोनों प्रभावना हेतु प्रचार प्रसार करने के लिये गये। वह जो वृद्ध था अपने आप को सब कुछ मानता और अनुज को तुच्छ सा मानता। छोटा सोच रहा था

मैं तो नया हूँ मुझसे गलती हो सकती है जैसा बड़ा कहेगा वैसा ही करूँगा, किन्तु फिर भी छोटे को बड़े की कुछ क्रियायें अच्छी सी नहीं लगती थी, कभी कहीं वचनों में अहंकार, क्रियाओं में कुछ अलग ही दिखावा, चेहरे के भाव अच्छे नहीं लगते थे, पर कहता कुछ भी नहीं था। जब वह प्रचार करके दोनों लौट रहे थे नदी के किनारे से आ रहे थे संयोग की बात, नदी किनारे पर एक छपाक की आवाज सुनी, यह आवाज वृद्धभिक्षु और युवाभिक्षु दोनों ने सुनी, दोनों ने मुड़कर देखा पर युवा देखकर रह नहीं सका और नदी में छलांग लगायी उस वृद्ध ने भी देखा तो उसे लगा तो था कि नीले-पीले कपड़े में कोई गिरा अवश्य है पर युवा तो कूद गया और नदी में से उठाकर कंधे पर रखकर ले आया। बौद्ध भक्षु देखता रह गया, कितनी सुंदर कन्या, मैंने इतनी सुंदरता अपने जीवन में कभी नहीं देखी। उसका शरीर स्वर्ण सा चमक रहा है यौवन से मदोन्मत्त यह रति है या शचि या कोई देव कन्या है बड़ा सोच रहा। यह युवा तो भ्रष्ट हो गया, भिक्षु आगे-आगे चला जा रहा, उस युवा भिक्षु ने उस कन्या को किनारे पर रखा वह थोड़ी देर बाद होश में आयी और उसे धन्यवाद देती है। वह बोला धन्यवाद की कोई बात नहीं मैंने तो अपने कर्त्तव्य का पालन किया। जो वृद्ध भिक्षु था जल्दी-जल्दी चला जा रहा था उसे जाकर शिकायत करनी थी। पहुँचा-बुद्ध के पास जाकर कहता है-आप भी कैसे-कैसे को दीक्षा दे देते हैं हमारे गुरु का कुल का नाम डुबायेगा। बौद्ध ने पूछा-कहो-क्या हुआ ? वह वृद्ध भिक्षु बोला हुआ क्या इतनी सुंदर, मैंने जीवन में कभी ऐसी नहीं देखी, युवती उसके सुंदर अंगोपांग क्या कहा जाये उसके बारे में, पर तुम्हारे नये चेले ने उसके साथ क्या-क्या नहीं किया मैं कुछ कह नहीं सकता, मैं तो इधर आ गया। बात तो बताओ-बात क्या, तुम्हारे नये चेले ने उसे छू लिया क्या-क्या किया, मैं नहीं कह सकता-वह इतनी सुंदर कोई रह जाये ऐसे कैसे हो सकता है, उसे तो पानी में से निकाल कर लाया, ये तो भ्रष्ट हो गया, यदि इसको आपने संघ से नहीं निकाला तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा, ठीक है। तब तक मैं युवा से पूछ कर आता हूँ क्या बात है ? वृद्ध भिक्षु ने जो अपनी आँखों से देखा उन आँखों का सत्य कह रहे है तुम अपनी बात कहो-वह बोला-मुझे पीछे से छपाक की आवाज सुनायी दी मैं कूद गया और उसमें जो कोई भी था उसे निकाल कर ले आया और किनारे रख दिया जैसे ही होश आया तब उससे बस इतना कहकर कि ये मेरा कर्तव्य था, उसका मैंने पालन किया है, उन्होंने मुझे 100-700 बार धन्यवाद दिया। वह युवती थी इन वृद्ध भिक्षु की दृष्टि में भी आ गयी मैं तो उसे किनारे पर छोड़कर आ गया, मुझे नहीं मालूम कि वह युवती थी, कि युवा था, देवमाया थी, उसके बाद मैं तो ये सोच रहा था कि जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा कर वृद्ध पुरुष के साथ आ जाऊँ नहीं तो मैं अकेला रह जाऊँगा। बौद्ध ने कहा ठीक-वृद्ध से कहा-खड़े हो जाओं-वह खड़ा हो गया, कहा-या तो प्रायश्चित मांगो या फिर संघ छोड़कर चले जाओ। ओह ! मैं समझ गया, इस संघ में अन्याय होता है, पक्षपात होता है, गलती उसने की, प्रायश्चित मुझे दिया जा रहा है।

गलती तुमने नहीं की ये मत कहो, गलती तुमने की, उस युवा ने लड़की को निकाल कर रख दिया, उसे पता भी नहीं कि युवक है या युवती, तू उसके एक-एक अंगोपांग को देख रहा है तेरे मन में अभी भी वह युवती बैठी है, तू पूरे रास्ते भर उसे मन में बिठा कर लाया, रास्ते भर तूने विषय वासना के माध्यम से काम सेवन भी किया है भावों के माध्यम से, तू प्रायश्चित का भागीदार है, तू भ्रष्ट हो गया, तू च्युत हो गया। तब उस वृद्ध को पश्चाताप हुआ, बुद्ध ने उसे समझाया कि अति में कहीं धर्म नहीं होता, तुम्हारे अंदर दया ही नहीं कि व्यक्ति जी रहा है या मर रहा है, यदि कोई पकड़ कर ही बैठ जाता तो वह धर्म से च्युत हो जाता पर उसने नदी से निकालकर अलग उठा कर रख दिया तो वह अल्प प्रायश्चित का भागीदार हो सकता है। जब उसके मन में विकार नहीं आया, जब करुणा का भाव है, कृपा करने का भाव है। विकार रहित मन, करुणा, दया का भाव होने से इसे प्रायश्चित नहीं दिया।

तो बात ये है मन की असंगति का नाम है-डिस्बैलेंस। यदि मन अति में ज्यादा चला जाये तो उस अति में कोई नीति नहीं होती अति में तो इति होती है, जिसने भी की अति, उसकी इति हो गयी-किसी ने कहा-

''अति सर्वत्र वर्जयेत्'' "Access of Everything is bad." अति त्याज्य होती है तो महानुभाव यहाँ पर भी यही बात कही-किमनर्थ-सबसे बड़ा अनर्थ है-अति। मन का डिस्बैलेंस हो जाना ही अति है, जो अपने मन को थाम कर रखता है, जिसका मन अति में नहीं जाता ऐसे व्यक्ति के जीवन में कभी अनर्थ नहीं हो सकता। जब-जब भी हमारा मन किसी भी अति पर पहुँच जाये, त्याग की अति पर, चाहे राग की अति पर चाहे खाने की अति पर, चाहे छोड़ने की अति पर, चाहे बोलने की अति पर, चाहे मौन की अति पर और चाहे सहने की अति पर चाहे करने की अति पर अति ही अनर्थ है, अति ही पाप है। जब मन संतुलित होकर चलता है, जब मन कभी असंतुलित नहीं होता, तो वह मन अपनी मंजिल को प्राप्त कर लेता है, वीणा का तार है। वीणा के तार का टाईट करना जरूरी है तभी आवाज निकलेगी, यदि ढीले छोड़ दिये जायेंगे तो आवाज नहीं निकलेगी परंतु ये भी निश्चित है कि ज्यादा टाईट करने पर टूट जाते हैं हमें भी अपनी वीणा के तार को ज्यादा नहीं कसना है एक बार भोजन करके तो काम नहीं चल रहा संकल्प ले रहे हैं भगवान दान उपवास करेंगे तो जितनी सामर्थ्य है उससे थोड़ी कम करोगे तो जीवन में संक्लेशता कम बनेगी। शरीर को पत्थर सा बनाकर रहना अलग चीज है यदि चित्त में संक्लेशता बन रही है तो बाहर की तपस्या कर्म को क्षय करने वाली नहीं होती, शरीर को क्षय करने वाली होती है। हमें शरीर को जीर्ण नहीं करना है कर्म को जीर्ण करना है वही निर्जरा है। तो महानुभाव ! असंगत का अर्थ समझ में आ गया-कि सबसे पहले हमें मन की संगत ठीक करनी है मन चंचल न हो मन रूपी मछली न चले, पुष्प न हिले।

दूसरी बात कह रहे-सुखदायक चीज क्या है संसार में ? सुख का कारण है ''मैत्री भाव''। और मैत्री भावना का प्रादुर्भाव होता है मित्र से। मित्र नहीं तो मैत्री भाव नहीं। माँ का मातृत्व भाव जब उमड़ता है जब उसकी गोदी में बालक हो। माँ की गोदी में बालक रहे तो आंचल में भी दूध आ जाता है, तो जैसे बालक होने पर मातृत्व भाव आता है वैसे ही मित्र होने पर मैत्री भाव उमड़ता है, मित्र कहाँ से लायें, किसे बनायें? पर को और स्व को दोनों को मित्र बनाओ चार भावनाओं में मैत्री भावना सबसे पहले क्यों रखी ? इसलिये रखी क्योंकि संसार में जितने भी अनंतानंत जीव हैं उन सभी के प्रति हमारा मैत्रीभाव हो यहाँ तक कि मैं अपने आप से भी मैत्री भाव रखता हूँ अपनी आत्मा का जीवन में कभी घात नहीं करूँगा, जैसे मित्र का कभी घात नहीं किया जाता, मित्र के साथ विश्वास घात नहीं किया जाता ऐसे ही मैं अपनी आत्मा के साथ विश्वास घात नहीं करूँगा, क्योंकि मैंने अपनी आत्मा से भी मैत्री की स्थापना कर ली है। मैंने अपनी आत्मा को वचन दिया है कि मैं तुझे कभी धोखा नहीं दूँगा, कभी छलूंगा नहीं, तेरा हित करने का भरसक प्रयास करूँगा, मैत्री संसार के समस्त प्राणियों से यहाँ तक कि खुद से भी की जा सकती है और जिसकी संख्या ज्यादा होती है उसका नाम पहले लिया जाता है, यदि दो पार्टी है तो जिस पार्टी के मैम्बर ज्यादा होंगे उस पार्टी का नाम पहले लेंगे और कम वाली का बाद में, तो सबसे ज्यादा मैम्बर हैं मैत्री पार्टी के। संसार के समस्त जीवों से, अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठियों से और अपनी आत्मा से भी मैत्री की जा सकती है ''सत्वेषु मैत्रीं'' और आप प्रतिक्रमण में पढ़ते भी हैं-

''खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्वभूदेसु, वैरं मज्झं ण केण वि॥

संसार के समस्त जीवों के प्रति मेरा मैत्री भाव हो। दूसरी भावना सामायिक पाठ में कही ''गुणिषुप्रमोदं'' प्रमोद भावना कह देते। मित्र को देखकर ही मन खिलता है बिना मित्र को देखे मन नहीं खिलता जहाँ मैत्री भावना होती है वहीं प्रमोद भावना होती है। मित्र को देखते ही प्रकृष्ट मोद आता है और गुणीजन हमारी दृष्टि में सभी गुणीजन हैं सिर्फ हमारी आत्मा को छोड़ के। हम अपने आपको गुणी नहीं कह सकते और सबको गुणी मानते हैं इसलिये उन्हें देखकर मुस्कराते हैं और कदाचित् यदि अहंकार भाव न आये तो व्यक्ति अपने गुणों को देखकर भी मुस्करा सकता है।

क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्-और उनसे कम जीव हैं जो दुखी हो रहें है, धर्म से दूर हैं, चाहे हँस रहे हो ठहाका मार रहे हों, फिर भी हमारी दृष्टि में वे क्लेश से युक्त हैं, उन पर कृपा करना जरूरी है। किसके ऊपर जो रो रहे हैं उनके ऊपर नहीं, अभी उनके ऊपर कृपा जरूरी है जो आर्त्तरौद्र ध्यान में ठहाका मार कर हँसे। जो धर्मध्यान के साथ हैं, शुक्ल ध्यान के साथ है उन पर

करुणा कृपा दया नहीं करनी वो तो तुम पर कृपा कर रहे हैं, वे कृपा के पात्र नहीं हैं, तो कृपा, दया के पात्र तो वे ही हैं जिनका जीवन आर्त्त रौद्र ध्यान के साथ व्यतीत हो रहा है। जो संसार के विषय भोगों में ही अपने जीवन को व्यतीत कर रहा है उसकी मौत पर ही वास्तव में रोना आता है, उसकी मौत सोचने के योग्य होती है, किन्तु जो व्यक्ति धर्म ध्यान के साथ आत्मा में लीन होकर के शरीर को छोड़ता है उसके मरण का क्या शोक ? वह तो मुक्त बंधन हीन है। जिसका जीवन संसार के भोगों में ही भोग्य हो गया, उसका मरण ही सोचने के योग्य होता है, शोक पूर्ण होता है।

तो महानुभाव !-''विपरीत वृत्तौ माध्यस्थभावं''-विपरीत वृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थ भाव है हम नहीं कह सकते कि लोग हमारे विपरीत हैं लोग हमसे कह दें कि हम तुम्हारे विपरीत हैं बताओ तुम क्या कर लोगे ? विपरीत हैं तो ठीक है हम तो विपरीत उसे मानते हैं जो अपनी आत्मा का कल्याण नहीं कर रहा, जो अपनी आत्मा का कल्याण कर रहा है वह हमसे बोले चाहे न बोले, हमारे पास आये चाहे न आये यदि धर्म के अनुकूल है तो हमारे विपरीत नहीं हो सकता, जो धर्म के विपरीत है वह वास्तव में विपरीत है वह हमारे अनुकूल भी हो जाये फिर भी विपरीत रहेगा। महानुभाव ! व्यक्ति प्रेम से दबता है आप कहेंगे प्रेम से कब दबता है ? प्रेम कब उमड़ता है ? आकाश में प्रेम के बादल कब होते हैं? मालूम है पहले भीषण गर्मी पड़ी तो वाष्प बनकर पानी उड़े फिर थोड़ी सी शीतलता मिली तो वाष्प के कण हो जाते हैं। प्रीत कब उमड़ती है ? पहले चित्त में अशांति हुई, फिर चित्त को विश्वास हो जाये कि ये मेरे लिये हितकारी है तब प्रेम उमड़ता है। जब तक व्यक्ति ने उपेक्षा सहन नहीं की, संघर्ष का सामना नहीं किया प्रतिकूलताओं को नहीं देखा तब तक वह किसी से प्रेम नहीं कर सकता है। प्रतिकूलता को देखकर कोई मुस्करा गया तो जीवन भर उसकी एक मुस्कराहट देखने के लिये तरसता रहा, नहीं मिली इसलिये उसकी मुस्कुराहट को देख अपना दिल उसे दे बैठा। किसी ने मुझसे जीवन में प्यार के दो शब्द नहीं बोले, मैं जीवन भर गालियाँ सुनता रहा आज तूने प्यार से दो शब्द बोले ये जीवन तेरे लिये समर्पित करता हूँ। तो पहले प्रतिकूलता का ताप सहन किया, उसके बाद कहीं शीतलता का भाव आया हो तो प्रेम का सागर उमड़ने लगता है। प्रेम के बादल छा जाते हैं बिना आतप के बादल बनते ही नहीं, आतप के साथ पुनः शीतलता आ जाये तो (मिश्र प्रकृति होने से) आकाश में घने बादल छा जाते हैं। घनी मानसून कब आता है ? जब कसकर गर्मी पड़े फिर यकायक थोड़ी शीत आ जाये तो मिश्र प्रकृति होने से पानी उठता है। पुनः बादल बनते चले जाते हैं, ऐसे ही चित्त में पहले खूब दुःख है, कोई व्यक्ति तुमसे खूब बैर बांधकर बैठ गया तुमसे खूब लड़ा, झगड़ा तुम्हारे प्राण लेने को तैयार हो गया, जब उसने पूरी कसर निकाल दी, जब उससे उसका अहित हो गया अब वह तुम्हारे ही पैर पकड़ कर रोने लगा। मुझे बचा ले-2 अब क्यों ? अब तो अन्य सभी उसे मारने

को तैयार हैं। उसे लगता है बस यही मुझे बचा सकता है। तो उसी की शरण में आकर गिर पड़ा अब मैं मरूँगा नहीं तू मार दे मुझे क्योंकि मैं तुझे मारने का प्रयास कर रहा था तू मुझे मार दे मुझे शांति मिलेगी, मेरा कृत्य सबको ज्ञात हो गया, रंगे हाथ पकड़ा गया हूँ, मेरी सजा निश्चित है, तो वह उसके पैर पकड़ कर रोता है।

महानुभाव !

प्रेम का सागर तब उठता है जिसने 'ना' का ताप सहन कर लिया हो, जिसने उपेक्षा का भाव सहन कर लिया हो, जिस व्यक्ति को कहीं सामने प्रेम का दर्शन हो जाये तब उसका प्रेम भी उमड़ने लगता है। सागर में कितना ही पानी भरा हो उमड़ता थोड़े ही है, एक माँ के हृदय में कितना भी स्नेह भरा हो किन्तु उमड़ता नहीं है। उमड़ने के लिये कुछ न कुछ तो चाहिये। चंद्रमा जब पूरा होता है तब पूर्णचन्द्र को देखकर के समुद्र मचल जाता है। उससे मिलने के लिये उसमें ज्वार भाटा आ जाता है जब तक चन्द्रमा अधूरा होता है तब तक समुद्र में ज्वारभाटा नहीं आता पानी उछलता नहीं है। वह सोचता है लपक करके चन्द्रमा को अपने आगोश में लूँ किन्तु छिपा नहीं पाता इतनी लहर उठती है।

पूर्णमासी के आस-पास समुद्र में बहुत अधिक लहरें आती है ? इतनी लहर अमावस्या को नहीं आ सकती, तो महानुभाव! प्रेम उमड़ता है सामने प्रेम को देखकर के और ऐसे प्रेम नहीं उमड़ता। व्यक्ति विद्रोहियों के बीच में रहे तो विद्रोही बनेगा वहाँ से निकल करके किसी युगल को देखे, किसी प्रेम को देखे उसके मन में भी प्रेम के बीज अंकुरित होने लगेंगे। जब आकाश में बादल छाये हुये हों, तो जमीन में पड़ा हुआ बीज सामने की नमी को देखकर के अंकुरित होने लगता है। आकाश में बादल नहीं हों, सूखी मिट्टी पर डाल दो बीज तो वह अंकुरित नहीं होता है मौसम में नमी आने से ही अभी बारिश हुयी नहीं उसे देखकर के उसे आशा बंध गयी तो वह बीज अंकुरित हो जाता है, ऐसे ही सामने वाले व्यक्ति को देखकर के, धर्मात्मा को देखकर के, प्रेम की बहती हुयी सरिता को देखकर के, दूसरे के चित्त में भी प्रेम का सागर हिलोरें लेने लगता है। तो महानुभाव ''सुखा वहा मैत्री'' मैत्री का स्त्रोत ऐसे नहीं बहता, और बिना मैत्री के प्रीति नहीं होती, और मैत्री व्यक्ति जब करता है जब किसी न किसी से भीति होती है जब भीति होती है तब प्रीति करता है। मित्र जब बनाये जाते हैं जब किसी व्यक्ति के मन में भय हो, संसार शरीर भोगों से हम दु:खी हो गये, जाग गये, अनंतकाल से दु:खी होते जा रहे, अनंत जीवों को दु:ख दिया, अनंत जीवों से दु:ख पाया किन्तु अब उनके प्रति मैत्री होने लगी क्योंकि अब उनसे भय जाग्रत हो गया, कौन सा जीव कब आकर के मुझसे बैर निकाल ले, जिससे भीति थी अब उससे प्रीति हो गयी, तो महानुभाव ! जब सच्ची प्रीति हो जाती है तब फिर मित्रता होती है, सच्चा प्रेम

देने में आनंद का अनुभव करता है, सच्चा प्रेम कभी कुछ लेता नहीं है सच्चे प्रेम के लिये कुछ लेना उसमें व्यवधान डालना है, सच्चा प्रेम केवल जीवन में देना ही देना जानता है, लेना जानता ही नहीं है और जब देना-लेना दोनों होते हैं तो प्रेम न होकर के व्यापार बन जाता है प्रेम तो केवल अंधा होता है समर्पण जानता है, देना जानता है। प्रेम ने कभी जीवन में हाथ नहीं फैलाये। प्रेम कभी जीवन में याचक नहीं बना प्रेम तो सबसे बड़ा दाता है लुटाता है इतना देता है कि सरस्वती का भण्डार भले ही खत्म हो जाये किन्तु प्रेम देने वाला का भण्डार कभी कम नहीं पड़ता है, ज्यों-ज्यों प्रेम लुटाता है त्यों-त्यों उसे आनंद की अनुभूति होती है।

महानुभाव ! प्रीति ये बात ठीक है कि प्रीति भय से होती है इसके प्रमाण में गोस्वामी तुलसी दास जी ने लिखा-

भय बिन प्रीत होय नहीं देवा।
लाख करो बेरी की सेवा।।

भयानक विपत्ति में व्यक्ति मित्र खोजता है, फिर वह प्रीति किसी न किसी से स्थापित करता है, जब तक भीति नहीं है तब तक प्रीति नहीं होती। तुम्हें जब संसार शरीर भोगों से भीति नहीं होगी तो सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्रीति भी नहीं होगी, देव शास्त्र गुरु से प्रीति भी नहीं होगी, जिसकी देव शास्त्र गुरु के साथ प्रीति है निःसंदेह मानिये उसे संसार शरीर भोगों से भीति है। दुःखों से भीति होगी तभी सुखों से प्रीति होगी। प्रीति कैसे हो ? मनुष्यों में उदाहरण मिलना कठिन है-

जो सारस युगल होता है जब एक का वियोग हो जाये तो दूसरा भी अपने प्राण को दे देता है। ऐसे उदाहरण इंसानों में कम देखने में आते है। हो सकता है हों किन्तु फिर भी कम, यदि इंसान में होगा तो कहीं न कहीं स्वार्थ होगा।

एक मृगयुगल पानी की तलाश में ग्रीष्मकाल में यहाँ से वहाँ दौड़ रहे थे, पानी नहीं मिला, नदी किनारे दौड़ रहा है फिर भी नहीं मिला-देखा तो मृगमरीचिका है। मूच्छा खाकर गिर पड़ा, पुनः थोड़ा सा होश आया, फिर खड़ा हुआ फिर चला, जब तक इन्द्रियों में, मन में, प्राणों में दमखम होती है तब तक वह व्यक्ति पुरुषार्थ करता है और यदि दमखम होते हुये भी पुरुषार्थ न करें तो वह आलसी कहलाता है, तो मृग युगल पानी की खोज में इधर-उधर दौड़ रहा, सूर्य अस्त हो गया किन्तु पानी कहीं नहीं मिला। दोनों अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए दौड़ते-दौड़ते एक नगर के निकट पहुँच गये। उस नगर में पानी कुयें के माध्यम से भरा जाता था, ग्रीष्म काल का समय था, ग्रीष्मकाल में पानी सूख जाता है, कुयें के आस-पास भी सूखा सा पड़ा था। उसी कुयें के आस पास वर्षाकाल में कीचड़ रहती थी और शीतकाल में भी कीचड़ थोड़ा-बहुत पानी रहता था किन्तु ग्रीष्मकाल में सूखा ही सूखा रहता है। ग्रीष्मकाल में पनिहारिन पानी भरने के लिये भी जाती है तो सुबह या शाम जल्दी उठकर के जब तक धूप न हो तब तक, या सूर्य अस्त के बाद।

तो कुछ पनिहारिन पानी भरने के लिये गयी 8-9-10 बजे के आसपास गयी होंगी, तो कुयें का जो पाट होता है बर्तन रखने से थोड़े से गड्ढे से पड़ जाते है उस समय तत्काल ही पानी भर करके ले गयी थी, तो पानी सूख नहीं पाया, एक गड्ढे में थोड़ा सा पानी था एक घूंट पानी। वह मृगयुगल दौड़ता हुआ उस ग्राम के समीप आ गया कुयें के आस-पास चक्कर लगाने लगा देखने लगा दोनों के प्राण कण्ठ में आ गये क्या करें, कैसे करें ? उस गढ्ढे में थोड़ा सा पानी देखा तो मृगी कहती है, मृग से हे प्राणनाथ ! हे मेरे हृदय के देवता! आप यह जल ग्रहण करो, मृग कहता है-हे प्रिये-तुमने अपने कर्त्तव्य का पालन किया बहुत ठीक किन्तु मैं पुरुष हूँ मृग हूँ, नर हूँ नर की सामर्थ्य नारी से ज्यादा होती है, इसलिये मैं तो प्यास को सहन कर लूँगा पानी को पहले तुम पीओ मेरा भी कर्त्तव्य है पहले तुम्हारी प्यास बुझा कर ही अपनी प्यास बुझाऊँ। मृगी कहती है हे देव ! मैं ऐसा नहीं कर सकती, आप पानी पीलें मेरे प्राण चले भी जायें तो वह सार्थक हैं यदि आपने पानी नहीं पीया आपको कुछ हो गया तो मेरे प्राण टिक नहीं पायेंगें क्योंकि आप ही तो मेरे प्राणों के नाथ हो, आपको पानी पिलाना मेरा धर्म भी है आप मेरे परमेश्वर हो। हृदय के देवता यदि आकुल व्याकुल रहें तो चित्त में शांति कैसे हो सकती है। तो मृगी बार-बार निवेदन करती है किन्तु मृग-कहता है मैं तुझे पानी पिलाये बिना नहीं रहूँगा। दोनों के शरीर थक रहे थे, रात के लगभग 1 बजे की यह बात आपस में चर्चा करते रहे और 3-3.30 बजे के आस-पास वे दोनों बेचारे जमीन पर गिर पड़े और ऐसे गिर पड़े कि फिर उठ नहीं पाये दोनों के प्राण पखेरु उड़ गये, प्रात:काल ग्रीष्म का समय था, 5-5.30 बजे के आस-पास पनिहारिन पानी भरने के लिये आयी, देखती है उस मृग युगल को वह बड़ा सुन्दर छोना (शिशु) लग रहा है। एक पनिहारिन दूसरी पनिहारिन से पूछती है-

खड़ा दिखे न पारधी लगा दिखे न बाण।
कह सखी मृग युगल ने क्यों तज दीने प्राण ?॥

वह आपस में चर्चा कर रही हैं किन्तु एक सखी ऐसी भी थी जिसकी शादी अभी तीन दिन पहले ही हुयी थी और वह पगफेरे के लिये अभी-अभी ससुराल से मायके आयी हुयी है, मायके में सखियों से चर्चा कर रही है उसका पति उसके चित्त में विराजमान है आठो याम, हर क्षण आंखों में वही घूम रहा है किन्तु पगफेरे की वह रस्म है जिसके कारण मायके भी आना है शादी के बाद, बड़ी आकुल व्याकुल है, वह जानती है प्रेम को कि प्रेम क्या है, पीड़ा क्या होती है, और जब नया प्रेम होता है तब एक प्रेमी दूसरे प्रेमी को प्राण देने को तैयार होता है कहता है मैं तो कुछ हूँ ही नहीं बस तू ही तू है। थोड़े दिनों बाद जब प्रेम थोड़ा कच्चा पड़ता है तो कहते है तू भी समझदार, मैं भी समझदार-तू मैं नहीं हो सकती, मैं तू नहीं हो सकता थोड़ा और ज्यादा समय हो जाता है तो फिर उनमें होती है तू-तू-मैं-मैं पहले क्या होता है-तू ही तू, मैं तो कुछ हूँ

ही नहीं, बाद में मैं-मैं तू-तू उसके बाद में झगड़े प्रारंभ तू-तू मैं-मैं। तो महानुभाव-मृगयुगल का प्रेम ऐसा नहीं था वहाँ तो जो तू है सो तू ही है तू ही मेरे प्राण है, मृग कहता है तेरे प्राण मुझमें बसते हैं तेरे बिना मैं जी नहीं सकता मृगी कहती है आप मेरे प्राणों के नाथ हैं बिना आपके तो जीना असंभव ही है। जब दोनों मृत्यु को प्राप्त हुये सखियों ने आपस में चर्चा की कि यहाँ ना तो कोई शिकारी दिखाई दे रहा, इन्हें कोई बाण भी नहीं लगा फिर दोनों ने प्राण क्यों दिये तो नवोड़ा सखी उत्तर देती है-

पानी थोड़ा हित घना लगा प्रीत का बाण।
तू पी-तू पी कहत ही दोनों तज दीने प्राण॥

महानुभाव !

प्रेम ऐसा होता है कि प्रेम कभी भी अकेला खा ही नहीं सकता प्रेम किसी चीज को अकेला भोग ही नहीं सकता प्रेम तो सिर्फ देना-देना जानता है। जो आनंद खिलाने में हो वह खाने में नहीं। जिसके प्रति भक्ति होती है, समर्पण होता है उसे देने का मन करता है। महानुभाव ! हम यहाँ देख रहे थे-मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यस्थ भाव ये चार भावनायें है ये चारों भावनायें सुख की जननी हैं ''सुखावहा मैत्री''। मैत्री में चारों भावनाओं को लेना है मैत्री भी सुख का कारण है, प्रमोद भी सुख का कारण है, करुणा का भाव भी सुख का कारण है। अंतरंग में आनंद आता है और मध्यस्थ कोई व्यक्ति विपरीत चल रहा है। आप उससे लड़े नहीं वह समय टाल दिया जो उसे करना है करने दो, हमें इससे कोई हानि नहीं ऐसा सोचकर अपनी शांती बनायें रखें तो ही वह हमारे लिये सुख का कारण है। आगे अगली बात-

सर्वव्यसन विनाशे को दक्षः-सभी प्रकार की बुरी आदतों को छोड़ने में कौन दक्ष है **सर्वथा त्यागः**-जो सम्पूर्ण त्याग करने में समर्थ है। जो व्यक्ति त्याग कर सकता, समर्थ है। कभी-कभी त्याग आवेश में होते हैं, कभी-कभी त्याग जबरदस्ती कराये जाते है। और कभी-कभी त्याग अज्ञानता में होते हैं और कभी-कभी त्याग सहजता में होते हैं तो जो आवेश का त्याग है, वह त्याग त्याग का आनंद नहीं ले सकता, जो त्याग जबरदस्ती कराये जाते हैं उनमें त्याग का मन नहीं आता, उसमें मजबूरी की पीड़ा होती है और कोई त्याग अज्ञानता में होता है वह ज्यादा चलता नहीं है, सहजता के त्याग की नदी कभी सूखती नहीं है वह निरंतर बढ़ती रहती है। सहज त्याग की नदी सतत प्रवाही है, अन्य त्याग की नदी में कभी बाढ़ आती है, कभी सूख जाती है, कभी संहारक बन जाती है। वह सतत् प्रवाही नहीं हो सकती जो सब कुछ त्यागने में समर्थ है वही वास्तव में व्यसनों से मुक्ति पा सकता है। सम्पूर्ण त्याग करने की शक्ति पुरुष में ही है स्त्री यथाशक्य ही त्याग कर सकती है किन्तु सर्व त्याग नहीं कर सकती है। इसके आगे कल देखेंगे

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

समय का चेहरा

कोऽन्धो यो कार्यरतः, को बधिरो यः श्रणोति न हितानी।
को मूको यः काले, प्रियाणी वक्तुं न जानाति॥१६॥

यहाँ कह रहे है-**कोऽन्धोः**-अंधा कौन है ? **यो अकार्य रतः**-जो न करने योग्य कार्य करता है **को बधिरो**-बहरा कौन है ? **यः श्रणोति न हितानी**-जो हित की बात नहीं सुनता-**को मूको**-गूंगा कौन है ? **यः काले प्रियाणी वक्तुं न जानाति**-जो समय पर प्रिय वचन नहीं बोल पाता।

तो तीन प्रश्न यहाँ किये-अँधे से यहाँ कहना चाह रहे हैं-मिथ्यादृष्टि, बधिर से यहाँ कहना चाह रहे हैं-मिथ्याज्ञानी और मूक से कहना चाह रहे हैं-मिथ्या चारित्र। अर्थात् इन तीन से युक्त व्यक्ति ही अपंग है विकलांग है। जिसके पास दृष्टि है किसकी दृष्टि सम्यक्त्व की दृष्टि जिसके माध्यम से जानता है कौन सा काम मुझे करना है कौन सा नहीं करना चाहिये, इस प्रकार की दृष्टि से सहित सम्यक् दृष्टि वह वास्तव में नेत्रवान् है सम्यक्त्व ही सही नेत्र है यदि बिना सम्यक्दृष्टि के नेत्र हों भी तो वे नारियल के छेद की तरह है वास्तव में वे नेत्र सार्थक नहीं हैं। और ''बहरा कौन है ?'' जो आगम की बात को, ज्ञान की बात को, हित की बात को, कल्याण की बात को न सुनता है, न जानता है। जानता भी नहीं, किसी की मानता भी नहीं अपनी-अपनी तानता है बस। तो फिर उसका कल्याण कैसे होगा ? यहाँ पर बधिर शब्द के साथ कहना चाह रहे हैं कि वह मिथ्याज्ञानी है जो हित की बात सुनता नहीं है। सोचता नहीं स्वीकारता नहीं है। और ''को मूकः'' मूक कौन है ?-गूंगा वही है जो प्रिय वचन बोलता नहीं है। अर्थात् बोलना क्रिया हो गयी, जो क्रिया नहीं करता हित के मार्ग पर चलता नहीं, जिसके पास चारित्र नहीं है मिथ्या चारित्र है तो वह गूंगे के समान है। आप कहते है ना जैसे-आपके माता-पिता कहते हैं-''बेटा-देख, भाल कर चलो-'देख' दर्शन, 'भाल' ज्ञान 'चलो' चारित्र। ''सोच समझ कर बोलो''। सोच-दर्शन, समझ-ज्ञान बोलो-क्रिया। तो ऐसे ही यहाँ कह रहे हैं कि अंधा-बहरा-गूंगा अंधा-मिथ्यादृष्टि, बहरा-मिथ्याज्ञानी गूंगा-मिथ्याचारित्र वाला। जिसके पास सही को देखने की दृष्टि नहीं है तो वह अंधा, जिसके पास सही को जानने की पात्रता नहीं-वह वास्तव में बहरा। और व्यक्ति यदि बहरा है किन्तु अपने कल्याण के मार्ग में लगा है तो बहरा नहीं है जो गूंगा है बोल नहीं सकता किन्तु सम्यक् क्रिया कर रहा है तो उसकी क्रिया दूसरों के लिये भी सम्यक्दायी हो सकती है, बिना बोले भी इतना हो सकता है कि हजारों का कल्याण हो जाये। भगवान तीर्थंकर बोलते नहीं किन्तु उनके शरीर से इतनी वर्गणायें निःसृत हो जाती हैं कि असंख्यात प्राणी अपना कल्याण कर लेते हैं तो इस प्रकार यहाँ तीन बातें कहीं।

पहली-अंधे के संबंध में बात की थी-और अंधे संसार में बहुत से व्यक्ति हैं। आप एक प्रकार के अंधे को जानते है। देखो ! जिनको चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देता, लोग सिर्फ उन्हें ही अंधा कहते हैं किन्तु अंधों की संख्या बहुत है।

एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा-ये तो बताओ कि इस संसार में अंधे ज्यादा हैं या आँखों वाले, बीरबल ने कहा-जहाँपना यह प्रश्न यदि आप सभा में सभी लोगों से पूछो तो ज्यादा अच्छा रहे। सभा के लोगों ने कहा-बादशाह इसमें तो पूछने जैसी कोई बात ही नहीं। हम देखते ही हैं कि अंधा सौ या हजार में से एक दिखता है आँखों वालों की संख्या ज्यादा है। सभी ने एक मत से ये बात कही-बादशाह ने कहा ठीक कहते हो। पुनः बादशाह ने बीरबल की ओर उन्मुख होते हुये पूछा-आप इसमें क्या कहना चाहते हो ?-जहाँपना मेरी राय इससे कुछ भिन्न है-मतलब! तुम क्या कहना चाहते हो ? मैं कहना चाहता हूँ कि संसार में आँख वाला तो कोई एक ही आदमी मिलेगा, नहीं तो सब अंधे ही मिलेंगें। अरे ! बीरबल थोड़ा संभल कर बोलाकर-तुम कहना चाहते हो क्या मैं भी अंधा हूँ-जहाँपना सत्यता तो यही है। अकबर ने कहा-यदि तुमने इस बात को सिद्ध नहीं किया तो तुम्हें दण्ड मिलेगा। ठीक है मुझे तीन दिन का समय दिया जाये, बीरबल दो दिन तो दरबार में ही नहीं पहुँचा तीसरे दिन बादशाह को बैचेनी होने लगी, बीरबल जन सभा में नहीं था तो बादशाह ने सभा स्थगित की और भ्रमण के लिये चल दिया, बीरबल को भी आभास था कि बादशाह महल के बाहर निकलेंगें और जल्दी से उसी रास्ते के चौराहे पर पहुँच गया और अपने सामने जूते-चप्पलों का ढेर लगाकर एक जूते की सिलाई करने लगा, बादशाह उतर कर आये, लगता तो बीरबल जैसा है फिर भी देखा-अरे बीरबल तुम ये क्या कर रहे हो? बीरबल ने कुछ नहीं कहा। अकबर ने दुबारा-तिवारा पूछा। बीरबल ने कहा-बादशाह मैं बताये देता हूँ क्योंकि आप तो अंधे हैं-मैं जूते की सिलाई कर रहा हूँ, यदि आपके पास आँख होती तो फिर आप पूछते ही नहीं कि मैं क्या कर रहा हूँ। तो इसलिये कहा जाता है कि संसार में अंधे ज्यादा हैं आँखों वाले कम। प्रायःकर अधिकांश व्यक्ति ऐसे ही हैं-महानुभाव ! इस बात में सत्य और तथ्य यही है कि संसार में अधिकांश व्यक्ति अंधे ही हैं वे सभी व्यक्ति जो अकार्य में लगे हैं जो काम उनके करने योग्य नहीं हैं उसमें लगे पड़े हैं वे सभी अंधे हैं।

यद्यपि धर्माचार्यों ने, नीतिकारों ने अंधे कई प्रकार के कहे, एक व्यक्ति क्रोध में अंधा हो जाता है, क्रोधान्ध, एक व्यक्ति मोह में अंधा हो जाता है, मोहान्ध, एक व्यक्ति मद में अंधा हो जाता है-तो मदान्ध, एक व्यक्ति धर्म में भी अंधा हो जाता है धर्मान्ध, जब व्यक्ति धर्म में लीन हो जाता है तब उसे न्याय-अन्याय कुछ भी नहीं दिखता, और एक अंधा होता है रागान्ध। यहाँ तो कहा जो अकार्य में रत है वह अंधा है किन्तु अंधों में भी अंधा कौन तो बताया-'यो विशिष्यते रागी' जो विशेष रूप से रागी है राग में अंधा व्यक्ति हित-अहित को देख नहीं सकता, वह

अच्छाई, बुराई को सोच नहीं सकता। ऐसे कई प्रकार के अंधे होते हैं। कोई लोभान्ध, लोभ ने ही उसकी आँखों पर पट्टी बांध दी उसे कार्य अकार्य का बोध नहीं रहता। और यदि अंधे नहीं भी हो तो व्यक्ति को अंधा बना दिया जाता है, किसके माध्यम से। आप और हम भी अंधे है किसी स्थान पर, किसी क्षेत्र पर, किसी काल में, कहेंगे कैसे ? अभी सूर्य का प्रकाश हो रहा है हमें सब दिखाई दे रहा है यदि घोर अंधकार हो जाये तो तुम्हें ये सामने वाला बड़ा पहाड़ भी न दिखाई देगा तो अंधे हो गये ना, तो अंधा किसने बनाया हमको अंधकार ने। अंधकार ने अंधा बनाया इसलिये उसका नाम अंधकार है ''अंधं करोति इति अंधकार:'' जो व्यक्ति को अंधा कर दे वह अंधकार है। जैसे-कुंभं करोति इति कुंभकार: जो कुंभ (मिट्टी का वह बर्तन जिसमें जल भरा जा सके) कु-मिट्टी अंभ-जल उस कुंभ बनाने वाले को कुंभकार कहते हैं-सोने के घड़े बनाने वाले को कुंभकार नहीं कहते ऐसे ही गुरु के लिये सुखं करोति इति सुखकार: जो सुख को करने वाले हो, जो सुख को जीवन में पैदा करे जिसके माध्यम से अनंत सुख अंतरंग में उत्पन्न हो। सुखा कैसा हो जो निरावरणित हो जो आवरण से ढका हुआ है उस आवरण को हटाना है। हमें विधि सीखना है उस तमस को दूर करने की। हमारे जीवन में व्याप्त है अज्ञान, हमारे जीवन में व्याप्त है मिथ्यात्व, हमारे जीवन में व्याप्त है असंयम अनादिकाल से व्याप्त है। हम धीमे-धीमे प्रयास कर रहे हैं इसे दूर करने का, अपने मिथ्यात्व को अभी दबाया है, नष्ट नहीं किया, अपने अज्ञान को हम थोड़ा-थोड़ा हटा रहे हैं, अभी प्रकाश थोड़ा-थोड़ा हो रहा है अभी पूरी पौ नहीं फटी किन्तु अंधकार कम हो रहा है क्षायोपशमिक ज्ञान है अपने असंयम को दूर करने का प्रयास कर रहे है जो दु:खों के बीच में कसे पड़े थे जंजीरों में, उन जंजीरों को थोड़ा ढीला करने का प्रयास कर रहे हैं, इस आशा के साथ कि पूरी कर्म की जंजीरें टूट जायेंगी, तब हमें बहुत सुख मिल जायेगा। तो महानुभाव ! अंधा व्यक्ति नेत्र वाला हो सकता है, अंधे व्यक्ति को अलग से नेत्र चिपकाने की आवश्यकता नहीं है, ध्यान रखो आँख को अलग नहीं करना है, क्षयोपशम को अलग नहीं करना है, केवल उस कचरे को दूर करना है कचरा दूर होते ही ज्योति उसमें ज्यों की त्यों आ जायेगी अंधकार दूर हो जायेगा। अंधकार को दूर करने के लिये कोई ऐसा नहीं है कि बहुत बड़ी पट्टी है कि उसे ढकेला जाये फिर कहीं से प्रकाश को खींचकर लाया जाये, ऐसा नहीं करना, बस यही है जहाँ पर अंधकार है वहाँ पर एक दीया जलाना है, जो गुरु के द्वारा दिया हो, ज्ञान का दीया यदि जलाओगे तो जीवन में व्याप्त अज्ञान तिमिर दूर होगा, वह दूर होते ही तुम्हारी आँखों में दृष्टि आ जायेगी। पदार्थ तो संसार में आज भी हैं कल भी थे, तुम्हारे अंतर में वैभव आज भी है पहले भी था किन्तु जब दृष्टि नहीं है तो कुछ भी नहीं है। तो महानुभाव! व्यक्ति के पास वैभव का ढेर न लगाओ वैभव को देखने वाली आँखों की सफाई करो, उन आँखों को साफ करो जो आँखें अपने निजी वैभव को देख सकें, यदि वैभव को देखने में असमर्थ हैं तो क्या ? आँखें होते

हुये भी बेकार है, तो पहली आवश्यकता ये है कि आँखों को खोलने का प्रयास करना है और जिसने आँखों को खोलने का प्रयास किया है ऐसा व्यक्ति संसार के समस्त वैभव को देख सकता है, प्रकृति को निहार सकता है। तो यहाँ पर कहा-अपनी आँखों पर जमा कचरा निकाल फेंको-ये कचरा बाहर का नहीं अंदर का है। उस आँख को वही डॉक्टर ऑपरेट करेगा जिसके पास सही दृष्टि होगी। एक व्यक्ति बड़ा परेशान उसे एक के दो दिखाई देते, वह उपचार के लिये डॉक्टर के पास गया, डॉक्टर से कहा-मुझे इलाज कराना है बहुत परेशान हूँ एक के दो दिखाई देते हैं वह डॉक्टर बोला-तुम चारों को एक ही रोग है क्या ? वह बोला-समझ गया डॉक्टर साहब, मेरा इलाज हो गया, मुझे तो एक के दो ही दिखाई देते थे किन्तु आपको तो 1 के 4 दिखाई दे रहे हैं। तो बात ये है ऑपरेट कराना तो ऐसे व्यक्ति से जिसे एक का एक ही दिखाई दे 2-4 नहीं। तो आप अपनी बाहर की गंदगी तो वैसे भी साफ कर सकते हैं किन्तु अपने मिथ्यात्व व पापों को धोने के लिये उसे ऑपरेट करना पड़ेगा तो गुरु महाराज ही उस भव्य जीव को ऑपरेट करता है।

जब शिष्य अपनी निंदा, गर्हा, आलोचना करता है, मैंने ऐसे पाप किये जब उसका कचरा निकलता चला जाता है जब उसे अंतरंग से साफ-साफ दिखाई देने लगता है तब वह कहता है-गुरु महाराज ! मुझे अब साफ-साफ दिखाई दे रहा है अब मैं मोक्षमार्ग पर चलना चाहता हूँ। संसार में कोई किसी का नहीं सब मायाजाल है भ्रम है आज वास्तव में मेरे नेत्र खुल गये सब पराये हैं मेरा तो मैं हूँ जिसे मेरी आँखों ने आज तक देखा नहीं, मेरी आत्मा का वैभव अलग है, संसार के दु:खों से अलग। तो महानुभाव ! 'को अन्ध:' योकार्यऽरत:-जो अंधा है वह तो अकार्य करेगा ही उसका दोष क्या है हम समझते है-असमर्थ को नहीं दोष, जो असमर्थ है उसका दोष नहीं-तुलसीदास कहते हैं-समर्थ को नहीं दोष कुसांई-जो समर्थ है वह कुछ भी करे उसका कोई दोष नहीं है किन्तु हम कहते हैं-जो अशक्य है, यदि उससे गलती हो जाये तो उसे दोष नहीं देना चाहिये क्योंकि असमर्थ है। यदि समर्थ होकर भी गलती करे तो वह वास्तव में महादोषी है, तो बात यह है कि जो व्यक्ति देख नहीं सकता-अंधा है। वह खड्डे में गिर जाये उसका दोष नहीं किन्तु यदि आँखों वाला ही गिर जाये तो बड़ा दोष है। बात यह है संसारी प्राणी जो दु:खों को भोग रहा है संसार में पतित हो रहा है उसमें संसारी प्राणी का दोष नहीं हैं क्योंकि अभी वह समर्थ ही नहीं है कि वह सही रास्ते पर चल सके। महानुभाव ! सही राह चुनने के लिये हमें अपनी योग्यता भी बढ़ानी पड़ेगी, जीवन में बड़ी उपलब्धि के लिये गहन परिश्रम की आवश्यकता है। जो व्यक्ति असमर्थ है वह दोषी नहीं क्षमा का पात्र है। कई बार बिहारी का दोहा याद आता है कि जब कोई व्यक्ति कड़वा बोलता है सोच ज्यादा अच्छी नहीं है कोई सही प्रतिउत्तर नहीं दे पा रहा है तो बिहारी ने बड़ी अच्छी बात कही समता रखने के लिये उसकी बात सुनकर बुरा मत मानो-क्या कहा-

जैसी जाकी बुद्धि है, वैसी कहे बनाय।
ताको बुरो न मानियो लेन कहा सो जाये॥

जिसके पास जैसी बुद्धि है वह वैसा बोलता है, जिसकी जैसी सोच है वह वैसा ही तो करेगा। छोटी सोच से बड़े काम कैसे हो सकते हैं, कुयें में रहने वाला मेंढक क्या आकाश को अपने हाथ से नाप सकता है, तो जैसी जिसकी बुद्धि है वह वैसा कर रहा है तो दोषी नहीं क्षमा का पात्र है। कई बार हम कहते हैं-

''छोटी सोच और पैर की मोच व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने देती''

यदि बढ़ने का प्रयास भी करता है तो पैर आगे बढ़ नहीं पाता, और छोटी सोच वाला व्यक्ति आगे बढ़ने का प्रयास ही नहीं करता। बड़ी सोच वाले के पैर में मोच आ जाये तो उसके कदम नहीं बढ़ पाते। छोटी सोच का आशय है-'अंधा व्यक्ति' जिसके पास सम्यक्त्व नहीं, सम्यक ज्ञान नहीं है। और पैर की मोच का आशय है जो अव्रती है असंयमी है जिसके पास चारित्र नहीं है, छोटी सोच वाला बड़े काम करने की सोचता ही नहीं जिसकी सोच बड़ी है सम्यक्ज्ञानी है किन्तु पैर में मोच आ गयी अर्थात् ऐसा चारित्र मोहनीय कर्म का उदय चल रहा है वह सोच रहा कि मैं एक मिनट भी बरबाद न करूँ, एक मिनट में असंख्यात गुणित कर्मों की निर्जरा कर सकता हूँ एक मिनट भी इस मनुष्य भव का क्यों खोऊँ गुरु महाराज ने कहा तुम्हारी दीक्षा कल होगी, कल क्यों आज अभी क्यों नहीं अरे ! भईया तुम्हारा तीव्र ही चारित्रमोहनीय कर्म का उदय चल रहा है। इसलिये सम्यक्चारित्र ग्रहण नहीं कर पा रहे। ये बीच के व्यवधान पाँव की मोच है। इसीलिए कहा छोटी सोच पैर की मोच व्यक्ति को आगे नहीं बढ़ने देती, बस वहीं की वहीं किसी सहारे से लुढ़क सकता है थोड़ा सा खिसक सकता है इसलिये महानुभाव ! वह व्यक्ति अंधा कहा। दूसरी बात कही-**''को बधिरः''**-

बधिर के बारे में आचार्य महोदय कह रहे हैं जो हित की बात नहीं सुनता, जिसके पास दोनों कान हैं माँ कहती है बेटा-सुबह-सुबह अखबार पढ़ रहा है, टी.वी. देख रहा है। इतना अमूल्य समय बर्बाद कर रहा है। इतने में भगवान के दर्शन ही कर आ, दो कलश ही ढाल आ माँ रोज-रोज कहती है पर बेटा तो उसी में लगा है। तो बताओ वह कान वाला है या बहरा, पिताजी कह रहे हैं बेटा उस जुऐं के चौपड़ के चौराहे पर न जाओ, वह स्थान अच्छा नहीं है। बेटा कहता है-पिताजी आप भी कैसी बात करते हो मैं खेलता थोड़े ही हूँ देखने से क्या होता है-बेटा जिस कार्य को आज देख रहे हो, हो सकता है कल खेलने का मन भी आ जाये तो ऐसे स्थान पर जाना ही क्यों ?

जुआरी से रखोगे अगर तुम दोस्ताना, जुआरी समझ लेगा तुमको जमाना।
बैठोगे रोज-रोज अग्नि जलाकर, उठोगे एक दिन कपड़ों को जलाकर॥

इसलिये वहाँ नहीं जाना, पिता जी रोज कहते हैं पर बेटे ने क्या किया-इस कान से सुना उस कान से निकाल दिया तो उसे कान वाला कहोगे क्या ? जिसके पास कर्ण हैं उसी के सुधरते अन्तर के करण हैं, उसी के पूज्य होते चरण हैं जिसके पास कर्ण नहीं है वह चार इन्द्रिय हो सकता है और चार इन्द्रिय जीव असंज्ञी है नियम से, वह अपना कल्याण कर नहीं सकता क्योंकि कल्याण के लिये कर्ण की बहुत आवश्यकता है बहिरंग के कर्ण और अंतरंग के करण, करण मतलब परिणाम बहिरंग के कर्ण होंगे तो व्यक्ति हित की बात सुन सकता है अंतरंग के परिणाम अच्छे हो जायें सुनकर के तब कल्याण संभव है, जिसके पास कर्ण और करण हैं वही संसार में वास्तव में तारण-तरण है, उसी का होता समाधि मरण है, तो यहाँ कह रहे-''को बधिरः' बहरा तो वह है जो हित की बात, अच्छी बात नहीं सुनता। दूसरी बात-बधिरः 'वध' जो बहरा है वह वध के समान कष्ट पाता है, व्यक्ति को मारपीट लो तो इतना कष्ट नहीं होता किन्तु व्यक्ति किसी की बात सुन नहीं पा रहा है तो बहरे व्यक्ति से पूछो कि कितना कष्ट होता है, कोई व्यक्ति सामने बैठकर चर्चा कर रहा है, हँस रहा है, किन्तु समझ ही नहीं आया कि उसने कहा क्या ? कई बार सूखी हंसी भी हंसनी पड़ती है।

एक व्यक्ति को अपनी ससुराल जाना था, ससुर का समाचार आया कि वे बहुत बीमार पड़े है यदि आपको मुख देखना है तो आ जाओ, दामाद बहरा था, कैसे जाये, वह सोचता है क्या करूँ उसके बड़े भाई ने समझा दिया-चले जाओ-जाओगे जाते ही आम बात पूछी जाती है तुम भी आम बात पूछना तो वे उसी प्रकार उत्तर देते जायेंगे जैसे-सबसे पहले तुम जाओगे तो पूछेंगे-तुम ठीक हो तो तुम कहना ठीक है, फिर बाद में कोई बात पूछेंगे-माना कि आप सकुशल आ गये, तो कहना हाँ सकुशल आ गया, तुम पूछोगे-स्वास्थ्य ठीक है तो वे कहेंगें हाँ पहले से ठीक है-तुम कहना-हाँ वो वैद्य बहुत अच्छा है ठीक है मैंने भी उसका नाम सुना है, फिर तुम पूछोगे-दवाई से कोई लाभ हुआ, दवाई असर दिखा रही है वे कहेंगें हाँ पहले से कुछ लाभ है, तुम कहना-ठीक है उसी का सेवन करते रहो उसको चेंज न करो, इतनी सारी बातें वह दिमाग में सेट कर लेता है, और चला गया वहाँ पहुँचा, जाते ही पूछा गया-तुम्हारे घर में कोई प्रतिकूलता हो गयी थी क्या? उसने सोचा पूछ रहे हैं ठीक से आ गये क्या ?-बोला हाँ। पुनः उन्होंने पूछा-कोई मर गया है-तो बोला हाँ, उसने सोचा सकुशलता पूछ रहे हैं। वह तो हाँ में उत्तर याद करके गया था। अब उसने पूछा-आपका स्वास्थ्य अब ठीक है-तो वहाँ सभी ने उत्तर दिया कि नहीं अभी ठीक नहीं है-तो कहता है ठीक है, पुनः पूछता है-कौन से वैद्य का इलाज चल रहा है-वे बोले अब तो यमराज का चल रहा है-वह बोला बहुत अच्छा टोप का वैद्य है, पुनः बोला-दवाई अपना असर दिखा रही है-वे बोले दवाई असर कहाँ दिखा रही बीमारी तो बढ़ रही है-वह बोला ठीक है बदलना मत उससे जल्दी ही लाभ हो जायेगा, तो बात ये है बहरा व्यक्ति किसी से मिल जाये तो बड़ी मुश्किल

हो जाती है तब व्यक्ति को लगता है वास्तव में कानों की क्या महत्ता है, जीवन में कानों का क्या महत्व है, जब तक कान हैं हम उसके महत्व को समझ नहीं सकते, जब कान कमजोर हो जाते हैं, सुनना कम कर देते हैं तब वास्तविक महत्व समझ में आता है। तो कान बिना व्यक्ति को ऐसा लगता है जैसे वध जैसी पीड़ा भोग रहा हो। अगली बात कही-

को मूकः-गूंगा व्यक्ति आप उसे कहते है जो बोल नहीं सकता-किन्तु आचार्य महोदय कह रहे है गूंगा वह है जो समय पर मीठे वचन नहीं बोल सकता, कड़वा बोलता है। जो व्यक्ति कड़वा बोलता है वह गूंगे से भी ज्यादा खतरनाक है। गूंगा व्यक्ति केवल वो ही नहीं है जो बोलना नहीं जानता, गूंगा वह भी है जो सही समय पर बोलता नहीं है जब आवश्यकता है तब तो बोल नहीं रहा अनावश्यक समय में बोलता रहता है। अथवा जो कड़वा बोलता है, मौन रहने से युद्ध टल सकता था, कड़वा बोलने से युद्ध और बढ़ गया, तो वह व्यक्ति गूंगे से भी ज्यादा खतरनाक हो गया, वह गूंगों का भी सरदार हो गया। यहाँ पर कहा मूक कौन है यूक और हूक की तरह से या लीक (जुओं) की तरह से जो केवल सुरक्षा करके काटता रहता है। हूक एक कीड़ा होता है। ऊपर हाथ आये पुनः छूट जाता है, ऐसे ही उलूक जिसे रात में दिखाई नहीं देता मूक के जैसा भी होता है वह अपनी बात को कह नहीं सकता, यद्यपि शब्द कोष में मीठे शब्दों का कोई अभाव नहीं हैं बहुत अच्छे-अच्छे शब्द हैं तुम चाहो तो बोल सकते हो किन्तु जो व्यक्ति नहीं बोलता, वह गूंगे से भी ज्यादा खतरनाक है। तो महानुभाव आगे की कारिका देखते हैं।

किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घ्यं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात् किं शल्यं, प्रच्छन्नं यत् कृतमकार्यम्॥१७॥

किं मरणं-मृत्यु क्या है ? **मूर्खत्वं**-मूर्खता ही सबसे बड़ी मौत है कभी-कभी व्यक्ति जब फंस जाता है अपनी मूर्खता के कारण तो कहता है-हाय रे ! मर गये, हमने ऐसी मूर्खता का काम कैसे कर लिया, और दूसरी बात कह रहे हैं-**किं च अनर्घ्यं**-सबसे बड़ी मूल्यवान चीज क्या है? **यद् अवसरे दत्तं**-अवसर पर दिया गया दान-अवसर पर तुमने छोटी सी चीज भी दे दी, मौके पर तुमने किसी को सुई का दान भी दे दिया है तो कल तुम उससे तलवार मांग सकते हो, सुई के बदले तलवार मिल सकती है। क्योंकि सुई तुमने उसे ऐसे मौके पर दी थी जब उसे सख्त आवश्यकता थी। तुमने मौके पर किसी को जल का दान दे दिया तो वह तुम्हें जल के बदले में अमृत भी दे सकता है। और यदि तुमने बिना मौके पर अमृत भी दिया है तब भी तुम्हें आवश्यक नहीं मौके पर जल मिल ही जाए तो 'यद्अवसरे दत्तं'' अवसर पर दिया हुआ ही अमूल्य है। **आमरणात् किं शल्यं**-जीवन पर्यंत चित्त में कांटे की तरह चुभे वह क्या है ? ऐसा कौन सा कांटा है जो जीवन भर चुभता रहे वह बता रहे हैं-**प्रच्छन्नं यत् कृतमकार्यम्**-छिपकर के किया गया कोई

पाप। कोई पाप तुमने छिपकर के किया है तुम्हें लग रहा है कि कहीं वह प्रगट न हो जाये वह जीवन भर तुम्हें कांटे की तरह चुभता ही रहता है, उस शल्य को निकालना बड़ा कठिन है, वह मृत्यु तक चुभती रहती है। इसलिये एक बात आचार्यों ने कही-मृत्यु के समय एक प्रतिक्रमण किया जाता है-''औत्तमार्थिक'' प्रतिक्रमण सल्लेखना के पहले, जीवन पर्यंत जो पाप किये कदाचित् कोई छिपा रह गया हो सुबह दोपहर शाम हर समय प्रायश्चित लिया हो फिर भी हो सकता है, तुम मोटे बदमाश रहे हो यानि ऊपर से अच्छे, अंदर से खराब रहे छिपाते रहे, तो फिर मृत्यु के समय सब आलोचना करके समस्त पापों को धोकर के गंदगी को धोकर के तब समाधि को प्राप्त किया जा सकता है। ''औत्तमार्थिक'' प्रतिक्रमण किये बिना सल्लेखना की प्राप्ति, समाधि की प्राप्ति नहीं होती। हम क्षण भर के लिये समाधि प्राप्त करते हैं, सामायिक करते हैं यह क्षणभर की समाधि कहलाती है वह भी प्रतिक्रमण फिर सामायिक, शाम को भी पहले प्रतिक्रमण फिर सामायिक, दोपहर में भी पहले प्रतिक्रमण फिर सामायिक। बिना प्रतिक्रमण के सामायिक नहीं होती, पहले प्रतिक्रमण में समस्त दोषों की आलोचना, उसके उपरांत फिर सामायिक स्वीकार की जाती है यदि अपने दोषों की आलोचना नहीं करें तो सामायिक में मन नहीं लगता। सामायिक में वे दोष दिखाई देते है अरे ! आज मुझसे ये हो गया, ये दोष लग गया तो सामायिक में ये विकल्प चलेंगे, सामायिक में धर्म ध्यान नहीं हो पायेगा, इसलिये सबसे पहले प्रतिक्रमण करो, और शल्य का विमोचन भी प्रतिक्रमण के माध्यम से होता है उसका नाम है-औत्तमार्थिक प्रतिक्रमण। वह सबसे उत्तम, श्रेष्ठ प्रतिक्रमण जो आखरी में होता है। ऐसे प्रतिक्रमण के भेद अलग-अलग हैं दैवसिक प्रतिक्रमण जो मुनिमहाराज शाम को करते हैं, श्रावक भी करता है, रात्रिक प्रतिक्रमण प्रातःकाल करते हैं सामायिक के पहले। ईर्यापथ प्रतिक्रमण रोज आहार चर्या के बाद करते हें, पाक्षिक प्रतिक्रमण 15 दिन में पूर्णमासी, अमावस्या या चतुर्दशी को करते हैं, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण जो अष्टाह्निका की चतुर्दशी या पूर्णमासी को चार महीने में एक बार किया जाता है। संवत्सर प्रतिक्रमण जो आषाढ़ की पूर्णमासी चौदस पर किया जाता हैं स्थापना के दिन, एक साल का प्रतिक्रमण किया जाता है। आखरी में औत्तमार्थिक प्रतिक्रमण किया जाता है। इसके बीच में किन्हीं आचार्य ने युग प्रतिक्रमण भी माना है जो पाँच वर्ष में होता है। ऐसे ये प्रतिक्रमण के भेद हैं, प्रतिक्रमण का आशय होता है अपने किये गये दोषों की आलोचना करना, निंदा करना, गर्हा करना, तस्स मिच्छा में दुक्कडं कहना मेरे दुष्कृत मिथ्या हो इस प्रकार का वचन उच्चारण भाव सहित करना प्रतिक्रमण कहलाता है। वचनों का उच्चारण द्रव्य प्रतिक्रमण और भावों का लग जाना भावप्रतिक्रमण है। तो भाव प्रतिक्रमण से ही शल्यों का विमोचन होता है। दोषों का विमोचन होता है, जैसे वैद्य पहले अंदर में विद्यमान रोग का विमोचन करता है कब्ज आदि निकालता है फिर औषधि देता है, तो सामायिक औषधि है और प्रतिक्रमण रेचक है। पहले दोष

निकालकर बाहर करें सामायिक के बाद भक्ति स्तुति की जाती है वह पौष्टिक पदार्थ है। जिससे आत्मा पुष्ट हो, स्तुति भक्ति करने से शक्ति आती है, आत्मा बलिष्ठ होती है। ये आत्मा के टॉनिक हैं भक्ति, स्तुति, वंदना और आत्मा की जो औषधि है वह है सामायिक, आत्मा के लिये रेचक पदार्थ है प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तो ये सब जरूरी है। तो महानुभाव ! यहाँ कह रहे हैं छिप करके किया गया पाप ही जीवन पर्यंत चित्त में कांटे की तरह चुभता है।

थोड़ा और विस्तार से देखते हैं

मूर्खता ही मृत्यु है। मूर्ख किसे कहते हैं-मू-मूल ख-खाना-जो मूल को ही खा जाये आगे पीछे की चिन्ता न करे वह मूर्ख है, दूसरा मूर्ख की बात क्या है-मूरख-जो (मूरे?) की बात करता है जो सत्य को बोलने में असमर्थ है वह मूरख है, उसके मुँह पर उस जैसी बात, और दूसरे के मुख पर उस जैसी बात कह दी वह भी मूर्ख है, तीसरी बात कही-मूर्ख कौन हैं?-मूल (जमीकंद) खाता है। जो मूल न खाकर के फल और फूल खाता है तो बुद्धिमान है, जो नीचे का खाता है वह नीचे ही जाता है। वह कृष्ण लेश्या वाला है, कृष्ण लेश्या वाला तो नीचे ही जायेगा और जो ऊपर वाला खायेगा जो सहजता में प्राप्त फल को खाता है वह ऊपर को जाता है। सहज में कर्मों से छूटकर मोक्ष को जाता है, जो तोड़कर खाता है वह देवगति में तो जाता है पर व्यंतर आदि भवनवासी आदि बन जाता है यदि पत्तों सहित ही खा जाता है तो पशुयोनि में चला जाता है और यदि पेड़ को ही काट जाता है। वह तो समझो नारकी की श्रेणी में आता है। इसलिये मूर्ख कौन है ? जो मूल को ही खा जाये, जो बीज की रक्षा न करे, जो जड़ को उखाड़ कर खा जाये। नीतिकार कहते हैं-

खादन्न गच्छामि हसन् न भाषे।
गतं न शोचामि कृतं न मन्ये॥
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्।
कि कारणं भोज भवामि मूर्खः॥

एक बार राजा भोज के दरबार में मंत्री किसी से कहीं खड़े-खड़े चर्चा कर रहे थे, तभी राजा भोज भी वहाँ आ गये और उनको टोक दिया।

केवल टोका ही नहीं बल्कि बीच में अनावश्यक रूप से बोल भी रहे थे, मंत्री ने कह दिया अहो ! ''देवानाम् प्रिया'' इसका अर्थ देवों के प्रिय नहीं, बल्कि मूर्ख है, यह एक संस्कृत की गाली है। जब प्रायःकर व्यक्ति नहीं समझता तब उससे कह देते हैं वाह-देवानाम् प्रिया (इसका आशय होता है मूर्ख) तो मंत्री ने कह दिया-देवानां प्रिया। अब राजा ने सोचा यह बहुत अच्छा शब्द है बहुत खुश हुआ है एक बार राजदरबार में राजा ने भी मंत्री से कह दिया-आगच्छ-देवानांप्रिया !

मंत्री ठिनक गया-महाराज आपने मुझसे मूर्ख कैसे कहा-बोले मैंने कब कहा मूर्ख मंत्री बोला-देवानांप्रिया कहा है-इसका अर्थ तो मूर्ख होता है, आपने मेरी क्या बात मूर्खता जैसी देखी, मैंने तो कोई मूर्खता की ही नहीं आपने मूर्ख कैसे कहा-क्योंकि मूर्ख के जो लक्षण हैं उनमें से मुझमें एक भी लक्षण नहीं पाया जाता। आपके अंदर हो सकते हैं इसलिये मैं आपसे कहता हूँ फिर मंत्री ने वह श्लोक सुनाया-

खादन्न गच्छामि हसन्न भाषे गतं न शोचामि कृतं न मन्ये।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन् किं कारणं भोज ! भवामि मूर्खः॥

ये पाँच लक्षण हैं मूर्ख के इनमें से एक भी मेरे पास नहीं हैं फिर आपने मुझसे मूर्ख कैसे कहा-खादन्न गच्छमि मैं खाता खाता चलता नहीं, हसन् न भाषे-हंसता हुआ बोलता नहीं हूँ जब बोलता हूँ तब गम्भीरता से बोलता हूँ जब हँसता हूँ तब अच्छे से मस्ती में हँसता हूँ।

''गतं न शोचामि''-जो बात बीत गयी उसके लिये सिर पकड़ कर शोक नहीं करता रोता नहीं, जो हो गया सो हो गया रोना बेकार। और ''कृतं न मन्ये''-मैंने यदि किसी का उपकार किया है तो कभी किसी के सामने ढींग नहीं मारता। उपकारी पर किए उपकार को बार-बार नहीं कहता मैंने किसी का उपकार किया है मैं ऐसा कभी मानता ही नहीं। उसका उपकार हुआ है उसके पुण्य से यदि उसके पाप का उदय होता तो मैं उसका उपकार कर ही नहीं सकता और उसके पुण्य का उदय था तो उसका तो उपकार होता ही चाहे मेरे हाथ से होता नहीं तो किसी और के हाथ से होता तो मैं अहंकार क्यों करूँ। अगली बात-द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि न राजन्। हे राजा भोज ! जब दो व्यक्ति चर्चा कर रहे होते हैं तब मैं दो के बीच में तीसरा टपकता नहीं मैं दूर खड़ा रहता हूँ मौन से, जब उनकी बात पूर्ण हो जाती है उसके बाद यदि सुझाव देना होता है तब देता हूँ वो भी पूछकर के। क्या मैं कुछ कह सकता हूँ। तो बात ये है दो के बीच में बोलने वाला भी मूर्ख होता है। किं कारणं भोज भवामि मूर्खः-तो हे राजा भोज ! आपने मुझे मूर्ख कैसे कह दिया राजा भोज समझ गया कि मुझे देवानां प्रिया क्यों कहा गया था।

तो मूर्खता क्या है ? यहाँ पर आचार्य महाराज कह रहे हैं-कि मूर्खता ही सबसे बड़ी मृत्यु है। जिस व्यक्ति के पास विवेक नहीं है, बुद्धि नहीं है, सद्ज्ञान नहीं है, जिसके पास हित-अहित को जानने वाली धी नहीं, कार्य-अकार्य को नहीं जानता है ऐसा व्यक्ति मूर्ख है और मूर्खता ही सबसे बड़ा अभिशाप है, वह व्यक्ति के लिये तिल-तिल करके मारती है, व्यक्ति मौत से तो एक बार मरता है मूर्खता के काम करके, तिल-तिल करके जिंदगी भर मरता रहता है, तो मूर्खता से बड़ी मृत्यु नहीं है। यहाँ बताया कि मरणं/मृत्यु क्या है शरीर का त्याग करना मृत्यु नहीं है सबसे बड़ी मृत्यु है मूर्खता।

किं च अनर्घ-यद् अवसरे दत्तं–संसार में सबसे बड़ी मूल्यवान् वस्तु क्या है ? मौके पर तुमने एक अंजुली पानी भी पिला दिया तो एक अंजली पानी भी 56 प्रकार के व्यंजनों से बढ़कर के हो सकता है। अवसर की खोज करो। आपने कभी अवसर का चित्र देखा है क्या? किसी ने नहीं देखा -अरे ! बड़े आश्चर्य की बात है चलो कोई बात नहीं आज देखते हैं अवसर का चित्र ऐसा होता है। आप लोग हम लोग तो सामने से गंजे होते हैं और पीछे से बाल रह जाते है, किन्तु जो अवसर है (समय) उसका चित्र ऐसा होता है कि सामने बाल होते हैं और पीछे से गंजा होता है। व्यक्ति समझता है जब अवसर आता है तो सामने से तो कहता है कि कोई बात नहीं देख लूँगा पकड़ लूँगा किन्तु जब जाता है तब पकड़ने का प्रयास करता है तो बस चांद गंजी वह पकड़ में नहीं आती है। इसलिये जैसे ही सामने से अवसर आता दिखाई देता है उसे पकड़ लो उसकी कस कर चोटी पकड़ लो, जाने मत दो, तो अवसर का चित्र जब भी बनाया जाता है ऐसे ही बनाया जाता है पीछे से गंजा कर दिया जाता है और सामने से उसकी लटें होती है सामने से उसका चेहरा ढका हुआ होता है। उस अवसर को हर व्यक्ति पहचान नहीं पाता। और जब तक पहचानता है। तब तक वह मुड़ जाता है और तब जब दौड़ता है तो उसका हाथ फिसलकर ही रह जाता है। इसलिये मैं आपको बता रहा कि ऐसे ही अवसर आपके सामने भी आयेगा, आप पहचान नहीं पाओगे, जीवन में कभी-कभी अवसर आते हैं कोई विशेष-विशेष, कहीं विशेष-विशेष अवसर पर ही होते हैं जब आप चूक गये तो बस गये अषाढ़ का चूका किसान और डाली का चूका बंदर बार-बार पछताता है, इसलिये चूकना नहीं है, आँख गड़ा कर बैठो कि अवसर आयेगा और जैसे ही बाल आगे डालकर आये उसे कस कर पकड़ लेना छोड़ नहीं देना। हर व्यक्ति के जीवन में अवश्य अवसर आता है, किन्तु वह सामने चेहरा दिखा कर के मुड़ जाता है, पीछे पकड़ने की कोशिश करे तो वह हाथ से फिसल जाता है। इसलिये मैंने आपको परिचय दे दिया है अवसर का, जब आपके जीवन में आये तो उसे खोना नहीं, तो अवसर की बात यहाँ आयी कि अवसर पर दिया गया थोड़ा सा दान भी बहुत बड़ा दान है। उस पुण्णंकर सेठ ने थोड़ी सी खिचड़ी का दान दिया, उस पुणिया सेठ के खजाने में इतना धन ही नहीं था कि वह उसे दे सके। अवसर पर किया गया थोड़ा सा उपकार बहुत बड़े फल को देने वाला होता है। किसी की पढ़ाई के लिये आज आपने 10,000 रु. फीस दे दी, भाग्य से ही वह बच्चा कल अच्छी नौकरी पर लग गया उसको पैकेज बहुत अच्छा मिला, तुम्हारे 10,000 रु. की बदौलत आज वह बहुत कमा रहा है। यदि उस समय न दिया होता तो, आज भले ही 10,000 नहीं 10 लाख दे दो पर फायदा नहीं किन्तु बात होती है अवसर की, जिसने उस समय आवश्यकता पर उसकी कमी को पूर्ण कर उसे आज यहाँ तक पहुँचाया। वे 10,000 उसके लिये आज के 1 करोड़ से भी ज्यादा महत्वपूर्ण थे। तो यहाँ पर आचार्य कह रहे हैं-बिना अवसर पर दिया अनर्थकारी होता है। जिसके पास है आवश्यकता नहीं

फिर भी दे दिया वह व्यसनों में फंस गया तो वह अनर्थकारी हो सकता है, अभिशाप हो सकता है, धर्म के लिये कलंक हो सकता है, अवसर पर वही देना है जो आवश्यक है-वह मांग रहा है पानी तुम दे रहे हो रसगुल्ला, वह कह रहा है भईया ये न चाहिये किन्तु वह तो कह रहा है नहीं-नहीं भईया आप ये ही खाओ कंठ सूख रहा है अगर पानी चाहिए तो पानी ही दो अन्य वस्तु नहीं। बिना अवसर की अच्छी चीज भी अच्छी नहीं होती। आगे कह रहे-

आमरणात् किं शल्यं–ऐसी क्या शल्य है जो मृत्यु पर्यंत निकलती नहीं ऐसा कौन सा कांटा है जो मृत्यु पर्यंत नहीं निकलता, जैसे मछली के गले में कांटा फंस जाये तो मृत्यु ही हो जाती है, ऐसे ही इंसान के लिये ऐसा कौन सा कांटा है जो चित्त में फंस जाता है। वह कांटा है-गुप्त पाप। वह गुप्त पाप ऐसा है चाहे दिन हो चाहे रात, व्यक्ति कहीं भी बैठा हो, व्यक्ति को जब याद आ जाता है, किसी के साथ विश्वास घात किया, अंधेरे में किसी का वध करके धन लूट लिया, किसी की इज्जत तार-तार कर दी या कोई और ऐसा खोटा कार्य कर दिया, जब अकेला बैठता है तो सोचता है उसने मुझसे कितनी क्षमा मांगी थी, मैं इतना निरीह कैसे हो गया। अब वह जिंदगी भर अंदर ही अंदर रोता है, आँसुओं से नहीं रो सकता, वह शल्य उसके अंदर कांटे की तरह चुभ रही है। वह ऐसे मृत्यु पर्यंत निकलती नहीं है। कहीं गुरु महाराज सहलाकर, ऑपरेशन करके निकाल दें तो अलग बात है अन्यथा बड़ी मुश्किल। तो शल्य माया मिथ्या निदान ये तीन ही होती है। कई बार हम सोचते हैं ये शल्य तीन ही क्यों बतायी, दो कह देते तो क्या हानि थी, चार कह देते तो क्या गलत था। ये बताओ तीन ही क्यों?

कारण ये-शल्य तीन ही होती हैं थी और रहेंगी न कभी दो न कभी चार। जैसे वार सात ही होते हैं। किन्तु इसमें नेचर के साथ-साथ एक तथ्य भी है-काल तीन होते हैं भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्यकाल शल्य तीन कौन-कौन सी होती है, मिथ्या, माया, निदान। जो भूतकाल की शल्य है वह है मिथ्याशल्य। भूतकाल में जो कुछ भी मिथ्या कार्य किया वह चुभ रही है। मिथ्यारूपी बात मिथ्याशल्य है, वर्तमान काल में जो मायाचारी कर रहे हो वह वर्तमान की शल्य है भवितय के लिए जो निदान कर लिया वह निदान शल्य है इसलिये तीन ही शल्य हैं। भूत की शल्य, वर्तमान की शल्य और भविष्य की शल्य भूत की शल्य-मिथ्यात्व, मैंने मिथ्यात्व में कौन-कौन से कृत नहीं किये वे चुभ रहे हैं तो शल्य है, और वर्तमान काल में यदि तुम मायाचारी कर रहे हो तो वह मायाचारी वर्तमान काल में तुम्हें चुभ रही है तो वह वर्तमान काल की शल्य है माया शल्य, भविष्य के लिये आकांक्षा कर रहे-इस साधना से मैं देव बनूँ चक्रवर्ती बनूँ अभी नहीं पर बनूँ भविष्य के लिये वह बात चुभ रही है कि मैं कैसे करूँ, जी जान लगाकर उसके लिये लगा पड़ा है-वह चुभ रही है तो वह भविष्य की शल्य निदान है। तो ये तीन शल्य बताई चौथी कोई शल्य नहीं हो सकती, दो से काम चल नहीं सकता, तो महानुभाव ! तीन शल्य तो हो गयीं

इन का निराकरण कैसे किया जाये ? वह शल्य निकलती है। गुरु के माध्यम से चाहे मिथ्या शल्य हो, चाहे माया या निदान शल्य। वह शल्य निकालने के लिये आचार्यों ने तीन हथियार दिये, ये तीन औजार दिये।

अतीत की शल्य, वर्तमान की शल्य और अनागत की शल्य। अतीत की शल्य को निकालने का उपाय है-प्रायश्चित, अतीत में जितने भी पाप किये हैं, गुरु के पास जाकर कह दो, कह दो कि किये थे, ये न कहो कि हो गये थे, उस समय हमारी बुद्धि मिथ्या थी, कषाय के आवेश में किया। जो बात है वह कह दो तो अंदर की शल्य निकल जायेगी प्रायश्चित के माध्यम से। वर्तमान की शल्य को निकालने के लिये ''तस्स मिच्छा मे दुक्कड़ं'' ''प्रतिक्रमण''जो वर्तमान में किया जाता है, भविष्य की शल्य को निकालने के लिये ''प्रत्याख्यान''। त्याग पहले से कर दो। विरक्ति का भाव, यदि भोग भोगने के लिये भी मिल जायेंगे तो उसमें आसक्त नहीं रहूँगा। तो इन शल्यों के निराकरण के तीन औजार प्रायश्चित, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान। आगे का श्लोक देखते हैं-

कुत्र विधेयो यत्नो, विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्वकार्या, खल परयोषित्परधनेषु॥१८॥

कुत्र विधेयो यत्नो-प्रयत्न/प्रयास/कोशिश हमें कहाँ करनी चाहिये। तो बता रहे हैं तीन कार्य में सदैव प्रयास करना चाहिये।

'विद्याभ्यासे, सदौषधे, सद्दाने'-विद्या का अभ्यास करने में निरन्तर करते-करते यदि वृद्ध अवस्था भी हो जाये, चाहे मुँह में दांत, पेट में आंत न रहे तो भी विद्या का अभ्यास छोड़ना नहीं है, अच्छी विद्या का अभ्यास करते रहोगे तो विद्या तुम्हारी रहेगी अन्यथा विद्या विसर जाती है।

घोड़ा अड़े और पान सड़े विद्या विसरे, राय में रोटी जले''

यानी-घोड़ा अड़ा क्यों ? क्यों कि घोड़े को फेरा नहीं, पान सड़ा क्यों?-पान का पत्ता फेरा नहीं, विद्या बिसरी क्यों? विद्या को बार-बार फेरा नहीं और रोटी जली क्यों ? क्योंकि रोटी को बार-बार फेरा नहीं। ऐसे ही विद्या फेरने से बढ़ती है। जितना सरस्वती का दान करते जाओगे उतने ही उन्नति को प्राप्त होते जाओगे।

अपूर्वकोटि कोषोयं विद्यते तव भारती।
संचितो क्षय मायाति व्यय मायाति संचयात्॥

''हे भारती सरस्वती देवी आपका ऐसा अपूर्व भण्डार है-व्यय करते चले जाओ तो वृद्धि होती चली जाती है और संचय करने से क्षय को प्राप्त हो जाती है।''

यहाँ पर भी कह रहे विद्या का अभ्यास करना चाहिये, दूसरी बात-सदौषधे-यदि औषधि समीचीन है तो उसका सेवन करते जाओ जब तक रोग सम्पूर्ण नष्ट न हो जाये तब तक औषधि

को न छोड़ो। जन्म जरा मृत्यु जैसे रोगों के लिये रत्नत्रय औषधि का सेवन करना है। तीसरी बात कही-''दाने''-दान में हमेशा प्रयत्न करना चाहिये, कहाँ दान सही दिया जा सकता है। आप कहोगे-महाराज जी मुनिमहाराज जी तो स्वयं हमारे घर में आते हैं हम कहाँ जाते, पर भईया उनके आने से पहले शुद्धि का जल लेकर तो आप ही जाते हैं उनके कमण्डल में भर कर आते हो, तो महाराज जी शुद्धि करके आ गये, और फिर वो तुम्हारे घर नहीं आये वे तो निकल कर जा रहे थे तुम घर से बाहर निकल करके आये तुमने जाते हुये को रोक लिया, तो दान देने का अवसर खोजा जाता है, अवसर आता है तो उसे निकलने मत दो, और जीवन में यदि वह अवसर मिल जाये तो कभी उसे बदलने मत दो, क्योंकि अवसर आया और मन बदल गया तो, महानुभाव! जीवन का सूर्य जब तक उदीयमान है ऊपर चढ़ा हुआ है तब तक जीवन में यथेष्ट दान दे दो जीवन के सूर्य को ढलने मत दो, जो व्यक्ति ऐसे बुद्धि से कार्य करता है, नि:संदेह वह अपने जीवन को सफल और सार्थक कर लेता है। दूसरी बात कही-

''अवधीरणा क्वकार्या''-कौन से कार्य में अवधारणा करना, अवधीरणा अर्थात् उपेक्षा, उपेक्षा किसकी करनी है ? तो यहाँ बताया-**''खलपरयोषित्परधनेषु''** दुष्ट की उपेक्षा करो, दुष्ट से कभी अपेक्षा न करो कि ये कभी मेरा भला करेगा, और परायी स्त्री से कभी अपेक्षा न करो कि ये कभी पुण्य का या सुख का कारण बनेगी वह तो नियम से दु:ख का कारण है-

परस्त्री पैनी छुरी, तीन ओर से खाये।
धन नाशे, यौवन हरे मरे नरक ले जाये॥

इसीलिये परस्त्री को देख कभी अपने भाव न बिगाड़ो। और 'परधनेषु'-दूसरे का धन तो मिट्टी के समान है। **''परद्रव्येषुलोष्टवत्''** परधन में कभी अपना मन खराब न करो, उसकी उपेक्षा कर दो।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषुलोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

दुष्टों की, परस्त्री व पर धन की उपेक्षा करके जो जीता है वह जीवन में सुख शांति को प्राप्त करता है, जो ऐसा नहीं कर पाता है उसे जीवन में दु:ख भोगने के लिये तैयार हो जाना चाहिये।

काहर्निशमनुचिन्त्या, संसारासारता न च प्रमदा।
का प्रेयसी विधेया, करुणादाक्षिण्यमपि मैत्री॥१९॥

का अहर्निश मनुचिन्त्या-दिनरात किसका चिन्तवन करना चाहिये ?

संसारासारता-संसार की असारता का दिनरात चिन्तवन करना चाहिये।

न च प्रमदा-अपनी स्त्री का चिंतवन नहीं करना चाहिये। मेरे बाद मेरी स्त्री का क्या होगा? पुत्रों का, पोतों का क्या होगा, मेरे बाद मेरा मकान, मेरी दुकान का क्या होगा? मेरे बाद मेरे मित्रों का क्या होगा? सिर्फ संसार की असारता का चिन्तवन करो। आज श्वांस आ रही है, कल दूसरी श्वांस का भरोसा नहीं आये न आये, जो संसार की इस असारता का चिंतवन करता है वह अपना कल्याण कर लेता है। जो प्रमदा का चिंतन करता है इसका क्या होगा? उसका क्या होगा? कोई किसी का ठेका लेकर नहीं आया, सबकी अपनी श्वांस अलग-अलग है किसी से किसी का साथ नियामक नहीं है, आज साथ-साथ चलने वाले कल कहाँ तक किसका साथ देंगे इस बात की कोई गारण्टी नहीं हैं। जब हमें अपनी श्वास की गारण्टी नहीं है तो कौन किसका साथ दे सकता है। तो संसार की असारता का चिन्तन करो आँख बंद करके चिन्तवन करने बैठो तो रात कम पड़ जायेगी, दिन कम पड़ जायेगा, ये जीवन कम पड़ जायेगा, कुछ भी नहीं संसार की असारता का चिंतन ही सामायिक है, वही स्वाध्याय है, वही प्रतिक्रमण है, वही प्रत्याख्यान है वही सब है। इस संसार में कोई सार नहीं यह तो माटी का लोंदा है इसमें आत्मा के प्रदेश बंधे, कब श्वास रूपी बटोही उड़ जाये, श्वासों का पखेरू (पक्षी) जब तक नहीं उड़ा है तब तक इस श्वास से अपने जीवन का अहसास कर लेना चाहिये, तब तक धर्म पर थोड़ा विश्वास कर लेना चाहिये। तब तक अपने जीवन का विकास कर लेना चाहिये। और हो सके तो उस अंधकार का, उस दुष्ट खल का, पाप का, कर्मों का विनाश कर लेना चाहिये जिसने आज तक हमारा विनाश किया है। महानुभाव ! संसार की असारता का चिंतवन बहुत जरूरी है। और दूसरी बात कह रहे-**का प्रेयसी**-प्रेयसी कौन हो, कैसी हो ? आचार्य महोदय कह रहे-प्रेयसी बनाओ एक नहीं दो चार बनाओ, कोई परेशानी नहीं, पर वह कैसी हो, वह तुम्हारे लायक है या नहीं। तुम्हें पसंद करती है या नहीं, वह पसंद कैसी हो सकती है-करुणा को अपनी प्रेयसी बनाओ, दाक्षण्य, चतुराई को अपनी प्रेयसी बनाओ, मैत्री को, शांति को प्रेयसी बनाओ, ऐसी प्रेयसी बनाई जा सकती है-सरलता, सहजता, क्षमा ये सब प्रेयसी बनाई जा सकती हैं।

महानुभाव !

दिन रात हमें किसकी चिंता करनी चाहिये ? 'संसार असारता' संसार की असारता का विचार करते रहना चाहिये। न च प्रमदा-प्रकृष्ट मद को उत्पन्न करने वाली है उस प्रमदा का नहीं। जो मद की प्रकृष्ट बुद्धि कही जाती है उसकी संगति में यदि पुरुषार्थी व्यक्ति भी चला जाये तो वह मदोन्मत्त हो जाता है। पुरुष पुरुषार्थी होता है किन्तु वह भी प्रमदा की संगति में चला जाये तो आलसी हो जाता है उसका फिर स्त्री गोष्ठी में से निकलकर और कोई काम करने का मन नहीं होता, स्त्री गोष्ठी में बैठने वाले व्यक्ति के सामने सदैव समय की कमी ही कमी होती है उसके पास अच्छे कार्यों के लिये समय कभी मिलता ही नहीं है। गोष्ठी में सज्जन पुरुषों को तो तत्त्वचर्चा से समय नहीं मिलता है-

''काव्य शास्त्र विनोदेन, कालो गच्छति धीमताः।
व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेन वा॥

''जो बुद्धिमान पुरुष हैं उनका समय काव्य शास्त्र विनोद में जाता है और मूरख व्यक्तियों का समय व्यसन, निद्रा व कलह करने में जाता है।''

जो क्लेशी है उसे क्लेश करने से समय नहीं मिलता निद्रालु व्यक्ति को जब चाहे तब सुला लो और व्यसनी अपने व्यसन में लीन, तो सबके कार्य अलग-अलग है। ''जाकी जामें लगी लगन, वो वा ही में मगन'' यहाँ कह रहे है-प्रमदा-मद को पैदा करने वाली। मद ध्यान रखना यह दम लेकर छोड़ता है। या तो मद की दम निकाल दो नहीं तो वह तुम्हारी दम निकाल देंगे। मद व्यक्ति को किससे आता है ? आचार्य समंतभद्र स्वामी कहते हैं-

ज्ञानं पूजा कुलं जाति बलं ऋद्धि तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः॥

जो अहंकार से रहित है ऐसे तीर्थंकर भगवान ने कहा-कि आठ चीजों के माध्यम से इंसान के जीवन में अहंकार पैदा होता है। यदि किसी के पास शब्द ज्ञान ज्यादा है तो उसे अहंकार आ सकता है, यदि उसकी कोई पूजा कर रहा है चरणों में माथा रखता है तो उसको भी अहंकार आ सकता है, कुल का अहंकार उच्च कुल में पैदा हुये तो उसका भी अहंकार आ सकता है, जाति-का, बल का, चाहे शरीर का बल हो या मन का बल हो या धन का हो। ऋद्धि का मद, किसी विशेष उपलब्धि का मद जो किसी और के पास नहीं है, तपस्या का मद, शरीर की सुंदरता का मद, तो आचार्य समंतभद्र स्वामी ने ये 8 प्रकार के मद कहे व्यक्ति को इन आठ बातों से जीवन में अहंकार आ सकता है, किन्तु यहाँ पर आचार्य अमोघवर्ष मुनिमहाराज कह रहे हैं-इन आठों के निमित्त से जो मद नहीं आता उन आठों से आठ गुना मद इस नौवीं वस्तु से आ जाता है-जिसके पास प्रमदा है। जो व्यक्ति प्रमोदी होता है, प्रमोद का आशय आप यह नहीं समझना कि हंसी मजाक करने वाला हो, भण्ड वचन बोलने वाला हो-प्रमोद का आशय-प्रकृष्ट मोद उत्पन्न करने वाला जो गुणग्राही हो, गुणी जनों के गुण को देखकर जो प्रमुदित हो जाये, रंजायमान हो जाये, रोम-रोम पुलकित हो जाये, तो जो व्यक्ति प्रमोदी है गुणों के प्रति अनुरागी है ऐसा व्यक्ति प्रमदा की संगति से जल्दी छूट जाता है और जिसके अंदर प्रमोद भाव नहीं है उसके अंदर प्रमाद भाव आता चला जायेगा वह प्रमदा की संगति से मदोन्मत्त भी हो जायेगा और प्रमादी भी हो जायेगा। प्रमदा मद ही पैदा नहीं करती प्रमादी भी बनाती है। महानुभाव ! वह प्रमाद सब पापों का मूल है, आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थ सूत्र में कहा-**''प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा''** प्रमाद के योग के साथ स्व-पर के प्राणों का व्यपरोपण करना हिंसा है। प्रमत्तयोगात् नहीं

है तो आचार्य उमा स्वामी महाराज, आ. पूज्यपाद स्वामी महाराज, आचार्य अकलंकदेव स्वामी आ. विद्यानंदि सभी ने कहा-जहाँ तक प्रमाद है वहाँ तक तुम्हारे जीवन में पाप का आश्रव होता है। जब प्रमाद गया तो अबुद्धिपूर्वक यदि कहीं योगों की अशिष्टता के कारण या कषाय पड़ी हुयी है तो वह अप्रमत्त योगी सप्तम गुणस्थान से ऊपर वाले के वहाँ जो आश्रव हो रहा है अन्तर्मुहूर्त का आश्रव, ज्यादा नहीं होता और किन्हीं-किन्हीं कर्मों का आश्रव तो हो ही नहीं रहा, और 10 के आगे सूने घर का पाहुना ज्यों आवे त्यों जाये। महानुभाव ! प्रमाद योग से युक्त दूसरों को सताना हिंसा है, प्रमाद से युक्त झूठ बोलना, मिथ्या भाषण बोलना असत्य है, प्रमाद योग है तो प्रमदा के साथ रमण अब्रह्म भी हो सकता है, प्रमाद योग है तो परिग्रह का संचय भी होता है। आलसी व्यक्ति संग्रह करता है, पुरुषार्थी व्यक्ति संग्रह नहीं करता। महानुभाव ! प्रमदा से विरक्ति की भावना भाओ। संसार शरीर भोगों से विरक्ति हो यही अहर्निश ध्यान करो वैराग्य भावना में बारह भावनाओं का पूर्ण निचोड़ है। जो संसार की असारता का बोध कराती है।

किसी भी तथ्य का, तत्त्व का अवलंबन लेकर संसार की असारता का चिंतवन करो, जो कर्मों पर टिका हुआ है वह संसार। आकाश में चमकती हुयी बिजली की तरह से इन कर्मों पर क्या विश्वास करें जो कर्म क्षण भर में राजा से रंक बना दें, क्षणभर में चक्रवर्ती को सातवें नरक का नारकी बना दें, सामान्य से अकिंचन्य को क्षणभर में सिंहासन पर पहुँचा दे, इन कर्मों पर क्या भरोसा किया जाये, भरोसा करना है अपनी करनी पर। जिसे अपनी करनी पर भरोसा है उसे अलग से कर्मों पर भरोसा करने की आवश्यकता नहीं। किन्तु इस संसार में एक ऐसी चीज है जो पुरुष के पुरुषार्थ को खण्डित करने वाली है वह संसार की चीज है प्रमदा। और प्रमदा जब साथ में होती है तो फिर संसार असार नहीं दिखता। ऋषभदेव को जिस प्रमदा के माध्यम से आनंद आ रहा था उस नीलांजना के नृत्य से जब उसकी मृत्यु हुयी तब लगा संसार असार है, वैराग्य जाग्रत हुआ। जब प्रमदा साथ होती है तो संसार की असारता दिखाई नहीं देती, बोध नहीं हो पाता। महानुभाव ! प्रेयसी कौन हो-पहली प्रेयसी कही करुणा-जिसके अंदर से करुणा का भाव आ रहा है। करुणा का भाव किसके प्रति आ रहा है 'क'-कहिये तो आत्मा 'रु' रुह-'णा'-नष्ट न होने वाली, करुणा ऐसी होनी चाहिये जो आत्मा के प्रति हो, रुह आत्मा की प्रतिष्ठा के प्रति हो ण जो कभी नष्ट न होने वाली हो। करुणा आत्मा के प्रदेशों से होना चाहिये, और आत्मा के लिये होना चाहिये। ऋषभदेव स्वामी जब अपना सब वैभव छोड़कर दीक्षा लेने चले, नंदा-सुनंदा विलाप करने लगी, माता-पिता, नगरवासी सभी विलाप कर रहे, तब उन्होंने कहा-अभी तक हमने इन सब पर दया की करुणा की ये ही हमारे लिये घातक हो गया यदि हम अपनी आत्मा पर करुणा करेंगे तो हमारी आत्मा की प्रतिष्ठा बढेगी! दूसरों पर, इस मिट्टी पर क्या करुणा करना, करुणा यदि करना है तो व्यक्ति के अंदर जो चिन्मय ज्योति है उस पर करुणा करना है यह ज्योति शाश्वत जलती रहे कहीं

अंधेरे में घुट न जाये, ये ज्योति तूफान में कहीं लुट न जाये। जो जड़ बुद्धि हो जाता है वही इस माटी पर करुणा करता है वह करुणा, करुणा नहीं मोह कहलाता है।

वह कहलाती है 'वासना' वह कहलाता है प्रेम/राग। किसी की देह से लगाव रखना वह प्रेम नहीं वासना है। और यदि उसके गुणों से, उसकी अच्छाईयों से व्यक्तित्व से राग है तो वह कहलाता है प्रेम और उसके अस्तित्व को अपने में मिलाकर के प्रेम करना वह कहलाता है मोह। और उसके गुणों को देखकर के गुणों को संवर्धित करने की प्रेरणा देना वह कहलाता है वात्सल्य गुणों पर रीझ करके अपना समर्पण कर देना गुणों के लिये वह कहलाती है भक्ति। तो महानुभाव अलग-अलग रूप हैं इसके, अभी तुम नीचे वाले खण्ड में पड़े हो जिसमें कूड़ा कचरा भरा हुआ है, नाभि से नीचे का स्थान अधोस्थान कहलाता है इसके लिये यदि आकर्षण है तो वासना है पाप है, यदि पेट तक के लिये कोई चीज है तो वह राग की, मोह की श्रेणी में आ सकता है, जैसे माँ का बेटे के प्रति, बाप का बेटे के प्रति, और जब वह दिल से उत्पन्न होता है तब वह प्रेम की दृष्टि में आ सकता है। जब वह मस्तिष्क से बुद्धि परख हो तो वह प्रगाढ़ राग की कोटि में आ सकता है और जब वह आत्मा का आत्मा के प्रति ब्रह्म स्थान से होता है तब वह गुणों का संवर्धन करने वाला वात्सल्य बन जाता है वह समग्र भाव बन जाता है वही करुणा बन जाती है जो नीचे से लेकर ऊपर तक आत्मा के प्रत्येक प्रदेश से नि:सृत होती है वहाँ तक यदि हो रही है तो करुणा है। तो प्रेयसी किसे बनाओ करुणा को। अगली बात कही प्रेयसी किसे बनाओ 'दक्षता'-'द'-दमन, क्ष-क्षमा, त-तारने वाली। जो इन्द्रियों का दमन करता है, क्षमा कर सकता है वही व्यक्ति वास्तव में दक्ष है। दमन-खमन गुण ही संसार से पार लगाने वाले हैं। अगली प्रेयसी बनाने के लिये कहा-मैत्री-म-मय चेतना के स्वभाव का प्रतीक है। त्र-त्राता। जो आत्मा का रक्षक है, आत्मा की सेवा करने वाला त्री (स्त्री जाति) लगा दी वह सेवा भावी हो सकती है। मैत्री स्त्री वाची शब्द है तो जो आत्मा की सेवा करने वाला, रक्षा करने वाला है, वह मैत्री भाव है। तो महानुभाव इन तीन को प्रेयसी बनाओ। या शांति को शांति-जिन्होंने कषायों का शमन कर दिया हो, अथवा दया-द-दमन या-याति प्राप्ति दमन की प्राप्ति दया है, इन्द्रियों का दमन जिसने किया है वे ही वास्तव में दयालु हैं। पहले जमाने में लोग दयालु होते थे और आज के जमाने में दे आलू सुबह शाम दे आलू। तो दयालु बनना है, सुबह-शाम दे आलू नहीं महानुभाव-सहजता को भी प्रेयसी बना सकते हैं सहजता-सहने से जो जन्म ले वही तारने वाली है। सरलता-जल की तरह से निर्मल और तरल सभी जगह स्थान पाने में समर्थ। संसार में सलिल से ज्यादा सरल कुछ और होता ही नहीं क्योंकि वह सब जगह अपना स्थान बना लेता है। इतना सरल इतना सरल कि किसी के भी चित्त में जाकर तुम अपना स्थान बना सकते हो। सरलता सब जगह पूजी जाती है कठोरता सब जगह कूटी जाती है। तो महानुभाव यहाँ कह रहे कि करुणा, दक्षता, मैत्री, दया, सरलता,

सहजता इत्यादि गुण प्रेयसी बनाने के लायक हैं। प्रेयसी वह जो अपने प्रेमी के साथ अविनाभावी रूप से रहे। जैसे चन्द्रमा और चन्द्रमा की चाँदनी। तो प्रेयसी गुणों को बनाना है। अगली कारिका कल देखेगें-

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

वंदे सम्यक् आचरण

कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्यात्मा नो समर्प्यते जातु।
मूर्खस्य विषादस्य च गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य॥२०॥

असुभि प्राणों के, कण्ठ गतैः- कण्ठगत हो जाने पर, **अपि**-भी, **आत्मा**-अपने को, **कस्य**-किसके, **समर्प्यते**-अधीन, **नो जातु**-नहीं करना चाहिए, **मूर्खस्य**-मूर्ख के, **विषादस्य**-विषादयुक्त के, **च गर्वस्य**-और घमंडी के, तथा कृतघ्नस्य-तथा कृतघ्नी के (अधीन कभी नहीं करता चाहिए)

कण्ठगतैरप्य सुभिः-

यदि प्राण कण्ठ में भी आ गये तो व्यक्ति सोचता है कि हे भगवान कैसे भी हो मेरे प्राणों की रक्षा हो जाये। यहाँ तक कि कोई उससे कह भी दे कि यहाँ से तेरा नियम से स्वर्ग में ही वास होगा तब भी वह सोचता है यदि अभी न मरूँ तो ही अच्छा है। बचाव तो करता है। उसे प्राणों से बड़ा नेह है। 'मरता क्या न करता'-यदि दुष्ट के हाथों में भी जाना पड़ता है तो वह जाता है। वह कहता है कि जिंदगी भर मेरी गुलामी करनी पड़ेगी, वह राजी हो जाता है, सब कुछ करने के लिये हामी भर देता है, किन्तु ऐसा वही कर सकता है जो सिद्धान्त विहीन है, सिद्धान्तवादी व्यक्ति मरना स्वीकार कर लेगा किन्तु वह अनैतिक कार्य को, अन्याय के कार्य को, अधम के कार्य को स्वीकार नहीं करेगा। मनस्वी व्यक्ति तो उस पुष्प की तरह से होता है। जंगल में बिखर जायेगा, सूख जाता है किन्तु किसी मुर्दे के चरणों में चढ़ना स्वीकार नहीं है, रानियों के गले का हार बनें कि तो राजा के मुकुट में लगे, रानियों के वैडूर्य में लगेगा किन्तु मुर्दो पर नहीं। वह मनस्वी मनुज चाहे वीर पुरुष के पैरों के तले कुचल जायेगा किन्तु कायर के पास नहीं जायेगा। 'मरता क्या न करता' वह मरने को तैयार है और संभव होगा तो मरते-मरते भी मारकर जायेगा, जब मरने वाला मरने को तैयार हो जाता है तब सौ पर भारी पड़ जाता है, हजार पर भारी पड़ जाता है, और जो अपना बचाव करना चाहता है, बचता है पर बच नहीं पाता कहीं न कहीं मर जाता है।

सत्य घटना है एक गाँव में डाका डालने के लिये कुछ लोग आये रात्रि में गाँव के गाँव लूट ले जाते थे, एक गाँव में 2-4 सम्पन्न व्यक्ति रहते थे, वह जिस गली में रहते थे वह आर-पार थी, डाकूओं ने दोंनों ओर से वह गली घेर ली, रात भर युद्ध हुआ गाँव वालों के हाथ जो भी पड़ा सब को उठा लिया, उस गाँव में कुछ लोग तो मृत्यु को देखकर भाग गये, किन्तु जो बचे उनने सोचा हम बचेंगे तो नहीं ये 40-50 लोग और हम 10-5 हैं, वे उन पर ऐसे टूट पड़े, ऐसे वार किये 5-10 लोग तो वहीं धराशाही हो गये उन डाकूओं ने एक व्यक्ति पर वार ऐसा किया कि उसके गले पर तलवार लगी, और गर्दन नीचे गिर पड़ी, गर्दन कटने के बावजूद भी वह आँखों से देख

रहा है। तलवार उसके हाथ में है और मुंड कटने के उपरांत भी चलती चली जा रही है 10 व्यक्ति को उसने तब भी खत्म कर दिया। उस दिन से उस गाँव में आज तक डकैती नहीं पड़ी, उस व्यक्ति की गाथा आज भी गायी जाती है, तो महानुभाव !

व्यक्ति प्राण कण्ठ में भी आ जायें, तो भी कई लोगों पर भारी पड़ सकता है, प्राण कण्ठ में रखकर संसार का कोई भी कार्य कर सकता है, जब तक प्राण को संभालकर रखता है तब तक सबसे समझौता करने को तैयार हो जाता है। चाहे कुछ भी हो सबसे समझौता कर लेगा, और जब प्राणों की परवाह नहीं तो मरना है। दूसरों के तलवे चाट कर नहीं अपनी श्वास से जाऊँगा।

देश के लिये भी जो शहीद हुये फाँसी के तख्ते को हँसते-हँसते स्वीकार किया। चाहते तो उनकी फाँसी टल सकती थी किन्तु उन्होंने सोचा हमारी फाँसी टल गयी तो अंग्रेजों को लगेगा कि हम झुक गये।

महानुभाव ! व्यक्ति जब प्राणों को हाथ में रख लेता है तब निर्भीक हो जाता है। सम्यक् दृष्टि सात प्रकार के भय को अपनी आत्मा से बाहर निकाल कर फेंक देता है निर्भीक जीवन भर रहता है, जिसकी आत्मा मे भय है वह प्रतिदिन क्षण-क्षण में मर रहा है। भयभीत होकर जीना कोई जीना कहलाता है क्या ? व्यक्ति कहता है पराधीनता के जीवन से तो मौत अच्छी है। इसलिये जीवन में जीऊँगा तो शान से जीऊँगा मरूँगा तो भी शान से। वीरता से मरूँगा कोई मुझे तड़पा-तड़पा कर नहीं मार सकता। कोई क्षत्रिय राजा पीठ दिखाकर नहीं भागा।

पृथ्वी राज चौहान ने मौहम्मद गौरी को 17 बार युद्ध में हराया 17 बार क्षमा किया, ये भारतीय संस्कृति ही हो सकती है क्षमा करना हरा कर के जीतना।

पकड़-पकड़ कर छोड़ दिया, क्या ये गलती हमारी थोड़े थी।
सोमनाथ के मंदिर में कई मूर्ति आपने तोड़ी थी॥

पृथ्वी राज चौहान से थोड़ी गलती तो हुयी संयोगिता की वजह से इसलिये वह सुल्तान की जेल में पहुँच गया, सुल्तान ने कहा हमारी रगों में भारतीय खून नहीं जो एक बार पकड़ कर छोड़ दें, उस सम्राट ने उसकी आँखें निकाल दी कहा-इसमें नमक मिर्च डाल दो। जब पृथ्वीराज का मित्र चन्दू चन्दवरदाई मिलने गया तब पृथ्वी ने क्या किया-वह शब्द भेदी बाण चलाना जानता था, चंदू ने उससे कहा-

चार बांस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण।
ता ऊपर सुल्तान है मत चूको चौहान॥

घंटे की आवाज आयी, पृथ्वीराज ने तीर चलाया वह सुल्तान मर गया, उस सुल्तान के सैनिक आये उससे पहले पृथ्वी ने चंदू से कहा-तेरे पास कटार है वे आयें मुझे मारे उससे पहले तू मुझे

मार दे, चन्दवरदाई बोला-मैं तुझे कैसे मार सकता हूँ तू मेरा मित्र है मैं तेरे लिये अपने प्राण दे सकता हूँ। पृथ्वी ने कहा-तू मुझे मारकर ये कटार मेरे हाथ में रख देना मैं शत्रुओं के हाथ नहीं मरना चाहता।

महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि व्यक्ति के प्राण कण्ठ में भी आ जायें तब भी वह व्यक्ति किसी की अधमता, नीचता स्वीकारता नहीं है। कोई भी कुलीन स्त्री भूखा रहना पसंद कर सकती है पर क्या वह वैश्या बन सकती है। ऐसे ही क्षत्रिय राजकुमार भूखों मरकर शरीर छोड़ सकता है पर क्या कभी शूद्र की नौकरी कर सकता है। हाँ धर्म की रक्षा के लिये भले ही राजा हरिश्चन्द्र ने मरघट की रखवाली की, वचन की रक्षा के लिये राम ने वन-वन भ्रमण किया, वह अलग चीज है किन्तु प्राणों की रक्षा के लिये, किसी की जी हुजुरी करें ऐसा तो संभव ही नहीं। तो महानुभाव यहाँ कहा-प्राण यदि कण्ठ में आ जायें फिर भी इन चारों से समझौता मत करो-इन चारों को अपना जीवन समर्पित न करो। इन चारों को अपने जीवन की बागडोर न सोंपो वे चार हैं-

१. मूर्खस्य-मूर्ख व्यक्ति को कभी मित्र मत बनाओ वह स्वयं उपद्रव करके आयेगा और तुम्हें फँसायेगा, मूर्ख को अपना सचिव, मंत्री भी नहीं बनाना चाहिये। हमारे राज्य में मंत्री नहीं कोई बात नहीं पर मूर्ख भी न हो।

एक राजा ने बंदर को अपना बॉडी गार्ड बनाया, गर्मी का समय था, राजा सो रहा था, एक मक्खी बार-बार आये और राजा की नाक पर बैठ जाये, उसने 8-10 बार हटाया किन्तु वह मक्खी तो परेशान ही किये जा रही थी, बंदर को आया गुस्सा उसने निकाली तलवार और मक्खी पर खींचकर मारी, मक्खी तो चली गयी उड़कर अलग पर राजा की नाक लटक गयी। तो सेवक ऐसा मूर्ख व्यक्ति भी नहीं होना चाहिये, मूर्ख के हाथ अपनी बागडोर सौंप दी तो वह मूर्ख दूसरों को मारेगा नहीं पर तुम्हें मरवा देगा, नरक से ज्यादा दु:ख देगा।

२. विषादस्य-जो दु:खी है, जब देखो तब आँसू बहा रहा है। किसी व्यक्ति से हमने पूछा भई! हम सब लोग मुस्कुरा रहे हैं तुम क्यों रो रहे? बोले-इनका चेहरा ही ऐसा है हंसे तब भी लगे रो रहा है। तो ऐसे व्यक्ति के साथ बैठोगे तो कभी हँस ही न पाओगे। आर्त्त ध्यानियों के बीच बैठकर आर्त्त ध्यान हो जाता है। उनको भी अपनी जीवन की डोर मत सौंपो।

३. गर्वस्य-अहंकारी व्यक्ति सदैव दुतकारता ही रहेगा, वह किसी को कुछ समझेगा ही नहीं। अहंकार बैर का बीज है पतन का मार्ग है, यदि तुम्हें किसी से बिगाड़नी है तो अहंकार से बात करो। अहंकार तोड़ता ही तोड़ता है, स्वयं टूटता है और तोड़ता है। वात्सल्य ऐसा गोंद है जिसको भी दोगे वह नियम से जुड़ेगा ही जुड़ेगा। रावण अहंकारी था उससे उसका सगा भाई टूट गया और जो वात्सल्य वाले रहे विभीषण विनम्र होकर राम के पास पहुँच गये वे भी ऋणी हो गये।

एक बार कन्फ्यूशियस के पास कुछ शिष्य आये कन्फ्यूशियस ने कहा-मैं अब वृद्ध हो गया सन्यास के माध्यम से शरीर का त्याग करता हूँ। शिष्यों ने कहा-अंतिम उपदेश दीजिये, कन्फ्यूशियस ने मुँह खोला और बंद कर दिया पर कुछ कहा नहीं, शिष्यों ने कहा-गुरु जी आपने सुना नहीं हम कह रहे हैं कुछ अंतिम उपदेश दीजिये। गुरु बोले उपदेश तो दे दिया, मुँह दिखाया, मुँह में क्या है-वे बोले कुछ नहीं, गुरु ने कहा-तुम्हें दिखता नहीं-बोले जीभ है ? गुरु ने कहा यही उपदेश दे रहे हैं कि जीभ दिखाई दे रही है जीभ विनम्र है वह जन्म के पहले से ही आई थी और मृत्यु उपरांत भी रहेगी, और दांत जन्म के बाद आते हैं मृत्यु से पहले टूट जाते हैं। क्योंकि जीभ में कोमलता है विनम्रता है दांतों में कठोरता है जो कठोर होता है वह टूट जाता है और दूसरों को तोड़ता है। ये ही संदेश है कि कठोरता अल्पायु वाली होती है विनम्रता दीर्घ जीवी होती है। और कहा जो दूसरों को अभय देता है वह भी दीर्घ जीवी होता है। महानुभाव! अहंकारी का साथ अच्छा नहीं। अहंकारी सेवक भी तुम्हारी सेवा नहीं करेगा, चाहे मित्र हो, साथी हो किसी को भी अपना समर्पण मत करो।

४. कृतघ्नस्य-चौथी बात कही कृतघ्नी व्यक्ति को भी अपना जीवन समर्पण मत करो। उसके लिये तुम अपना जीवन भी दे दोगे तब भी वह कहेगा-तुमने किया ही क्या मेरे लिये, वह उपकारी के उपकार को कभी नहीं मानता। एक कहावत आती है-

मुर्गी की तो जान गयी, मिया को मजा नहीं आया।

ऐसे ही व्यक्ति किसी कृतघ्नी को समर्पण करता है तो वह भी दु:खी होता है। दामाद यदि कृतघ्नी बन गया तो ससुराल वाले चाहे कितना ही दे जायें तब भी वह कहेगा दिया ही क्या? और जो कृतज्ञी होता है वह कहेगा बहुत कुछ दिया है। मेरा जीवन ही बना दिया। यहाँ पर चार बातें कहीं। अपना जीवन इन चारों व्यक्तियों को कभी मत सौंपो, मृत्यु के सन्निकट आने पर भी ये चारों कभी भला नहीं कर सकते। अगली कारिका कहते हैं-

कः पूज्यः सद्वृत्तः कमधनमाचक्षते चलितवृत्तम्।
केन जितं जगमेतत्, सत्यतितिक्षावता पुंसा॥२१॥

कः पूज्यः-संसार में पूज्यनीय कौन है ? **सद्वृत्तः**-जिसके पास समीचीन व्रत हैं

कः अधनः आचक्षते-कौन निर्धन देखा जाता है ?

चलितवृत्तम्-जो चारित्र से, संयम से भ्रष्ट हो गया वही वास्तव में दरिद्र है, हीन है, गरीब है।

केन जितं जगमेतत्-यह जग किसके द्वारा जीता जा सकता है।

सत्यतितिक्षावता पुंसा-सत्यवादी व क्षमाशील व्यक्तियों द्वारा ही संसार जीता जा सकता है। अन्यथा तोप तमंचों द्वारा संसार नहीं जीते जाते, शरीर जीते जाते हैं, निर्भीक बनो, व्यक्ति 100 गलती भी करे तो क्षमा करते जाओ, हथियारों से जग नहीं जीते जाते।

मैं कई बार कहता हूँ कि दूसरों से जीतना बड़ा सरल है पर अपनों से जीतना बहुत कठिन है। दूसरों को अस्त्र-शस्त्रों से तो जीत सकते हैं पर अपनों को तो प्रेम से ही जीता जा सकता है और जो व्यक्ति उदारमना सभी के प्रति मैत्री, प्रेमभाव रख सकता है वह सभी को अपना बना सकता है। पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज सदैव कहते हैं कि ''मत ठुकराओ, गले लगाओ, धर्म सिखाओ'।

व्यक्ति को प्रेम से अपना बनाकर उसे सद्मार्ग पर लगाओगे छोटे से छोटा तिनका भी उसके काम आ सकता है।

''जो जैनी है नाम का, वह भी अपने काम का''

चाहे भले ही वह श्रावक स्वाध्याय प्रेमी हो या जिनेन्द्र की पूजार्चना में संलग्न हो या व्रत उपवास में अति रूचि रखने वाला हो या दान की प्रवृत्ति विशेष हो या शीलादि व्रतों का पालन करने वाला हो अथवा इन सब गुणों से विहीन ही हो तब भी समादरणीय ही है तब भी उसकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए। साधक तो नि:संदेह सदैव पूजनीय ही होते हैं चाहे वे अक्षर ज्ञान से रहित है, चाहे विशेष तप से रहित हों चाहे वे संयम का उत्कृष्ट रीति से पालन करते हैं या जघन्य रीति से। शिवभूति मुनि महाराज, यम मुनि महाराज, ललितांग मुनि महाराज (अंजन चोर) प्रभव मुनि महाराज (विद्युच्चर चोर) एवं रोहिणी व रोहिताश्व का पुत्र रोहिणेय मुनि महाराज (भ. महावीर स्वामी के काल का सुप्रसिद्ध चोर रोहिणेय) आदि ये सभी मुनि अवस्था में भी विशेष ज्ञान से रहित थे फिर भी इन्होंने अपने आत्म कल्याण स्वर्ग, मोक्ष को प्राप्त किया। यदि कोई साधक शब्द ज्ञान की अपेक्षा विशेष ज्ञानी है, उग्र तपस्या करने में असमर्थ है, संयम व तप का सामान्य पालन करने वाला है तब भी वह पूज्य ही है। राजवार्तिक ग्रंथ में कहा भी हैं-

ज्ञानहीनं तपो पूज्यं तपोहीनं ज्ञानहृतं।
उभयोदेव देवंस्यात् द्विहीनोगण पूरकः॥

ज्ञान से हीन तपस्वी भी पूज्य है, तप से रहित ज्ञानी भी श्रेष्ठ है, दोनों से सहित देवताओं द्वारा भी पूज्य है, वह तो भगवान है।, तप, ज्ञान से रहित है यदि साधु है तो भी वह पूज्य है, गण की पूर्ति करने वाला है।

कः पूज्य-

संसार में पूज्य कौन है ? कोई कहता है धर्मात्मा पूज्य है, ठीक है, कोई कहता है ज्ञानी पुरुष पूज्य है, कोई कहता है, सम्यक्दृष्टि पूज्य है, ठीक है, कोई कहता है सत्यवादी पूज्य है, ठीक है, कोई तपस्वी पूज्य कहता है, कोई कहता है संयमी पूज्य है सब ठीक है तो अलग-अलग कहेगें तो बहुत सारे हैं क्या कोई एक ऐसा शब्द है जिसमें इन सबका समावेश हो जाये। वह शब्द है-'सद्वृत' अकेला व्रत नहीं कहा क्यों ? यदि अकेला व्रत होता तो मुश्किल हो जाती। व्यक्ति धर्म से ही विरक्त होकर पाप करता है वह कहता चाहे कुछ भी हो जाये मैं तो कत्लखाना खोलकर ही रहूँगा मेरा संकल्प है मैं तोड़ नहीं सकता, चाहे कुछ भी हो जाये। ये व्रत नहीं हैं, ये कुव्रत हो सकते हैं। व्रत का आशय होता है पाँच पापों से विरक्ति और कुव्रत का आशय होता है खोटे कार्यों का संकल्प। सद्वृत का अर्थ-समीचीन व्रत, समीचीन का आशय सम्यक्त्व सहित सम्यक्त्व सहित कह दिया तो सम्यक्ज्ञान उसमें अविनाभावी रूप से आ जाता है। संसार में पूज्य क्या है-सद्व्रत। सद्व्रत में सम्यकदर्शन भी आ गया सम्यक्ज्ञान भी आ गया, सम्यक् भक्ति भी आ गयी, सम्यक्निष्ठा भी आ गयी, समर्पण भी आ गया, संयम, तप, ध्यान, वैराग्य, उत्तम क्षमा आदि दस लक्षण धर्म सब इसमें आ गये। सद्व्रत के बाहर ऐसी कोई चीज नहीं है जो अच्छाई पूर्वक बाहर हो जाये, सभी कुछ इसमें आ जाता है। तो क्या सद्व्रत ही पूज्य हैं ? हाँ सत्यता तो यही है।

किसी राजा के दरबार में एक पुरोहित था, पुरोहित राजा के लिये सिर्फ पुरोहित ही नहीं वह उसे देवता की तरह मानता था, उसके वचनों को बहुत प्रमाणिक मानता था। जब राजा उसकी पूजा करता, सम्मान देता तो सभा के लोग भी वही आदर सम्मान देते। किसी की हिम्मत भी नहीं कि कभी पुरोहित का कोई अपमान करने की सोच भी ले, यदि किसी ने एक अपशब्द भी कह दिया तो उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाती। एक दिन पुरोहित राजसभा में बैठे थे, उन्होंने राजा को समझाने के लिये एक प्रश्न पूछा-राजा से पूछा-राजन् ! आप मेरा इतना सम्मान करते हो, आदर, अभिनंदन, पूजन करते हैं ये सब क्यों ?

राजा ने कहा-पुरोहित जी ! इसमें तो कोई विशेष बात नहीं, ये तो सीधी-सीधी सी बात है कि आप इतने ज्ञानी हैं, जब भी मैं कहीं फँस जाता हूँ उस गुत्थी को आप सुलझा देते हो, आपका ज्ञान बहुत अगाध है किसी भी विषय में आप से पूछा जाये तो आपके उत्तर से अंतरंग तक संतुष्टि हो जाती है। आपका क्या वाक्चातुर्य है। पुरोहित ने कहा-नहीं राजन् ! आप मेरी पूजा इसलिये नहीं करते, राजा ने कहा-पुरोहित जी आप कैसी बात करते हैं। बोले आप मेरी पूजा नहीं करते, हाँ सही मायने में तो आप मेरी पूजा करते ही नहीं अभी तक मैं भ्रम में जी रहा था कि आप मेरी पूजा करते हैं सत्यता तो यह है आप मुझे नमस्कार करते ही नहीं। राजा को लगा-मैं तो जी जान से पुरोहित की पूजा करता हूँ फिर भी भरी सभा में पुरोहित जी ऐसा कह रहे हैं। मेरा अपमान

कर रहे हैं। राजा के अहंकार को चोट लगी-कहा हमारे हृदय में आपके प्रति श्रद्धा है फिर भी ऐसी बात। पुरोहित जी उठकर चले गये, दूसरे दिन वे सभा में नहीं आये, वे पहुँच गये खजाने में, वहाँ खजांची ने रोका नहीं, राजपुरोहित है भले ही आज राजा गुस्सा है गर कल राजा संतुष्ट हो गया तो रोकने टोकने पर मुझे ही फांसी पर चढ़ा देगा। पुरोहित ने वहाँ से स्वर्णमुद्रायें ली और चलता बना, दूसरे दिन नगर के जितने भी जौहरी थे सबको बुलवाया और कहा-महारानियों के लिये आभूषण चाहिये जो भी अच्छे से अच्छे हैं वे सब दे दीजिये, पसंद आयेंगे रख लेंगे, मुँह मांगा इनाम मिल जायेगा, तो जितने भी जौहरी थे सबने दे दिया, पुरोहित लेकर घर चला गया। अगले दिन एक मांसाहारी होटल पर पहुँचा, राजा के कर्मचारी आ रहे थे जा रहे थे सबने वहाँ देखा-कि उसके हाथ में कुछ लाल-लाल सा है, बाद में समाचार राजा के पास भी पहुँचा, शाम को पुरोहित को देखा कि वैश्या के घर के पास, और उसके हाथ में बोतल भी है पी रहा है, लोगों के अंदर बातें बनने लगी, राजा तक पहुँची राजपुरोहित जी की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, वह शराब पीने लगा है, मांस खाने लगा है, वैश्यावृत्ति करने लगा है, हमने देखा है, सभा में पचासों लोग थे कहने लगे-वह तो मांस पहले से ही खाता था हमने कभी बताया नहीं था, वो तो पियक्कड़ था, हम क्या कहते राजा के सामने वह तो ऐसा ही था, भण्डारी ने कहा चोरी करके गया था कल ही, जब तक अगला आया बोला-वे तो जुएं के फड़ पर बैठा है जुआरी है जुआरी। राजा सुन-सुन कर परेशान हो गया, आवेश में आकर ऐलान कर दिया वह पुरोहित जहाँ कहीं भी हो अभी की अभी बेड़ी, हथकड़ी डालकर दरबार में लाया जाये। पुरोहित आया-कहा मेरे को हथकड़ी बेड़ी डालने की आवश्यकता नहीं जो कहना है ऐसे ही कहो-लोगों ने कहा-अपने को बड़ा देवता मानते हो, किन्तु पापी हो। वह पुरोहित पहुँचा-राजा आग बबूला हो रहा था-राजा ने कहा मैं तो तुमसे पुरोहित भी नहीं कह सकता-तुम्हें शर्म आना चाहिये। पुरोहित कहते हैं-महाराज आप अपने शब्दों को संभालकर बोलिये, मैं आपका पुरोहित हूँ आपको सिंहासन से उतर कर चरण स्पर्श करना चाहिये, साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। राजा ने कहा-तुम पापी दुष्ट नीच क्या इसके लायक हो, पुरोहित ने कहा-मैं क्या हूँ कौन हूँ ये बाद में बताऊँगा पहले नमस्कार करो, राजा गुस्से में था, सभी लोग कह रहे थे हमने पुरोहित को देखा है इन गंदे कार्यों को करते हुये। पुरोहित ने कहा-आप लोगों के पास क्या प्रमाण है कि मैंने चोरी की, मांस का सेवन किया, शराब पी, वैश्यावृत्ति की। क्या आप वहाँ पर थे, जो वहाँ पर थे उनको बुलवाकर पूछा जाये, उस होटल से लोग आये, वेश्या जहाँ थी वहाँ से भी आये, सभी वहाँ उपस्थित हुये सबसे पूछा गया, होटल वाले ने कहा-मेरे यहाँ आये तो जरूर थे और इनके हाथ में टमाटर थे, मांस तो खाया ही नहीं, शराब वाले से पूछा-बोला-आकर एक दिन के लिये कमरा खाली कराया था, अपनी पत्नी के साथ, बोतल में शक्कर का शर्बत था शराब नहीं। जुआरी से पूछा-तो वे बोले-पुरोहित जी ने पहले ही कह दिया

था कि मैं आऊँगा उपदेश देने के लिये। जुआ तो नहीं खेला। भण्डारी से पूछा-तुम कह रहे थे मोहरें चुरायीं थी, पुरोहित ने कहा-मोहरें मैंने उठायी जरूर थी पर वहीं रख दी, जौहरी के पास से जो आभूषण मंगाये थे वे भी मेरे पास गुप्त रूप में रखे हैं। राजा ने कहा-फिर तुमने ऐसा क्यों किया? इसलिये किया-तुम्हारी मिथ्या धारणा को तोड़ने के लिये, तुम्हारे मन में यह था कि आप मेरी पूजा करते हैं, यदि मेरी पूजा करते हो तो मैं तो अभी भी खड़ा हूँ तुमने मेरी पूजा क्यों नहीं की, आदेश क्यों दिया मुझे हथकड़ी बेड़ी के साथ लाने का, यदि मेरे ज्ञान की पूजा करते थे तो अब क्या मेरे पास ज्ञान कम हो गया। आप प्रश्न पूछिये मैं अभी भी उसका उत्तर दे देता हूँ, फिर क्या हुआ ? राजन् ! मैं आपको समझाना चाहता हूँ कि संसार में ज्ञान पूज्य नहीं है, व्यक्ति पूज्य नहीं है पूज्यनीय होता है व्यक्ति का व्यक्तित्व, उसका चारित्र, उसका आचरण, उसका सदाचार और आपको लगा मैं अपने सदाचार से च्युत हो गया, इसलिये तो आपने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया। राजा को वास्तव में पुरोहित की बात स्वीकार करनी पड़ी कि मैं पुरोहित की नहीं उनके आचरण की पूजा करता था, गुणों की पूजा करता था, राजा ने क्षमा मांगी, वे सभी लोग जो कह रहे थे हम तो पहले से ही जानते थे कि ये पियक्कड़ है, जुआरी है, उन सभी के मुँह भी बंद हो गये, जब किसी व्यक्ति की बुराई होती है तो 100 लोग पुष्टि करने वाले आ जाते हैं यदि कोई भलाई करने वाले हो तो 4 लोग अच्छाई कहने वाले भी मिल जाते हैं। यह दुनिया गतानुगतिक भीड़ के पीछे चलने वाली है, यदि किसी की निंदा हो रही हो तो निंदा करने वाले 20 खड़े हो जायेंगे, यदि प्रशंसा हो रही हो तो चार नहीं चालीस मिल जायेंगे।

तो संसार में पूज्य क्या है ? आचार्य अमोघवर्ष मुनिमहाराज-बता रहे हैं ''सदवृत्तः''। तो पूजा व्यक्ति की नहीं जैन दर्शन व्यक्ति की नहीं व्यक्तित्व की पूजा करता है, गुणों की पूजा करता है। हाँ यह बात अवश्य है कि गुणों की पूजा में गुणी की पूजा हो जाती है, आप पढ़ते है तत्वार्थसूत्र का मंगलाचरण-

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्म भूभृताम्।
ज्ञातारं विश्व तत्वानां वंदे तद् गुण लब्धये।।

ये तीन गुण हैं और आप कहते हैं इन तीन गुणों की प्राप्ति के लिये मैं आपकी वंदना करता हूँ, तो जिसमें ये तीन गुण हैं उसकी वंदना अपने आप हो जाती है। अग्नि की ऊष्णता की उपासना करने वाला अग्नि की पूजा करेगा ही करेगा, ज्ञान की उपासना करने वाला ज्ञानी की उपासना करेगा ही करेगा, संयम की उपासना करने वाला संयमी की उपासना करेगा ही करेगा। गुण किसी भी क्षेत्र में, किसी भी काल में अपने द्रव्य से कभी अलग नहीं होते। गुण और द्रव्य अविनाभावी होते हैं। पर्याय रहित द्रव्य, द्रव्य रहित पर्याय न कभी था न है न हो सकेगा। दूसरे पद में क्या कह रहे हैं-

कः अधनाः आचक्षते–किसको धन से रहित कहें। संसार में निर्धन कौन कहा जाता है। व्यक्ति बड़ा होता है बड़प्पन से। बड़प्पन आता है जहाँ गुणों की औधार्यपना होता है।

दो शब्द हैं-औधार्य और औधत्य। गुणों का औधार्य पना व्यक्ति में बड़प्पन लाता है और औधत्पना (अहंकार) वह व्यक्ति को तुच्छ कर देता है दोनों शब्द लगभग समान जैसे हैं। जिस प्रकार सागर में रत्न दबे पड़े हैं सागर कभी उन्हें उछालता नहीं है कि मुझमें इतने रत्न भरे पड़े हैं, उसी प्रकार गुणी व्यक्ति होता है। अपने गुणों अच्छाईयों को कहता नहीं।

बड़े बड़ाई न करे, बड़े न बोले बोल।
हीरा मुख से कब कहे लाख टका मेरा मोल॥

देखो लघुता पूज्य होती है। वाचालता पूज्य नहीं होती-कैसे ? नूपुर कहाँ बांधा जाता है, पैरों में, क्योंकि ज्यादा बोलता है और जो शांति से रहता है वह हार हृदय विराजता है। जो लघु हो जाता है, वह उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त करता है। बिंदी कहाँ विराजती है-माथे पर, तो जो लघु होता है वह उच्चता को प्राप्त होता है। रूमाल, छोटी सी टोपी सिर पर रखी जाती है और इतना बड़ा पेंट वह पैरों में पहना जाता है। या जिसमें लोच हो, सरलता से सहजता से तो वह उच्चता को प्राप्त होता है।

नया बनिया पुराना टाट ज्यादा चलता नहीं है नया बनिया-मतलब जिसने नया-नया धन कमाया हो वह बस दिखाना चाहता है, और पुराना टाट ज्यादा चलता नहीं फट जाता है। पुराना बनिया कितना भी निर्धन हो जाये किन्तु उसकी साख ऐसी है घर में कुछ भी न हो फिर भी एक फोन पर काम हो जाते है, पुरानी साख और पुरानी शाखा बहुत मजबूत होती है, वह चाहे काली सी पड़ गयी हो, जीर्ण शीर्ण है, वह मजबूत होती है, तो महानुभाव यहाँ बता रहे हैं-कि बाहर की धन सम्पत्ति से कोई बड़ा नहीं होता, चंद चांदी के टुकड़ों से कोई बड़ा नहीं होता बड़प्पन आना चाहिये, गुणों का औधार्यपना आना चाहिये औधत्यपना नहीं। देखो !

यदि जल को एक बूंद घी की मिल जाये तो वह पानी उसे ऊपर ऊभार कर दिखाता रहेगा, दूध में भी यदि मलाई पड़ जाये तो वह उसे छिपा नहीं सकता ऊपर आ जायेगी और जमा घी ऊपर नहीं आ सकता नीचे ही रहता है ऐसे ही जो घी की तरह गुणज्ञ है, गुणों के सागर रत्नों की तरह से नीचे ही रहते हैं, तो सच्ची सम्पत्ति क्या है? तो वह है-''जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झं'' हमारी सच्ची सम्पत्ति तो जिनेन्द्र भगवान के गुणों की सम्पत्ति ही है।

वह यदि हमारे पास है तो हम धनवान हैं और यदि नहीं है तो हम कंगाल हैं, दरिद्र हैं। तो यहाँ कह रहे हैं वह जिनगुण सम्पत्ति प्राप्त कैसे हो ? वह प्राप्त होगी संयम के माध्यम से, वह प्राप्त होगी व्रतों के माध्यम से, तपस्या के माध्यम से, सम्यक्ज्ञान के माध्यम से, श्रद्धा के माध्यम

से, समर्पण के माध्यम से प्राप्त हो सकती है। ये गुण उस अचल सम्पत्ति के हैं उस शाश्वत सम्पत्ति को प्राप्त करने का साधन हैं इसीलिये जिसके जीवन में एक बार जिणगुण सम्पत्ति के साधन रूप गुण आ गये और फिर उसने उन्हें छोड़ दिये वास्तव में वही व्यक्ति करुणा/दया का पात्र है, वही गरीब है, वह नि:संदेह दया का पात्र है उसे स्थिर करना चाहिये, सम्यग्दृष्टि गिरे हुये को पुन: स्थिर कर देता है यह सम्यक्दृष्टि का स्थितिकरण नाम का सम्यग्दर्शन का अंग है। तो क: अधीन:-निर्धन व्यक्ति कौन है जिसके पास से सद्वृत रूपी सम्पत्ति नष्ट हो गयी हो, कोई चुरा कर के ले गया हो, या छूट गयी हो। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने सम्पत्ति के बारे में लिखा-

श्रुतं व्रतं तपो येषां धनं: परम दुर्लभं।
एतेषां धनिना प्रोक्त: शेषा निर्धनिनामता:॥

श्रुतं-जिसके पास श्रुत है उसका धन ऐसा है जिसके माध्यम से मन को अपने वश में कर लेता है। श्रुत ज्ञान का अंकुश है जिसके माध्यम से मन को वश में किया जाता है। बिना श्रुतज्ञान के संसार का कोई भी प्राणी किसी भी काल में, किसी भी क्षेत्र में अपने मन को वश में नहीं कर सकता।

आचार्य गुणभद्र स्वामी जी आत्मानुशासन में लिखते है-

श्रुतस्कन्धे धीमान् रमयतु मनो मर्कट ममुं॥

श्रुतरूपी वृक्ष के स्कन्ध पर धीमान् ! अपने मन रूपी बंदर को बैठाओ, बंदर यदि सूखा पेड़ हो उसे तो हिलाता रहता है, तोड़ता है किन्तु हरा भरा घना वृक्ष मिल जावे जिसमें फल-फूल लगे हों तो उसमें जाकर छिपकर बैठकर फल खाता है। ये मन भी वहीं बैठता है जहाँ श्रुत स्कंध हो, स्कंध के 3-4 अर्थ हैं। स्कंध-वृक्ष का तना, श्रुत स्कंध-श्रुत का आधार, स्कंध-दो या दो से अधिक परमाणुओं के समूह को स्कंध कहते हैं। तो श्रुतस्कंध धीमान्-श्रुत रूपी खंभे पर अपने बंदर रूपी मन को बार-बार रमण करायें यह तभी शांति से बैठता है-वहाँ बड़े-बड़े मधुर-मधुर फल हैं और वास्तव में सत्यता ये है कि ज्ञानामृत की एक बूंद भी अंदर जाती है तो मन रंजायमान हो जाता है। मन बहुत संतुष्ट होता है, हो सकता है अच्छे से अच्छा भोजन करके भी व्यक्ति संतुष्ट न हो पाये और कोई एक अच्छी बात भी कह दे वह उसे दिन भर सोचकर बहुत आनंदित हो रहा है, भोजन तो घाटी नीचे माटी हो गया और अच्छे ज्ञान के दो शब्द चले गये तो उसने माटी को भी सोना बना दिया। ज्ञान के शब्द इस देह की माटी को भी सोना बना देते हैं ये ज्ञान के शब्द जब जीवन में चमकने लगते हैं तो जीवन में सुगंध ला देते है। ये शब्दों का प्रभाव हुआ रत्नत्रय जीवन में आ गया तो माटी भी पूज्य हो गयी

रत्नत्रय से पावन जिनका यह औदारिक तन है।
गुप्ति समिति अनुप्रेक्षा में रत रहता जिनका मन है॥

आप आ. समंतभद्र स्वामी जी की कारिका पढ़ते हैं-

स्वभावतोऽशुचौ कायो रत्नत्रय पवित्रते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता॥१३॥

तो महानुभाव ! ये तो माटी है, घृणित माटी है, यदि मक्खी के पंख की तरह चमकती हुयी चमड़ी इस पर न हो तो इस शरीर की कौवों से, गिद्ध पक्षियों से रक्षा करना मुश्किल होता। पर ये चमड़ी है तो इसकी रक्षा हो रही है, अन्यथा व्यक्ति इसको देखना भी न चाहे, नव मलद्वार बह रहे हैं।

नवद्वार बहे घिनकारी अस देह करे किम यारी।

ये पिंजरा है पर ऐसे शरीर की भी पूजा करते हैं, ऐसे शरीर के मल की पूजा करते हैं, ऋद्धिधारी मुनिमहाराज का मल भी औषधि का काम करते है उनके शरीर से स्पर्शित हवा यदि किसी को लग जाये तो मूर्च्छित व्यक्ति, सर्प का डसा व्यक्ति भी जीवंत हो जाता है। आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर के बारे में एक कथन सुनने में आता है कि एक छोटे से गांव के पास नदी के पास साधना करते थे, सात दिन में एक बार आहार लेते थे, जैन और जैनेत्तर लोग उन्हें भगवान मानकर पूजते थे, एक विधवा माँ का बेटा था, उसे सर्प ने डस लिया, लाख उपाय करने पर भी जब ठीक नहीं हुआ लोग कहने लगे मर गया, वह विधवा माँ उस बालक को लेकर जंगल में पहुँच गयी, वे पहाड़ पर साधना कर रहे थे, संयोग की बात बारिश हुयी, पानी बरसा, पानी बरसते ही पानी महाराज के शरीर से स्पर्शित होता हुआ नीचे बालक के पास तक गया बालक तुरंत ठीक हो गया माँ-माँ कहने लगा। महानुभाव ! तपस्या के शुद्ध परमाणु से वे रोगाणु नष्ट हो जाते हैं, यदि साधु के समीप बैठते है तो सत्यता ये है कि तुम्हारे कषाय की उद्वेग शक्ति मंद हो जाती है, मन विषय वासना से विरत हो जाता है, उतने देर के लिये कुछ अच्छा लगता है, कई बार तो ऐसा होता है कि व्यक्तियों का वहाँ से उठने का मन ही नहीं होता है। साधुओं के पास पहुँच करके स्वत: ही अच्छी भावना उत्पन्न होती है। श्रावक को तो फायदा ही फायदा है।

तो यहाँ बता रहे थे निर्धन कौन है ? जो 'चलितव्रत' जो अपने व्रतों अहिंसा, अस्तेय, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का पालन करता है पापों से विरक्त होता है वही वास्तव में व्रती है और जिसके ये व्रत खण्डित हो जायें तो वह निर्धन है। लोभ में आकर व्रतों को तोड़ना ही निर्धनता है। अतिचार सावधानी के लिये आते है देखो तुम्हारे व्रत टूटने वाले हैं रस्सी कमजोर है। जैसे मोबाइल में वार्निंग आती है बैटरी लॉ कहने लगती है ऐसे ही जो अतिचार को वार्निंग दे रहे हैं, चेतावनी दे रहे हैं

सावधान आपके व्रत टूट सकते हैं, किन्तु अतिचार में व्यक्ति संभल गया तो अनाचार तक न पहुँचेगा। तो यहाँ पर कहा-जिसके व्रत टूट जाते है वह निःसंदेह गरीब है। आगे और क्या कह रहे-

''**केनजित् जग मेतत्**''-यह संसार किसने जीता ?

जो राग-द्वेष से हो गया रीता उसने ही ये संसार जीता। राग-द्वेष से रीते तो जिनेन्द्र भगवान हो गये, वीतरागी हो गये। जो वीतरागी वीतद्वेषी हो गया वह कभी असत्य नहीं बोलता, राग द्वेष से जो रहित हो गया वह किसी पर क्रोध नहीं करता। केवल क्रोध के बीत जाने का नाम क्षमा नहीं है, क्षमा का आशय क्षान्ति भाव से है जिसकी चारों कषाय शान्त हो गयी हो क्रोध मान माया लोभ चारों कषायों का उपशमन हो गया हो इससे जीवन में क्षांति आती है वह क्षांति ही शांति का कारण है। क्षमा से शांति मिलती है क्रोध से नहीं उससे तो भ्रांति क्लांति आती है इसलिये धारण करना चाहिये क्षांति।...

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

सर्वत्र पूज्य दयालु

कस्मै नमः सुरैरपि, सुतरां क्रियते दयाप्रधानाय।
कस्मादुद्विजितव्यं संसारारण्यतः सुधिया॥२२॥

सुरैः अपि–देवों के द्वारा, **सुतरां**–निरन्तर, **कस्मै**–किसको, **नमः क्रियते**–नमस्कार किया जाता है?, **दया प्रधानाय**–दया प्रधान पुरुष के लिए, **सुधिया**–बुद्धिमानों को, **कस्माद्**–किससे, **उद्विजितव्यं**–डरना चाहिए, **संसार अरण्यतः**–संसाररूपी वन से

निरंतर देवताओं के द्वारा भी नमस्कार करने योग्य कौन है ? देवता भी निरंतर उसे प्रणाम करते हैं जिसके चित्त में दया का वास हो, संसारी प्राणी उसको नमस्कार करते हैं जिसके पास धन है, कुछ लोग उन्हें नमस्कार करते हैं जिनके हाथ में सत्ता होती है कुछ लोग उसे नमस्कार करते हैं जो चाहे भले ही संघर्ष का सामना कर रहा है पर उसके पास सत्य है। कुछ लोग उसे नमस्कार करते हैं जिसके माध्यम से उसका हित होता है, कुछ लोग उसे नमस्कार करते हैं जिसे वो परमात्मा मानकर बैठ गया है। सब लोग अलग-अलग नमस्कार करते हैं किन्तु देवता लोग उसे नस्मकार करते हैं जिस महापुरुष के चित्त में निरंतर दया का झरना बहता रहता है, जिसकी दया कभी सूखती नहीं है। दया का सूर्य कभी अस्त होता नहीं, जिसके चित्त में दया की चांदनी सदैव फैली रहती है, जिसके चित्त में दया की सुगंध सदैव फैलती रहती है, जिसका चित्त मिठास से युक्त है जिसके सर्वांश में दया धर्म की मिठास विद्यमान है ऐसे व्यक्ति के लिये स्वर्ग के देवता भी नमस्कार करते हैं। आचार्य अमोघवर्ष स्वामी ने ही नहीं भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर ने भी कहा-

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो॥

अहिंसा संयम तप ऐसे धर्म में जिसका मन लगा रहता है ऐसे व्यक्ति को देवता, इन्द्रगण सभी मिलकर नमस्कार करते हैं। यहाँ पर भी आचार्य कह रहे हैं-**कस्मै नमः सुरैरपि सुतरां क्रियते दया प्रधानाय** यह सब निरंतर करता है जो दया की प्रधानता से। जिस कार्य में दया नहीं दिखाई देती उस कार्य को करता ही नहीं। दूसरी बात-कस्मात् उद्विजितव्यं-व्यक्ति को किस बात से आकुल रहना चाहिये। **संसाराण्यतः**-संसार के अरण्य से। किसको **सुधियां**-जो अच्छी धी वाला, अच्छी बुद्धि से युक्त है उसे संसार वन से भयभीत रहना चाहिये। कोई भी समझदार व्यक्ति संसार रूपी भयंकर जंगल से घबराता है। संसार को कोई आचार्य महोदय जंगल की उपमा देते हैं। कोई महासागर की उपमा देते हैं, कोई अंधकार से युक्त आकाश की उपमा देते हैं, कोई कंटिकाकीर्ण मार्ग की उपमा देते हैं। ऋषियों ने, मुनियों ने, जो संसार में गहन से गहन कठिन से कठिन चीज

दिखाई दी उसकी उपमा संसार को दे दी। आचार्यों ने कहा-जितनी कठिन स्थिति नरक में नहीं हो सकती उससे ज्यादा कठिन स्थिति संसार में है। नरक तो संसार का एक पार्ट है, पूरे संसार में सुख भी तो है बोले ऐसा नहीं है, नरक में भी सुख हो सकता है और स्वर्ग में भी दु:ख हो सकता है। सम्यक्त्व से सहित नारकी सुखी हो सकता है और मिथ्यात्व से युक्त देव भी दु:खी हो सकता है। देवों के लिये भी दु:ख होता है बड़े देव छोटे देवों पर शासन करते हैं उसे त्रास देते हैं, उस छोटे देव को बड़े देव की आज्ञा का पालन करना ही पड़ता है। तो **कस्मात् उद्विजितव्यं**-राजा से मत डरो, चाहे हो सके तो और किसी से मत डरो, डरना है तो सिर्फ एक चीज से डरो अपने 'कुकृत्य' से, क्योंकि तुम्हारा कुकृत्य ही तुम्हारा संसार है, तुम्हारा सुकृत मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग कोई ईंट-पत्थर की दीवार या डाबर का रोड नहीं हैं दौड़ते चले जाओ, मोक्षमार्ग तुम्हारी चेतना के परिणामों का नाम है। उसमें तीन प्रकार के परिणामों की आवश्यकता है एक प्रकार के अकेले परिणाम मोक्ष मार्ग नहीं बना सकते। अकेली श्रद्धा ही हो अकेला ज्ञान ही हो तो भी मोक्षमार्ग नहीं है क्रिया ही हो बिना सम्यक्त्व और बिना ज्ञान के कितनी भी क्रिया करें, कितना भी संयम का पालन करें तब भी उसका मोक्ष मार्ग नहीं बनेगा, तीनों प्रकार के साधन होना चाहिये। आत्मा के परिणामों में तीनों चीजें होना चाहिये। सम्यक् दर्शन, सम्यकज्ञान, सम्यक् चारित्र। महिलायें जब चाय बनाती हैं तो भी तीन चीज आवश्यक है-चायपत्ती, दूध, शक्कर। कोई भी एक कम हो तो चाय न बन सकेगी। शिकंजी में-नींबू, पानी, शक्कर। ऐसे ही मोक्ष मार्ग में तीनों की आवश्यकता है। किसी स्टेडियम में तीन तरफ की लाइट जलती है वहाँ का दृश्य अलग से दिखाई देता है, एक तरफ से आती है तो अलग होता है, जब तीनों तरफ से आती है तो दृश्य स्पष्ट होता है। हमारी आत्मा में भी तीन प्रकार से लाइट आना चाहिये। प्रत्येक आत्मा के प्रदेश से सम्यक्त्व का प्रकाश, सम्यक्ज्ञान का प्रकाश, सम्यक् चारित्र का प्रकाश और चौथी चीज इन तीनों का वह आत्मा अनुभव करती है, वह मोक्षमार्ग पर चलती है। अनुभव करना ही चलना है। हमारे परिणाम ही मोक्ष है, हमारे परिणाम ही मोक्ष मार्ग है, हमारी आत्मा में ही अमोक्ष है यदि हमारी आत्मा में अमोक्ष नहीं हो तो आत्मा कभी मोक्ष को प्राप्त कर नहीं सकता। कोई कहे अमोक्ष संसार में है, नहीं अमोक्ष आत्मा के प्रदेशों में है। और सिद्धत्व कहाँ हैं, 'सिद्धि स्वात्म प्रदेशे' सिद्धि अपने आत्मा के प्रदेशों में ही है। कोई सोचे शिखर जी जाके मोक्ष मिल जायेगा अरे ! वहाँ मोक्ष रखा है क्या? मोक्ष तो हमारी आत्मा के प्रदेशों में है जिस क्षण हमारी आत्मा कर्मों से छूट जायेगी उसी क्षण हमें मुक्ति की प्राप्ति हो जायेगी। तो कर्मों का बंधन कहाँ है? जहाँ बंधन है वहाँ मुक्ति है जहाँ मुक्ति मिलेगी समझो वहीं बंधन है। बाहर के बंधन नहीं आत्मा के बंधन खोलना है। जिसकी मुक्ति चाहिये उसी के बंधन खोलना है। कैसे खोले ? पहले आत्मा को आत्मा जान तो लें। तो महानुभाव यहाँ कहा-किससे डरना चाहिये-बुद्धिमानों को संसार से डरना चाहिये। संसार मिलकर भी तुम्हारा

बाल बांका नहीं कर सकता, यदि तुम्हारे पाप कर्म का उदय है तो यदि पूरा संसार भी मिल जाये, अनंतानंत सिद्ध परमात्मा मिल भी जायें और तुम्हारा हित करना चाहें तो वे भी कुछ नहीं कर सकते। जब तक कि तुम्हारे पुण्य कर्म का उदय न हो। तो सिद्ध ये हुआ कि संसार में सुख-दुःख हमें हमारे कर्मों का ही फल है, तो जब सुख भी मुझे मेरे कर्म से मिलता है, दुःख भी मेरे कर्म के उदय से मिलता है तो उन कर्मों को क्यों न नष्ट करें। (आ. उमास्वामी ने कहा)-जब पाँच पाप बंध को प्राप्त होते हैं तो कर्म कहलाते हैं, जब उदय को प्राप्त होते हैं तब दुःख कहलाते हैं, पाँच पाप ही दुःख है जिसके जीवन में ये पाँच पाप नहीं है उसे कोई भी व्यक्ति किंचित् भी दुःख नहीं दे सकता। तो दुःख-सुख का कारण क्या है?-स्वयं के कर्म।

सुख-दुख ना कोई वस्तु सुजाता।
निज कृत कर्म सब भोगत हैं भ्राता॥

हे भाई ! संसार में कोई सुख-दुःख देने वाला नहीं-

को सुख को दुःख देत है, कर्म देत झकझोर।
उलझे सुलझे आप ही, ध्वजा पवन के जोर॥

ये आत्मा ध्वजा की तरह है जैसे ध्वजा को उलझाने में सुलझाने में हवा ही कारण है ऐसे ही हमारी आत्मा को सुख दुःख देने में कर्म ही कारण है। अन्यथा कौन-किसको क्या कर सकता है?

इसलिये कर्मों से डरना चाहिये, जिन कर्मों से संसार की वृद्धि होती है उन कर्मों से डरना चाहिये। जिन कृत्यों से संसार का विच्छेद होता है।

त्वरितं किं कर्त्तव्यं विदुषां संसार संततिच्छेदः-तुरंत ही उस कार्य को करना चाहिये विद्वान पुरुषों को जिससे संसार की संतति का छेद हो जाये। आगे कहते हैं-

कस्य वशे प्राणिगणः सत्यप्रिय भाषिणो विनीतस्य।
क्व स्थातव्यं न्याय्ये, पथि दृष्टा दृष्टलाभाय॥२३॥

प्राणिगणः-प्राणिगण, **कस्य वशे**-किसके वश में रहते हैं ?, **सत्य प्रियभाषिणो**-सत्यवान मधुरभाषी, **विनीतस्य**-विनयशील के वश में रहते हैं, **क्व स्थातव्यं**-हमें कहाँ स्थित होना चाहिए, **दृष्टादृष्टलाभाय**-प्रत्यक्ष और परोक्ष लाभ के लिए, **न्याय्ये पथि**-न्याय मार्ग में स्थित होना चाहिए।

कस्य वशे-संसार में किसके वश में रहना चाहिये ? दूसरे के ऑडर में रहने से व्यक्ति सुरक्षित हो जाता है। निश्चिंत हो जाता है जिसके ऑडर में रहें वह व्यक्ति कौन हो ? उसमें तीन

बातें कम से कम होनी चाहिये। पहली बात सत्य, दूसरी बात-मधुरता, तीसरी बात-विनीत। ये तीन बातें कोई और नहीं है रत्नत्रय हैं। तीन शब्द-सत्य दृष्टि अर्थात्-सम्यक्दर्शन प्रिय भाषण-प्रिय वही होता है जो हितकारी होता है, हितकारी वही होता है जो धर्म से अनुस्यूत होता है, तो वह दर्शन, यानि सम्यक्ज्ञान और विनीतस्य विनीत वह होता है जो संयमी होता है-चारित्रवान् होता है। वही वृक्ष झुकता है जिस वृक्ष पर तप व ध्यान के सुमधुर फल हों बिल्कुल गिरने को तैयार हों वही विनीत हो सकता है।

विनीत शब्द का अर्थ होता है-विशिष्टं नीतः इति विनीतः विशेषता लिये हो और संसार में विशेष चीज एक ही है संसारी प्राणी का मुक्त हो जाना विशेष ही है, संसार की सभी दशायें सामान्य हैं विशेष पर्याय तो मुक्त पर्याय है। अनादिकाल से जो पर्याय प्राप्त करते आ रहे हैं वे विशेष कैसे हो सकती हैं, जो पर्याय अनादिकाल से प्राप्त नहीं की, और जो पर्याय एक बार प्राप्त करके छूटे नहीं, दूसरी पर्याय ग्रहण न करे वही विशेष हो सकती है। तो विशेष पर्याय कौन सी है? सिद्ध पर्याय। विनीत मतलब जो विशेष की ओर ले जाये। विशेषता की ओर ले जाने वाला होता है रत्नत्रय, निश्चय चारित्र और निश्चय चारित्र, निश्चय सम्यक्दर्शन और निश्चय सम्यक्ज्ञान के बिना होता नहीं। क्या समझ आया ? ये तीन में क्या कहना चाह रहे हैं आचार्य महाराज कि सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जिसके पास हैं प्राणी उन्हीं की छाया में रहना चाहता है। **कस्यवशे प्राणिगण**-जिसके पास सत्यदृष्टि है मिष्ट, इष्ट, शिष्ट वचन हों यानि सम्यक्ज्ञान है और सम्यक्चारित्र विनीतता है, विनीतता संयम का फल है रत्नत्रय के वश में संसार के प्राणी रहना चाहते हैं और रत्नत्रय जिस आत्मा ने धारण कर लिया उसका संसार अत्यल्प रह जाता है। रत्नत्रय की पूर्णता कहाँ पर होती है ? चौदहवें गुणस्थान में, क्योंकि वहाँ पर ही शील के अठारह हजार भेदों की पूर्णता होती है, उसके पहले पूर्णता नहीं। और रत्नत्रय का प्रारंभ कहाँ से होता है? निश्चय रत्नत्रय की अपेक्षा देखेंगें तो सातवें गुणस्थान से, व्यवहार की अपेक्षा देखेंगे तो छटवें गुणस्थान से। फिर पाँचवें गुणस्थान में क्या है ? एक देश। रत्नत्रय नहीं उसकी झलक है मात्र। और चौथे गुणस्थान में द्विरत्न यानि सम्यक्दर्शन व सम्यक्ज्ञान का अंशमात्र। तीसरे का तो नाम ही नहीं है।

तो चौदहवें में जिसने रत्नत्रय की पूर्णता कर ली है वही वास्तव में सत्य है, सत्यदृष्टि उसी के पास है अवगाढ, परमावगाढ सम्यक्दर्शन वहीं पूर्ण होता है, 13वें में ज्ञान की पूर्णता हो गयी, केवलज्ञान प्राप्त हो गया किन्तु दर्शन की पूर्णता 14वें गुणस्थान में होती है। जब सम्यक्त्व की और चारित्र की पूर्णता 14वें में हो रही है तो ज्ञान की पूर्णता जो बीच में है वह भी 13वें में न मानकर 14वें में मानी जायेगी। तो तीनों की पूर्णता 14वें गुणस्थान में। ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो 14वें गुणस्थान वाले व्यक्ति के वश में नहीं रहना चाहेगा। जो क्षण भर में मोक्ष जाने वाला है ऐसे

व्यक्ति की अधीनता कौन नहीं चाहेगा ? आचार्य महाराज कैसे घुमा-फिरा कर कह रहे हैं-बुद्धिमान व्यक्ति किसके वश में रहना चाहते हैं। ले वहीं जा रहे हैं उनका उद्देश्य वहीं ले जाने का है सभी गाथाओं का निचोड़ वही है रत्नत्रय की ओर इंगित करना चाहते हैं। चाहे इस रास्ते से आओ, चाहे उस रास्ते से आओ पहुँचाना वहीं है। कैद में तो हमारी आत्मा है, हमारा शिवत्व है हमारा सिद्धत्व हमारा शुद्ध आत्मतत्व है वहीं तक पहुँचाने का उनका भाव है क्योंकि वहाँ तक पहुँचाने का भाव नहीं हो तो वह उपदेश सद्उपदेश ही नहीं होता है। वही धर्मोपदेश है जिसका निचोड़ अशुद्ध आत्मा को शुद्धता की ओर ले जाता है या शुद्धावस्था को प्राप्त करने का मार्ग बताता हो।

आगे कह रहे हैं **क्व स्थातव्यं न्याय्य पथिः**-हमें कौन से मार्ग में ठहरना चाहिये? ऐसे मार्ग में ठहरो जहाँ से यात्री निकल रहे हों, कम से कम रास्ता भूल जायेंगे तो कोई बताने वाला तो हो। यदि हम कुमार्ग में पहुँच गये तो कोई कुमार्गी हमें क्या बतायेगा वह स्वयं भटक रहा है, हमें भी भटकायेगा। तो कहाँ चलो ? न्याय के मार्ग पर चलो-

अथवा कोई कैसा भी भय या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पग डिगने पावे॥

न्याय मार्ग-ऐसी क्या बात है जो न्याय मार्ग पर ठहरना चाहिये, अन्याय मार्ग पर जाना ही नहीं चाहिये, क्योंकि अन्याय मार्ग पर रखा कदम ऐसी लिफ्ट का काम करती है कि कदम रखते ही टूट पड़ती है और नीचे धड़ाम से गिरा देती है, और न्याय मार्ग पर तो संघर्ष का सामना करते-करते चलते रहो, न्याय की अग्नि में जलते जाओ, न्याय प्राप्त करने के लिये कोर्ट के कई चक्कर लगाने पड़ते हैं और अन्याय के लिये बस चांदी की जूती (रिश्वत) चाहिये। यद्यपि यह बात राजमार्ग से कहने योग्य नहीं है किन्तु परदे के पीछे कहने की है, चाहे कितना ही बड़ा मजिस्ट्रेट क्यों न हो उसे भी खरीदा जा सकता है, चाहे गवाही हो, सबूत हों सबको खरीदा जा सकता है। कुछ भी हो सकता है, कारण क्या है जिसके मन में सत्य भी है वह सत्य भी अहंकार से युक्त हो जाता है। कई बार आप कहोगे महाराज जी सत्य की बात कह रहे धर्म की बात कह रहे, न्याय की बात कह रहे हो फिर ये उपदेश दे रहे जो सत्य कभी कर नहीं सकता, सत्य सत्य रहता है फिर सत्य हार कैसे जाता है ? प्रश्न आप सबके दिमाग में हो सकता है जिसने जैसा किया वह वैसा भोक्ता है तो जो सत्य है वह पराजित क्यों हुआ ? सत्य पराजित इसलिये हुआ जो अपने आप को सत्य के साथ समझता है उसमें अहंकार आ जाता है, अहंकार सबसे बड़ा दोष है। अहंकार जिस सत्य के साथ चिपक जाता है वह अहंकार उस सत्य को ले डूबता है। फिर सत्य, सत्य नहीं रह पाता, स्वच्छ दूध भी दूध नहीं रह पाता मट्ठा या दही बन जाता है।

तो अहंकार की मटकी में गया, सत्य का स्वच्छ उज्ज्वल दूध भी सत्य नहीं रह पाता असत्य के खाते में पहुँच जाता है। और दूसरा व्यक्ति जो असत्य की ओर है वह तो कह ही रहा है कि मैं असत्य की ओर हूँ कैसे ? जब असत्य है तो चाहे अब वह वकील के पैर पकड़े या मजिस्ट्रेट के पकड़े और उनसे कहेगा तुम्हारी आवश्यकता की पूर्ति मैं करूँगा तुम सत्य के साथ रहते-रहते अपने बच्चों का पालन नहीं कर पा रहे अन्याय से तुम्हारे परिवार का पालन हो जायेगा। ऐसा कहा जाता है आज जमाने में कि यदि रिश्वत देकर काम हो जाये तो समझो वास्तव में ईमानदारी से काम हो गया और रिश्वत देकर भी काम न हो जाये तब भी तुम कहने के अधिकारी नहीं हो। एक बात यह भी है जो व्यक्ति सत्य के साथ रहता हुआ हार भी गया हो सकता है पहले उसने कभी असत्य का साथ दिया था।

मैं गुनाहगार नहीं हूँ किन्तु गुनाहगार की तकदीर लेकर पैदा हुआ हूँ इसलिये आज जीवन में एक भी गुनाह नहीं किया फिर भी आजीवन कारावास की सजा मिली। पहले मैंने गुनाह किया था वह तकदीर तो आज भी मेरे साथ में है। तो गुनाहगार इस भव में होना जरूरी नहीं है जिसके पास गुनाहगार की तकदीर है उसे तो गुनाह का परिणाम भोगना ही पड़ेगा। कई बार सत्य ऐसे भी हारता है कि आज सत्य के साथ दिखाई दे रहे हो पर पूर्व में कभी असत्य का साथ दिया हो। तो यहाँ बता रहे हैं-कि न्याय के मार्ग में ही हमेशा स्थित रहना चाहिये अन्याय के मार्ग से तो नियम से पतन ही पतन है। न्याय का मार्ग ही आत्म उत्थान का यतन है।

महानुभाव ! सत्य की जड़ पाताल तक होती है धर्म की जड़ पाताल तक होती है और मैं यह भी समझता हूँ कि अच्छे कार्यों में 100-100 विघ्न आते हैं किन्तु मनस्वी व्यक्ति एक भी विघ्न की परवाह करता नहीं जिस कार्य को प्रारंभ कर दिया उसे पूर्ण करके ही दम लेता है। अच्छे कार्यों में विघ्न आते है-इसके लिये नीतिकारों ने कहा-

'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' यह एक सूक्ति है अच्छे कार्यों में विघ्न आते हैं इसलिये अच्छे कार्य करने वाले व्यक्ति डमाडोल नहीं होता। यहाँ पर ये बात कही जाती रही है कि न्याय पथ पर सदा स्थित रहना चाहिये। न्याय का पथ तो चढ़ाई का पथ है, अन्याय का पथ तो लुढकने का है। तो कौन से मार्ग पर ठहरना चाहिये-न्याय के मार्ग पर ठहरना चाहिये। ध्यान रखो-जीवन में शाश्वत केवल एक ही चीज है-वह है धर्म अपनी आत्मा से कहो रे आत्मा ! तू धर्म के साथ में रहना।

जिनवाणी की बात तुम्हारी आत्मा का कल्याण करने वाली है। धर्म के मार्ग में परेशानी तो होगी संघर्षों का सामना करना पड़ेगा तब सुमधुर फलों की प्राप्ति होगी।

देखो-बीज को जलाना, सड़ाना तो सरल है किन्तु कठिन है बीज को उत्तम भूमि में बोना, विधिपूर्वक उसका निरंतर सिंचन करना, रक्षा करना, उसको उत्तम खाद, प्रकाश हवा देना तब

जाकर उसके फल को प्राप्त करना हो पाता है। फल प्राप्त करने वाले व्यक्ति ज्यादा नहीं होते और श्रेय उन्हीं को जाता है जो अच्छे कार्यों के बीज बोता है। बुराई के वृक्षों को काटने में तो भगवान महावीर स्वामी भी समर्थ न हो सके। मारीच बन 363 मतों की स्थापना तो कर दी किन्तु महावीर बन निष्ठापना न कर पाये, इसलिये जीवन में एक संकल्प लेकर चलना-कि हे प्रभु ! मेरे माध्यम से अच्छे कार्यों की शुरूआत हो जाये, मैं किसी मंदिर का शिलान्यास तो कर दूँ पर किसी कत्लखाने का शिलान्यास न करूँ। समर्थ व्यक्ति ही नींव डालता है चाहे अच्छे कार्यों की डाले चाहे बुरे कार्यों की डाले। अच्छे कार्य की नींव डालकर अच्छाई के साथ ऊपर जाता है और बुरे कार्यों की नींव डालकर बुराई के साथ नीचे जाता है। तो महानुभाव-अच्छाई के मार्ग पर ठहरना है। जहाँ पर तुम्हारे मौन रहने से अच्छा कार्य हुआ है वहाँ मौन रहना उचित है जहाँ पर हमारे बोलने से अच्छा कार्य हो रहा है वहाँ बोलना ही चाहिये, आचार्य शुभचन्द्र स्वामी ने लिखा है-

धर्म ध्वंसे क्रिया नाशे सद्सिद्धान्त विप्लवे।
अपृष्पठेरपि वक्तव्यं सद् सिद्धांत प्रकाशनम्॥

क्या कहा-यदि कहीं धर्म का नाश हो रहा हो, यदि सम्यक्त्व का, चारित्र का नाश हो रहा हो, यदि धर्म के आयतनों का नाश हो रहा हो, कोई व्यवधान आ रहा हो, यदि आचार्यों की वाणी का लोप होता हो, धर्म की क्रियाओं का, मर्यादाओं का लोप हो रहा हो तो कहा-बिना पूछे ही कोई कहे या न कहे हम धर्म की बात अवश्य कहेंगे, हम धर्म के साथ हैं चाहे हमारी बात का प्रभाव पड़े या न पड़े, पर हम धर्म की बात कहेंगे आचार्यों ने कहा-धर्म की बात तो कहो ही। किस की परम्परा क्या है वह अलग चीज है पर धर्म की आगम की परम्परा जो है वह है हमारी। धर्म से अनुस्यूत परम्परायें सतत प्रवाही नदी की तरह होती हैं वे कभी सूखती नहीं। न्याय पथि अर्थात् धर्मपथ है। आगम से हटकर जो भी परम्परायें होती हैं वे कल्याणप्रदायी नहीं विवाद प्रदायी होती हैं। वे वैमनस्यता का कारण होती है, धर्म का ह्रास करने वाली होती है प्राणी का कल्याण करने वाली नहीं होती।

दृष्टा दृष्ट लाभाय-रत्नत्रय धारी के वश में सब रहना चाहते हैं रत्नत्रय ही वास्तव में न्यायमार्ग है, उसी के माध्यम से दृष्ट और अदृष्ट का लाभ होता है, दृष्ट लाभ कहलाता है, स्वर्ग आदि की विभूति और अदृष्ट लाभ होता है चेतना की चैतन्यमय निधि, जो आँखों से देखने में नहीं आती है। अनंत दर्शन, अनंतज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य आदि अनंतगुण अदृष्ट लाभ कहलाते है। वह न्यायमार्ग रत्नत्रय ही है उससे अलग सभी मार्ग उन्मार्ग है।

आ0 कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं

''णग्गोहि मोक्खमग्गो शेषा उम्मग्गया सव्वे''

''नग्नता ही मोक्ष का मार्ग है शेष सभी उन्मार्ग हैं।''

इसी से अभ्युदय व नि:श्रेयस सुख की प्राप्ति होती है।

महानुभाव आगे की कारिका कहेंगे-

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

निष्प्रकंप शैलवत् सत्पुरुष

विद्युत्विलसितचपलं किं दुर्जन संगतं युवतयश्च।
कुलशैल निष्प्रकम्पाः के कलिकालेऽपि सत्पुरुषः॥२४॥

विद्युत-बिजली **विलसित**-विलास/लीला **चंचल**-चंचल-बिजली की चमक के समान संसार में चंचल क्या है? **दुर्जन संगतं**-दुर्जनों की संगति और **युवतयश्च**-और युवतियों की संगति उनका हास-विलास।

कुलशैल निष्प्रकम्पाः-शाश्वत पर्वत के समान अकम्प कौन होते हैं

के कलिकालः-इस कलिकाल में भी **सत्पुरुषः**-सत्पुरुष

यहाँ पर मुख्य रूप से दो बातें कहीं-पहली बात कही-आकाश में चमकती हुयी बिजली दिखाई देती है और नष्ट हो जाती है इस प्रकार से चंचल संसार में क्या है? वह है दुर्जनों की संगति और युवतियों का प्यार। कई बार हम कहते हैं साधु-साधु में मिलता है, असाधु, असाधु में मिलता है जिस साधु को साधु के साथ बैठकर आनंद नहीं आ रहा है समझ लेना उसके अंदर असाधुता जन्म ले रही है। असाधुता प्रादुर्भूत हो रही है इसीलिये उसके चित्त को असाधुता की ओर ले जा रही है। सज्जन को सज्जन, दुर्जन को दुर्जन मिलते ही मिलते हैं किसका चित्त कहाँ जाता है। यदि किसी श्रावक का चित्त साधु की संगति की ओर आ रहा है तो वह ऊँचाईयों की ओर आ रहा है, यदि किसी साधु का चित्त श्रावक की ओर जा रहा है तो नीचे की ओर जा रहा है, यदि किसी श्रावक को श्रावक के साथ बैठने में आनंद आ रहा है, धर्मात्मा के साथ, तो समझो ऊंचाई की ओर जा रहा है। जिसे लघु के साथ बैठने में आनंद आ रहा है तो समझो नीचे की ओर जा रहा है। ध्यान रखो नीचा व्यक्ति ऊपर वाले को नीचे की ओर ही खींचेगा, उसके द्वारा नीचे की ओर खींचना बड़ा सरल है, किन्तु ऊपर वाले के द्वारा नीचे वाले को खींच कर ऊपर लाना बड़ा कठिन है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने 'प्रवचन सार' की 245-246 वीं गाथा में कहा-कि साधु को हमेशा **''समगुण अधिगुण वा''** अधिक गुण वाले की या समान गुण वाले की संगति करनी चाहिये यदि जघन्य या अधम दोष युक्त जनों की संगति करता है या वांछा करता है तो वह साधु प्रतिनमोस्तु के लायक नहीं है। और अपने से बड़े गुणों वालों की या समान गुणों वालों की संगति करता है तो समझो वह अपने गुणों के प्रति उत्साहवान है, नीचे की ओर दृष्टि जाना इस बात का प्रतीक है कि हमारी गति अब नीचे की ओर होने वाली है। ध्यान रखना दुष्ट हमेशा शिष्टता के वस्त्र पहनकर के आता है। शिष्ट से गलती हो सकती है वह मजबूरी में दुर्जन के वस्त्र पहनकर आ जाये। एक बार दुर्जन और सज्जन दो व्यक्ति नहाने के लिये गये, दुर्जन तो चालाक था ही

जल्दी से निकलकर आया और सज्जन के कपड़े पहनकर चला गया, सज्जन बचा बेचारा जो वस्त्र मिले उसे ही पहनकर चल दिया। बेचारा सज्जन उसके पीछे-पीछे दौड़ रहा है। अपने वस्त्रों के लिये, वह दुर्जन जो सज्जन के वस्त्र पहन गया लोग उसका तो सम्मान कर रहे और सज्जन का अपमान कर रहे हैं। तो ये बात बहुत पहले की है। नीतिकार कहते हैं तब से वही चल रहा है-सज्जन व्यक्ति जो दिखता है हो सकता है उतना सज्जन वह नहीं हो, और जो दुर्जन दिखता है हो सकता है अंदर से बहुत सज्जन हो, क्योंकि कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि ऊपर से पिलपिलाते आम के अंदर गुठली होती है और ऊपर से कठोर वाले के अंदर पानी भरा होता है। तो बात ये है कि दुर्जन व्यक्ति का क्षणभर का वह स्नेह प्रेम ज्यादा दिखाई दे क्योंकि तांबे के आभूषणों पर सोने की चमक ज्यादा दिखाई देगी और शुद्ध सोना है तो गंदा भी हो सकता है उतनी चमक न हो तो जो व्यक्ति ज्यादा चापलूसी करे वह ऊपर से बहुत ज्यादा अच्छा दिखने का प्रयास करे समझ लो तांबे में चढ़ा स्वर्ण जल है। कभी भी उतर सकता है। तो यहाँ दुर्जन की संगति कही। अगली बात कही 'युवतयश्च'-युवतियों की संगति, चाहे वे सोने से मड़ी हुयी ही क्यों न हो गुरु महाराज बताते हैं-

जवान हो या बुढिया चाहे हो छोटी सी गुड़िया।
स्त्री से तुम दूर ही रहना, जहर की है पुड़िया॥

यदि अपने संयम का पालन करना चाहते हो, धर्म का पालन करना चाहते हो तो चाहे जवान हो या बुढ़िया उससे ज्यादा बात न करो और हो चाहे छोटी गुड़िया उस पर भी न रीझो, गुरु महाराज कहते थे-

बच्चों की दोस्ती जी का जंजाल।
भाग गये बच्चे तो हो गये कंगाल॥

इसलिये बच्चों के साथ दोस्ती न करो। ये वास्तव में आचार्यों के छोटे-छोटे सूत्र हैं अच्छे हैं। तो बात ये है कि हम कह नहीं सकते कि सामने वाला सुधरने आया है कि बिगाड़ने। इसलिये दुष्टों की संगति से दूर रहो और युवतियों की संगति से दूर रहो, क्योंकि ये दोनों है धर्मचोर हैं। मेरी बात को अन्यथा नहीं लेना, आचार्यों की बात का आशय ये है कि ऐसा ही नहीं कि वे धर्म के चोर ही हों वे धर्म की मूर्ति भी होती हैं, यदि योग्य व्यक्ति को किसी ने उठाया है तो किसी नारी ने ही उठाया है, ऊपर तक पहुँचाया तो नारी की कहीं न कहीं प्रेरणा रही क्योंकि पुरुष का मन इतना कोमल होता है कि नारी के चित्त से भी ज्यादा कोमल। किन्तु नारी जब दृढ़ हो जाती है तो मरे हुये पुरुष को भी जीवंत कर देती है हर पुरुष की उपलब्धि में कहीं न कहीं मूल में नारी का सहयोग रहा है अन्यथा बहुत उपलब्धि प्राप्त करना पुरुष के लिये बड़ा कठिन है।

नारी का सहयोग तो रहा। तो यहाँ बता रहे है दुर्जन और युवती का संग चंचल है, ज्यादा देर तक इस पर विश्वास नहीं करना, यदि ज्यादा देर तक विश्वास किया तो तुम स्वयं अविश्वास के योग्य बन जाओगे। जैन शास्त्रों में बालकों को, स्त्रियों को प्रमाणिक नहीं कहा किन्तु हाँ वे प्रमाण सिद्ध कराने में सहयोगी हो सकते हैं प्रेरणा दे सकते हैं इसलिये कहा-इनकी संगति चंचल होती है। और नीचे वाली पंक्ति में कह रहे हैं-

कुलशैल निष्प्रकम्पा के कलिकालेऽपि-वे कौन-कौन हैं इस कलिकाल में भी जो सुमेरु पर्वत की तरह निष्प्रकम्प हैं चलायमान नहीं होते। चाहे कितनी भी आंधी-तूफान आ जाये वे चलायमान नहीं होते। आंधी-तूफानों में जो स्थिर रह जाये दृढ हो तो वह कहलाता है स्तम्भ। सत्पुरुष की तरह से है अन्यथा छोटे-मोटे छप्पर तो उड़ कर चले जाते हैं जीर्णशीर्ण दीवार तो गिर जाती है वे ही वास्तव में निष्प्रकम्प हैं जो स्तम्भ की तरह से हैं। चाहे वह समाज में हो, चाहे वह किसी समूह में हो, संघ में हो या परिवार में हो जो छोटी-मोटी आंधी से घबरा कर भाग जाता है, सहन नहीं कर पाता वह स्तम्भ नहीं बन पाता। जो सहन कर लेता है वही वास्तव में सत्पुरुष, महापुरुष, योग्य पुरुष, आदर्श पुरुष सभी के लिये प्रिय, वन्दनीय, अभिनंदनीय बन जाता है। जो सहन नहीं कर पाता है वह टूट जाता है जो स्थिर रहता है, चाहे कोई कितना भी पानी भर-भर कर ले जाये किन्तु नदी कभी उलाहना नहीं देती कि तुम मेरा पानी क्यों लेकर जा रहे हों मैं सूख जाऊँगी, जब तू सूख जायेगी तो पानी लेने कौन आयेगा, सतत प्रवाही नदी कभी पानी के लिये मना नहीं कर सकती। तो जो पुरुष गम्भीर नहीं है, धीर नहीं है, सहनशील नहीं है वही व्यक्ति कहता है ये मेरे वश की बात नहीं है। एक व्यक्ति इस्तीफा दे गया, बोला हमारे बस की नहीं है मैं इस पद पर नहीं रह सकता पूछा क्यों ? बोला मुझे तो लोगों ने परेशान कर रखा, दु:खी कर रखा है। ठीक है तुम इसके लायक भी नहीं हो यदि दु:खी हो गये तो। क्योंकि समाज तो तुम्हारी परीक्षा लेगी, 100-100 परीक्षा लेगी, और तुम उसमें खरे उतरो, समाज ने तुम्हें चुना तो तुम अब उन्हें कार्य करके बताओ। 4-6 लोग तो अच्छे कार्य में विरोध करेंगे ही फिर भी तुम उन्हें करके बताओ।

महाराज उपश्रेणिक ने जब अपने राज्य के योग्य अधिकारी के चयन के बारे में सोचा। वचन तो दे दिया था चिलाती पुत्र के लिये, तिलकावती को वचन दिया था क्योंकि जब वे कुयें में गिर गये थे तब उसने उनकी सेवा की थी, तब कह दिया था कि तेरे पुत्र को ही राजा बनाऊँगा, किन्तु योग्य कौन था ? श्रेणिक योग्य था, अब क्या करना चाहिये ? ज्योतिषी ने बताया निमित्त ज्ञान से, कि पहले परीक्षा लो वही राजा बन सकता है, जो ओस की बूंदों से घड़ा भर दे, फिर कहा कि जो महल में आग लग जाये तो जो छत्र सिंहासन को बचा ले जाये उनकी रक्षा करे, वही राजा बनेगा और भी परीक्षायें लीं, आखिर में कहा जो कुत्तों के बीच में भी खीर खा सके वही राजा

बन सकता है, तो सभी राजकुमार भोजन करने बिठा दिये, बहुत सारे शिकारी कुत्ते छोड़ दिये, सभी राजकुमार अपनी पत्तल छोड़कर भाग गये और श्रेणिक बैठे-बैठे खाता रहा, आस-पास की पत्तलों को समेट कर कुत्तों के सामने डालता रहा स्वयं खा-पीकर आ गया, जो इतने विरोधियों के बीच में भी चैन से खा सकता है वही राजा हो सकता है जो डर के भाग जाये वह काहे का राजा बन सकता है। तो यहाँ भी कह रहे हैं इस कलिकाल में तो विघ्न ज्यादा है, विरोधी ज्यादा है, जो सुमेरु की तरह से ''कुल शैल निष्प्रकम्पा'' अडिग रहते हैं नि:संदेह वे सत्पुरुष कहलाते हैं। सत्पुरुष कभी प्रतिकूलताओं का विरोध नहीं करते चन्द्रमा ने कभी आज तक तारों का विरोध नहीं किया किन्तु पूरे तारे मिलकर भी एक चन्द्रमा की बराबरी नहीं कर सकते, उनका काम टिमटिमाना है, अनादि काल से टिमटिमा रहे हैं अनन्त काल तक टिमटिमाते रहेंगे। चन्द्रमा की एक कला भी आ जाये तो अलग से दिखाई देगी, 16 कला तो छोड़ो, सभी तारे मिलकर भी चन्द्रमा की एक कला की बराबरी नहीं कर सकते। तो सत्पुरुष तो वो है जिसका चन्द्रमा जैसा स्वभाव हो, चाहे कुछ भी हो जमीन पर तुम आग भी जलाओ उसकी किरणें शीतल ही निकलेंगी। चाहे कोई व्यक्ति चोर हो, डाकू हो, हिंसक हो, पापी से पापी हो किन्तु चन्द्रमा की किरण सबके घर पर जाती हैं, राजा के घर भी जाती है गरीब के घर भी जाती हैं, दुष्ट के घर भी जाती है शिष्ट के घर भी जाती हैं। चन्द्रमा तो चन्द्रमा है उस चन्द्रमा पर ही आपत्ति-विपत्ति आती है चन्द्रमा जैसे व्यक्ति पर ही आपत्ति विपत्ति आती है अधम व्यक्ति पर क्या आपत्ति-विपत्ति आयेगी

नीतिकारों ने कहा-

सम्पदा महता मेव, महता मेव च आपदा।
वर्धते क्षीयते चन्द्रो न तारागण क्वचित॥

''सम्पत्ति महान पुरुषों को ही मिलती है और आपत्ति भी महान पुरुषों पर आती है, चन्द्रमा ही बढ़ता है, चन्द्रमा ही घटता है, तारागण तो टिमटिमाते रहते हैं।''

गजराज को जाना है तो अपनी शान से ही जाना है, कितनी भी आपत्ति आ जाये गजराज छिपकर चूहा बनकर के नहीं जाता। मस्त चाल से ही जायेगा। शेर को कभी पूंछ छिपाकर चलते देखा क्या? जब भी चलेगा पूंछ उठाकर चलेगा। गजराज का काम गजराज करेगा, श्वान का काम श्वान करेंगे, यदि श्वान अपना काम करना छोड़ दें तो गजराज का अहसास कैसे हो। तो संसार में सबका अपना स्वभाव है। तो यहाँ कह रहे-मेरु पर्वत की तरह निष्प्रकम्प इस कलि काल में भी सत्पुरुष हैं और पंचम काल के अंतिम समय तक रहेंगे इन्हें कोई लुप्त नहीं कर सकता, कोई सोचे हम चन्द्रमा को नष्ट करके ही रहेंगे तो ऐसा संभव नहीं है। महानपुरुषों की प्रवृत्ति में सामान्य पुरुष की प्रवृत्ति में अंतर इतना ही है कि सामान्य व्यक्ति कार्य कौतुकता से करता है और महान

पुरुष गंभीरता से। महापुरुष में औधत्यपना कम आता है और लघु पुरुष गाम्भीर्यता को धारण कर नहीं सकता। थोड़े पानी में ही बबूले उठते है समुद्र में नहीं वह बूंद कहाँ समा गयी। ऐसे ही सत्पुरुष ही निष्प्रकंप होते हैं चलायमान नहीं होते। एक बात ध्यान रखना, वे पुरुष निष्प्रकम्प रहकर के किसी पर अहसान नहीं करते। श्री भक्तामर स्तोत्र में आप पढ़ते हैं-

मद की छकी अमर ललनायें प्रभु के मन में तनिक विचार।
कर न सकी आश्चर्य कौन सा, रह जाती हैं मन को मार।।
गिर-गिर जाते प्रलय पवन से तो फिर क्या वह मेरु शिखर।
हिल सकता है रंच मात्र भी पाकर झंझावत प्रखर।।

छोटे-छोटे पहाड़ गिर गये, बड़ा पहाड़ नहीं गिरा सुमेरु पर्वत किसी से ये कहने नहीं जाता देखो मैं कितना बलवान हूँ मैं तो नहीं गिरा, वह ज्यों का त्यों स्थिर है। वह कहता है यह लघु पर्वत भी मेरे साथ है, तो ये लक्षण सत्पुरुष के लक्षण हैं।

आगे कहते हैं-

किं शौच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्यमौदार्यम्।
तनुतर वित्तस्य तथा, प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम्।।२५।।

सति विभवे-वैभव के होने पर भी **किं शौच्यं**-खेद की बात क्या है ? **कार्पण्यं**-कृपणता-कृपणता कृपाण से ज्यादा खतरनाक होती है (तलवार) कृपाण तो म्यान में होता है कृपणता का कोई म्यान नहीं होता।

किं प्रशस्यं-प्रशंसनीय क्या है ? **औदार्यम्**-होने पर उदारता से देना ही प्रशंसनीय है। **तनुतर वित्तस्य**-धन विहीन व्यक्ति के लिये प्रशंसनीय बात क्या है **तथा**-वही उदारता। यदि गरीब के पास उदारता है तो वास्तव में बहुत प्रशंसनीय है **प्रभविष्णोः**-जो शक्तिशाली है उसकी क्या बात प्रशंसनीय है। **सहिष्णुत्वम्**-सहनशीलता। जितना बड़ा व्यक्ति हो उतनी ही सहनशीलता हो यह उसकी उदारता है। ये चार बातें यहाँ कहीं।

आचार्य महोदय कह रहे हैं-इस संसार में सोचनीय दशा क्या है ? ऐसा कौन सा कार्य है जो खेद की बात है, जिस पर खेद प्रगट किया जा सकता है, तो आचार्य महोदय ने कहा-'सति विभवे कार्पण्यं'- संसार में सोचनीय दशा वही है जिसके पास वैभव है किन्तु फिर भी उसे उदरस्थ नहीं कर रहा, जिसके पास जल है फिर भी तृषा को शांत करने के लिये उसका उपयोग नहीं कर रहा, जिसके पास औषधि है अपने रोग की शांति का उपयोग नहीं कर रहा, जिसके पास सद्बुद्धि है फिर भी उसका प्रयोग सद्ज्ञान के अर्जन में नहीं कर रहा, जिसके पास सद्बुद्धि है फिर भी उसके माध्यम से सद्कार्य नहीं कर रहा, जिसके पास एक बलिष्ट मन है फिर भी विशिष्ट गुणों का

चिंतवन नहीं करता तो ऐसी दशा नि:संदेह सोचनीय है। खेद की बात है हे भगवान् ! कैसे व्यक्ति है पेट पीठ से लगा जा रहा है, भोजन सामग्री पीठ पर लदी है न खुद खाता है न दूसरों को खिलाता है। वह भले ही खराब हो जाये, फेंकने लायक हो जायेगी। उस पर तो दूसरों को ही दया आ जाती है। तो ऐसे व्यक्ति के विषय में बड़ी सोचनीय बात है। भले आदमी न वस्तु का दुरुपयोग करते हैं न दुरुपयोग होने देते हैं, अपना शक्तिश: प्रयास करता है कि वस्तु का दुरुपयोग न हो जाये। चाहे मेरे काम में आ जाये या तेरे काम में आ जाये किसी के काम में तो आ गयी। किसी के शरीर में सामर्थ्य है उपकार करने की किन्तु वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके दूसरों को भी उपकार नहीं करने देता, शरीर की शक्ति किसके लिये है-तो आचार्यों ने लिखा है-

प्रबोधाय विवेकाय हिताय प्रशमाय च।
सम्यक्त्व तत्वोपदेशाय सतां सूक्ति प्रवर्तते॥

और एक श्लोक में कहा-

विद्या विवादाय धनं मदाये शक्ति परेषां परपीड़नाय।
विपरीत साधौ खलस्य मेतद्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

विद्या विवाद के लिये, धन अहंकार के लिये, शक्ति दूसरों को परेशान करने के लिये यदि दुष्ट के पास ये तीन चीजें हो जायें तो वह क्या करेगा ? यदि विद्या उसे प्राप्त हो गयी तो वह विवाद करेगा, न खुद शांति से बैठेगा न दूसरों को शांति से बैठने देगा, धन मदाय यदि धन प्राप्त हो गया तो अहंकार का पोषण करेगा और शक्ति है चाहे मन बल है चाहे वचन बल है चाहे काय बल है, सैन्य बल, धन बल जो भी बल है वह दूसरों को परेशान करने के लिये, कष्ट के लिये। साधु और खल में यही अंतर है यदि ये चीज साधु के पास पहुँच जाये तो **ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय**-साधु पुरुष की विद्या आत्म ज्ञान के लिये, धन दान के लिये और शक्ति रक्षा करने के लिये होती है। महानुभाव ! **संयमाय श्रुतं धत्ते**-ज्ञानी पुरुष जो होते हैं वे श्रुत को संयम के लिये धारण करते हैं। घर में मटका क्यों ? पानी भरने के लिये, घर में गाय क्यों ? दूध पीने के लिये, ऐसे ही श्रुत संयम के लिये धारण किया जाता है। त्याग, तपस्या, संयम, व्रत नियम इत्यादि के लिये श्रुत है।

मनुष्य संयम को धारण करता है मोक्ष के लिये। श्रुत संयम के लिये और संयम मोक्ष के लिये और पुन: मोक्ष क्यों प्राप्त करना चाहता है, आत्म कल्याण/आत्महित के लिये। तो जो आत्म हितार्थी है वो मोक्ष को पाये बिना संतुष्ट नहीं हो सकता। कर्मों से युक्त मुक्ति नहीं है। तो यहाँ पर कह रहे-वैभव के होने पर भी कृपणता यह बहुत सोचनीय बात है, जिसके पास जो कुछ भी है वह न सदुपयोग करे न करने देगा वह वास्तव में शोचनीय है। आचार्य महोदय समझा रहे

हैं-जिस धन का कोई विश्वास नहीं, कब नष्ट हो जाये, ये धन कैसा है तो आचार्यों ने एक सूक्ति अच्छी दी-

जलान्तश्चन्द्र चपलं, जीवितं खलु देहिना।
तथाविध् मिति ज्ञात्वा, शाश्वत कल्याण आचरेत्॥

महानुभाव ! जल में चन्द्रमा का बिम्ब दिखाई दे रहा है बहते हुये जल में पकड़ में नहीं आता, ऐसे ही संसारी प्राणी को धन के बारे में जानकर शाश्वत कल्याण का आचरण करना चाहिये। दूसरी बात आचार्यों ने कही।

यथाहि पथिकः कश्चित् छाया माश्रित्य तिष्ठति।
विश्रम्य च पुनर्गच्छेत् तथा वस्तु समागमः॥

तुम्हारे पास लक्ष्मी कैसे आयी, ऐसे समझो, जो व्यक्ति पैदल चलता हुआ आ रहा था, धूप बहुत तेज पड़ी, वृक्ष की छाया में बैठ गया थोड़ी देर बाद फिर वहाँ से चल दिया, वृक्ष की छाया में वह स्थायी नहीं बैठेगा, चलता रहेगा, आगे बैठा, फिर आगे बैठा ऐसे ही लक्ष्मी कहीं भी शाश्वत बैठती नहीं है वह चलती रहती है। आज इष्ट का समागम है कल अनिष्ट का समागम भी हो सकता है। आज इष्ट वस्तु तुम्हारे पास है कल किसी और के पास हो सकती है, वस्तु के स्वभाव को स्थायी नहीं मानना, यह सूर्य और चन्द्र की तरह गतिशील है और ये तो परछाई है। आचार्य कह रहे हैं वैभव होने पर कभी भी मन में ये भाव न लाओ कि मुझे कभी ये धर्म में खर्च न करनी पड़े।

धन होते तुम मत नटो, जो नटे सो नटनी होय।
मैं नट नटनी भयी धन से नटो न कोय॥

पहले का यह एक दोहा है। भूतपूर्व में पहले सेठ था बाद में मृत्यु को प्राप्त करके नटनी हुआ। पूछा तू नटनी कैसे बन गया उसने कहा-मुझे जातिस्मरण हो गया है मेरे पास पहले धन था फिर भी मैंने दान देने से मना कर दिया मैं नट गया मैं कहाँ से दान दूँ, तो नट बन गया, इसलिये धन होते हुये भी नटना नहीं। मना नहीं करना, जो है तो कहना भगवान ! जो कुछ आपने दिया है वह सब कुछ आप जानते ही हैं जो है सो है, चाहे वह और भी कोई चीज है वह भगवान का दिया है उसे छिपाना नहीं, किससे छिपाओगे और कहाँ ले जाओगे ? तो महानुभाव! व्यक्ति पुण्यात्मा वही है जो पुण्य के अवसर देखता रहता है। उस अवसर में चतुर से चतुर व्यक्ति चूक जाते हैं किन्तु पुण्यात्मा ही उसका लाभ ले पाते हैं। कई बार ऐसा देखा कि कोई मंदिर बन रहा है, मूर्ति बन रही है या वेदी में या कलशारोहण में या मानस्तम्भ आदि में किसी सामान्य व्यक्ति का पैसा लग जाता है, और विशेष व्यक्ति देखते ही रह गये। ऐसे प्रसंग कई बार जीवन में होते है कि

व्यक्ति चूक जाता है। जैसे एक दृष्टांत आता है एक बार एक राजा ने एक लकड़हारे को बुलाकर के पुरस्कार दिया। क्यों ? राजा जब जंगल से वन विहार करके आ रहा था तब वह बड़ा थका हारा प्यासा था, लकड़हारे ने उसे ठहराया, पानी पिलाया, जूस पिलाया, राजा उससे संतुष्ट हुआ और कहा-तू मेरे महल में आना मैं तुझे पुरस्कार दूँगा तूने मेरे प्राणों की रक्षा की है मैं तेरे प्राण चुकाऊँगा, वह कुछ दिन बाद पहुँचा, राजा ने पहचाना-पूछा क्या चाहिये? बोला-मैं तो आ गया जो आपको देना है सो दे दो। राजा ने कहा माँगो-मैं नहीं जानता जो समझो सो दो। राजा ने कहा-मैं तुम्हें तीन घंटे का समय देता हूँ और तीन घंटे में आपको हमारे महल में घूमकर जो चीज चाहिये सो ले सकते हो। उसके लिये पहले खोल दिया रत्नों का कोट-वहाँ रत्न ही रत्न भरे पड़े देखता ही रह गया, घूमता रहा समय निकल गया, कुछ न ले पाया, राजा ने कहा अब तो समय निकल गया, फिर भी राजा ने 1 घंटे का समय और दिया, अब की बार स्वर्ण के कोट में गया वहाँ स्वर्ण ही स्वर्ण आस पास नृत्यांगनायें नृत्य कर रही थी हास-विलास हो रहा था, वह उसी में खो गया और कब समय निकल गया पता ही नहीं चला, राजा से कहा-मैं तो कुछ नहीं ले पाया, राजा ने कहा कोई बात नहीं अब की बार चांदी वाले कोठे में गया-वहाँ देखता रहा-खेल में अटक गया-और समय निकल गया-उसे बाहर निकाल दिया, महानुभाव ! कई बार ऐसा अपने साथ भी होता है। रत्नों का खजाना है बाल्यावस्था, स्वर्ण का खजाना है युवावस्था-और चांदी के समान प्रौढ़ावस्था है और वृद्धावस्था तो मिट्टी के समान है। कुछ नहीं मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है, वृद्धावस्था बड़ी दयनीय अवस्था होती है, आत्म कल्याण का स्वर्णसुअवसर बाल्यवस्था है आचार्य जिनसेन स्वामी ने वस्त्र ही नहीं पहने आ. उमा स्वामी, आ. पूज्यपाद स्वामी, आ. मानतुंग स्वामी, आ. कुन्दकुन्द स्वामी इत्यादि आचार्यों ने लघु वय में ही दीक्षा ले ली ये बालब्रह्मचारी साधक हुये खूब तपस्या की आत्म कल्याण के मार्ग में बहुत आगे बढ़े इतना ही नहीं जिनशासन के लिये आदर्श स्थापित कर दिया। किन्तु कुछ ऐसे भी रहे जिन्होंने भरी यौवन अवस्था में दीक्षा को स्वीकार किया। लगभग 20-25 साल से लेकर के 40 तक के बीच में उन्होंने भी यथाशक्य खूब दौड़ लगायी किन्तु उनसे आगे नहीं निकल पाये, तीसरे नम्बर वे थे जिन्होंने 40 से लेकर 60 वर्ष तक की उम्र में दीक्षा का मन बनाया तो वो चांदी के समान है जो 60 के ऊपर निकल गये 60 के ऊपर तो सरकार भी छुट्टी दे देती है, शरीर मिट्टी जैसा हो जाता है। तो महानुभाव ! यहाँ कह रहे कि वस्तु के होने पर उसका सदुपयोग करना सीखो, वैभव होने पर कभी गुमान नहीं जो सबसे पहले दान देने की भावना बनाता है, नाम लिखाता है पुण्य भी सबसे पहले उसी के खाते में आता है, दाता सबसे पहले पाता और जो ज्ञाता है दाता नहीं वह ज्ञाता जानकर के रह जाता है किन्तु जीवन में कुछ भी नहीं पाता। व्यक्ति यूँ तो न कुछ लाता है और न कुछ लेकर जाता है किन्तु जो दाता बन जाता है वह सब कुछ लेकर के जाता है और जो दाता नहीं बन पाता वह सब कुछ

पाकर भी सब कुछ छोड़कर जाता है। यदि हम कुछ साथ में लेकर जा सकते हैं तो दाता बनकर ही ले जा सकते हैं, अन्य कोई उपाय नहीं है जीवन में कि हम एक बाल भी अपने साथ ले जा सकें। चाहें बेटे के लिये चल सम्पत्ति छोड़ो या अचल सम्पत्ति बेटे का भाग्य नहीं होगा तो खड़ी हवेली भी गिर जाती है और पुण्य का उदय आता है तो बेटे के नाम कुछ भी न छोड़ो फिर भी राजा बनके राज्य करता है उसका पुण्य पाप उसके साथ है तुम्हारा पुण्य-पाप तुम्हारे साथ है कोई किसी का पुण्य पाप नहीं ले सकता है, तुम चाहो वस्तु के निमित्त से जो वस्तु तुम्हारे पास है उसके निमित्त से सातिशय पुण्य कमा सकते हो, उस पुण्य की प्रेरणा से तुम्हारे पुत्र-पौत्र भी प्रेरणा प्राप्त करें वह भी पुण्य का काम कर सकता है। पहले राजाओं की परम्परा थी वे अपने बेटे को राज्य देते गये और दीक्षा लेते गये, वे धर्म के ऐसे संस्कार देकर गये, और जो राजा राज्य में ही मर गये, उनके बेटे भी फिर बाद में राजा नहीं बन पाते क्योंकि उसने राज्य का त्याग किया ही नहीं, त्याग नहीं किया तो बेटे को राज्य कैसे मिलता? और जिसने त्याग नहीं किया उसे स्वर्ग का राज्य थोड़े ही मिलेगा, जो राजेश्वरी सो नरकेश्वरी जो धर्मेश्वरी सो-स्वर्गेश्वरी, जो छोड़ता नहीं है उसे कोई न कोई छीन लेता है, जो पहले से दान करके चलता है दुनिया में आज तक दानी से किसी ने छीना नहीं है दानी के पास तो कोई पहुँच जाये वह तो देने को तैयार हो जाता है।

महानुभाव ! उस व्यक्ति पर सोचकर, देखकर दया आती है जिसके पास पुण्य के 100-100 साधन हैं फिर भी 1 प्रतिशत भी पुण्य नहीं कमा रहा। यहाँ पर आचार्य महोदय कह रहे है-कि अवसर पर भी वस्तु का उपयोग नहीं करना यह उसकी कृपणता है।

मीत न प्रीत गलीत है जो धरिये धन जोड़।
खाय खर्चे जो जुड़े तो जोड़िये करोड़॥

अपना पेट काट-काट कर मत जोड़ो खाओ-पीओ तो धर्म की भावना पैदा होगी और यदि न खाओगे पीओगे तो न खा सकोगे, न खिला सकोगे नष्ट हो जायेगा, इसलिये जब भी मन में पुण्य का भाव आये, जो भी बन पड़े तुरन्त ही अपनी भावनाओं को साकार रूप दे दो तुम्हारी भावनायें और बढ़ती चली जायेंगी, भावनाओं का धरातल और ऊँचा हो जायेगा, उसको भी पूरा कर दो, और ऊँचा हो जायेगा और जो पूरा नहीं करता है तो नीचे गिरता चला जाता है। महानुभाव ! जो होते हुये भी नहीं देता उसकी दया वास्तव में सोचनीय है और जो उदारता से देता है वह प्रशंसनीय है। मैं क्या लाया क्या लेकर जाऊँगा मिनटों में, क्षणों में, सैकिण्डों में व्यक्ति कंगाल हो जाता है। कई बार लक्ष्मी का चिंतन करते हैं कि लक्ष्मी कैसी है ? आती है पता नहीं चलती, जिस व्यक्ति के पास एक टाईम के लिये भी पर्याप्त भोजन नहीं था व्यक्ति ने भगवान से माँगा तो ऐसा हुआ कि घर का मकान, घर की दुकान और सब प्रकार की व्यवस्था, तो जिसने

प्रतिकूलता देखी है प्राय:कर के दान देने में पीछे नहीं रहता। किन्तु जिसने जीवन में प्रतिकूलता नहीं देखी, ठोकरें नहीं खायीं वह सोचता है सम्पत्ति तो मेरे पीछे-पीछे है जिसने प्रतिकूलता देखी है वह कहता है भईया। भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली आज भगवान ने मुझे दिया है, तो मैं आज भगवान के दिये को खर्च करने से क्यूँ बचूँ। मैंने वो दिन भी देखे हैं जब एक बार का भोजन भी करने को नहीं मिलता था। एक कटोरी दलिया खाकर रह जाता था, पानी पीकर तब काम चलाते थे, आज भगवान ने दो टाईम के लिये दिया है आगे रहेगा नहीं रहेगा इससे पहले भगवान को एक अर्घ अर्पण कर दें, मुट्ठी भर द्रव्य का अर्पण कर दें तो और मिल सकता है न मिले तो कोई बात नहीं पुण्य करने का मौका तो मिल गया कम से कम भगवान की आज कृपा दृष्टि है भगवान के सामने अर्पण करने से घटेगा नहीं बढ़ेगा ही बढ़ेगा।

जो बेर बेर खाते थे, वे बेर बीन खाते हैं।
जो बेरबीन खाते थे वे बेर-बेर खाते हैं॥

संसार की दशा यही है नि:संदेह कुछ भी नहीं कहा जा सकता, हमने भी अपने जीवन में पचासों उदाहरण देखे, जो बचपन में क्या राजपुत्र के जैसे है, क्या सुंदर शरीर, क्या परिवार में सम्पन्नता, और आज वाकई में देखकर के आँखें नम्रीभूत हो जाती हैं कि अरे ! इस व्यक्ति की दशा ऐसी भी हो सकती है। शरीर जीर्ण-शीर्ण-सूख गया, और घर में हालात नौकर से भी गये बीते। और ऐसा भी देखा जिनका बचपन ऐसा जिसे देखकर लगता था कि मरेगा कि जियेगा। उसके लिये माँ के पास दूध भी नहीं, मट्ठे में शक्कर मिलाकर उसे बहलाकर दूध का बहाना कर पिलाया, उसे पाला वह बालक आज लाखों का दान देने में समर्थ है और दे रहा है।

एक व्यक्ति ने अपना जीवंत उदाहरण सुनाया था। महाराष्ट्र का लड़का था, उसके घर में वह, उसकी माँ और छोटी बहिन थी, पिता दिवंगत हो चुके थे, घर में कुछ भी नहीं बचा, माँ दूसरे के घर में जाकर काम करती थी। वे दोनों भाई बहिन छोटे थे, घर भी गिरवी माँ अस्वस्थ हो गयी, गेहूँ थे उसका दलिया बनाकर खाते, वह भी खत्म हो गये, वह बालक स्वयं 4-5वी क्लास में था, उसने कहा-मैं उस समय अपनी माँ का इलाज तक नहीं करा सका-12-13 साल की उम्र में अपना मन पक्का करके मरने के लिये चला गया, संसार में क्या है। कुछ भी नहीं। मैं माँ को ऐसे देख भी नहीं सकता, छोटी बहिन के लिये कुछ कर भी नहीं सकता-मेरी छोटी सी उम्र में कोई नौकरी पर भी नहीं लगाता, और चला गया, किन्तु साथ में उसके पुण्य की भावना भी बनी और वह किसी सेठ के पास गया, सेठ ने उसे भोजन कराया, और उसके साथ वह मुंबई आ गया। आकर किसी दुकान पर नौकरी की, उस दुकानदार ने उसे पढ़ाई का खर्चा दिया वह उसकी नौकरी करता। माँ के पास, बहिन के पास कोई समाचार नहीं भेजा कि मैं यहाँ पर हूँ, एक साल में उसने कुछ पैसा कमा लिया, पहली बार उसने जीवन में अपनी माँ के लिये 200 रु. का मनीआर्डर भेजा,

उसकी माँ की आँख में आँसू आ गये कि मेरा बेटा अभी जीवित है। और ये नहीं मालूम कि कहाँ है, उसके उपरांत वह पढ़ाई भी करता, स्वयं ने अच्छी डिग्री प्राप्त की और किसी अच्छी कम्पनी में जोब प्राप्त की, वह लगातार पैसे भेजता था, माँ और उसकी छोटी बहिन देखती कि वो है कहाँ, उसका कोई पता ही नहीं। उस बेटे ने अपनी फैक्ट्री डाली, अपना सारा काम सेट कर लिया और अपनी माँ व बहिन को अपने साथ ले आया, उसी गाँव में उसी कॉलेज में एक कार्यक्रम हुआ था, जिसमें वो पहले पढ़ता था, वहाँ उसने कुछ दान भी दिया था, वहाँ उसे मुख्य अतिथि बनाकर बुलाया गया उस वक्त उसकी उम्र 30-32 साल की थी। जब वहाँ उसका स्वागत किया गया, उससे स्पीच बुलवायी उसकी आँख से टप-टप आँसू बहने लगे बोला यह वहीं स्कूल है जहाँ मैं पढ़ने आता था और फीस भी नहीं भर पाता था। एक बार भोजन की भी व्यवस्था नहीं थी, मैं अपनी माँ व बहिन को छोड़कर के गया। पूरी सभा की आँखों में आँसू आ गये, वह कहता है आज जो भी मैंने प्राप्त किया है सब भगवान की कृपा से प्राप्त किया है, इसलिये यह स्कूल मुझसे जो भी अपेक्षा करता है मैं वह सब कुछ देने को तैयार हूँ कहने का आशय है जिसने भी जीवन में संघर्ष का सामना किया है ऐसा व्यक्ति पुण्य ज्यादा कमा लेता है। क्योंकि उसने प्रतिकूलता देखी है वह कहता है मैं ठोकर खा चुका, अब मेरे पास जो अनुकूलता है, तन है, मन है, धन है, वचन है, इससे किसी का हित होना चाहिये, नहीं तो ये सब मिट्टी हो जायेगा। और जिसने कभी प्रतिकूलता नहीं देखी, ठोकर नहीं खायी हो, सोचता है क्या करना ? मैं ऐसा कभी भी कर सकता हूँ, जो कहता है कभी भी कर सकता हूँ वह कभी कुछ नहीं कर पाता। वह रावण की तरह से कहता रह जाता है पर कर नहीं पाता। महानुभाव ! पुण्यात्मा व्यक्ति पहले ही जाकर पुण्य कार्य में संलग्न होते हैं। पुण्य यही कहलाता है जिसके पास जितना है उतना करो। आचार्य कहते हैं-वचन है तो उसका सदुपयोग, तन है तो उसका सदुपयोग मन से अच्छी बातों का चिंतवन। उसके माध्यम से सोचो हे प्रभु ! यह मेरा जीवन, किसी के काम में आ जाये। तुम्हारी यदि पुण्य भावना है तो वह किसी ऐसे व्यक्ति के काम में आयेगा जो वास्तव में जरूरतमंद था, भावना यदि ठीक है तो। यदि भावना नहीं है तो न शरीर से पुण्य कमा सकता है, न वचनों से पुण्य कमा पाता है न मन से और न धन से कमा पाता है। वे व्यक्ति जो दूसरों को अच्छी प्रेरणा दे रहे हैं वे व्यक्ति अच्छे ही होते हैं वे भगवान से प्रार्थना करते हैं भगवान! आज तुमने मुझे इसके लायक नहीं बनाया पर प्रेरणा दे रहा हूँ कल यदि लायक हो जाऊँगा तो अवश्य अच्छे कार्य करूँगा। महानुभाव ! पुण्य क्रिया से ही पुण्य होता है। वह कभी-कभी भावना भा कर पुण्य क्रिया वाले से भी आगे बढ़ सकता है और जो सिर्फ क्रिया कर रहा है भावना मृत हैं तो मृत भावना से वह द्रव्य क्रिया मुर्दा कहलाती है। तो भावनायें बहुत प्रबल होना चाहिये महानुभाव आचार्यों ने कहा चलते-फिरते, उठते बैठते पुण्य करो।

आचार्य अजित सेन स्वामी ने कहा-''पुण्यं कुरु'' आ. योगिन्दु देव ने कहा-पुण्यं कुरु., आ. पद्मनंदी जी ने कहा-''पुण्यं कुरु'' पुण्य ही इस संसार में प्राणियों के लिये बहुत आवश्यक है। महानुभाव ! पुण्य भावना सद्भावना स्वर्ग मोक्ष की कारण हैं, बंध निर्बंध की मुख्य साधिका कही जाती है-महानुभाव ! यहाँ यही कह रहे है-कि जिसके पास है और नहीं कर रहा वह सोचनीय है और जो उदारता के साथ कर रहा है वह वास्तव में प्रशंसनीय है। आचार्य महोदय की दृष्टि में यही रहा होगा-जिसके पास है अच्छे में लग रहा है प्रशंसनीय है किन्तु जिसके पास नहीं है फिर भी उसके अंदर उदारता है फिर तो वह देवों के द्वारा वंदनीय है। चाहे एक बुढ़िया ने एक आम, आधी रोटी और आधी साड़ी दी, एक देव परीक्षा लेने आया पूरे नगर में सबका दान लिखता चला गया, जब बाद में बुढ़िया के पास गया, और उसका 1 आम, आधी साड़ी, आधी रोटी देखीं तो स्वर्ण अक्षरों में नगर द्वार पर उसने लिख दिया कि इससे श्रेष्ठ दान और किसी का नहीं है, करोड़ों का दान भी उसके सामने फीका पड़ गया-वाह री भावना ! धन्य है। महानुभाव ! कभी भी कोई ये न सोचे कि मैं क्या कर सकता हूँ। इंसान तो सब कुछ कर सकता है। भावना भाकर के भी व्यक्ति सातिशय पुण्य का अर्जन करता है, ध्यान रखना जब भावना प्रबल होती है। तो उसी प्रकार के निमित्त बनते चले जाते हैं। महानुभाव ! अगली बात कही-

ज्ञानी का मौन रहना, शक्तिशाली का क्षमा कर देना, गरीब का दान से प्रवृत्ति करना, जिसके पास समय नहीं है उसके द्वारा भी समय निकाल कर भक्ति करना ये प्रशंसनीय है।

कः विष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम्-वही शक्तिशाली है, बलवान है, विभु है, प्रभु है उसकी सहनशीलता क्षमाशीलता ही निःसंदेह पूज्यनीय है। कमजोर व्यक्ति की क्षमाशीलता इतनी प्रशंसनीय नहीं हो सकती, किन्तु बलवान् की क्षमा पूज्यनीय होती है। जिस व्यक्ति का शरीर शिथिल हो गया, भोगों का सेवन करने में असमर्थ है, ऐसा व्यक्ति ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर पालन करे तो क्या हुआ, वह प्रशंसनीय है क्या ? वो तो देवरथ ने जब भीष्म प्रतिज्ञा ली तब देवताओं ने आकर स्वर्ग से पुष्पवृष्टि कर दी, तो नव यौवन मैं ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना वास्तव में प्रशंसनीय है, वंदनीय है। ऐसे ही असमर्थ होने पर क्षमा कर भी दिया तो वह तो बलवान की नहीं मजबूरी की क्षमा होती है। समर्थ होने पर भी जो मन में बदले की भावना न लाये वह क्षमा का भाव क्षत्रिय हृदय में ही पैदा हो सकता है, वैश्य के हृदय में, द्विज के हृदय में उत्कृष्ट क्षमा का भाव पैदा हो ही नहीं सकता। शेरनी का दूध स्वर्ण पात्र में ही ठहरता है अन्य किसी पात्र में नहीं।

क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल है।
उसे नहीं जो दंतहीन विषहीन सहज सरल है॥

क्षमा तो वही है जो समर्थ होने पर भी क्षमा करे वह भुजंग जो दंत से विहीन, विष से विहीन है यदि वह क्षमा करे तो क्षमा शोभनीय नहीं है। जो विनीत है सरल है सहज है। स्वतंत्र भारत

के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद उसका एक सेवक था सीताराम, विदेश से राष्ट्रपति जी को कोई अच्छा उपहार मिला फ्लावरपोट एक दिन उससे टूट गया, वह रोने लगा, दिनभर न भोजन किया न पानी पिया, शाम को वे आये, देखा कोने में रो रहा है, पूछा क्या बात है वह पैर पकड़ कर रोने लगा, आप जो चाहों सो दंड दे दो गलती हो गयी, मैं अपनी नौकरी की पूरी तनख्वा भी दूँगा तो भी भरपाई न हो पायेगी, अरे बात तो बता-उसने बताया आपका वह विदेशी गिफ्ट सफाई करते में मुझसे टूट गया, वे बोले-अरे ! पागल तुझसे टूटा मुझसे टूट सकता है इसमें क्या रोना, और गले से लगा लिया, महानुभाव ! यह है क्षमा वह बड़ा व्यक्ति चाहता तो निकाल भी सकता था पर गले लगा लिया। क्षमा तो वह हो जब समर्थ व्यक्ति किसी निबल को, असहाय को, असमर्थ को क्षमा देता है। गांठ बांधकर बैठना क्षमा नहीं। सहिष्णुता नहीं।

श्री शांतिनाथ भगवान की जय-

चतुः कल्याण कलश

चिन्तामणिरिव दुर्लभ-मिह ननुकथयामि चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो विधूत तमसो विशेषेण॥२६॥

चिन्तामणि इव-चिन्तामणि के समान **दुर्लभं**-दुर्लभ **इहं**-इस लोक में **ननु**-निश्चय से **कथयामि चतुर्भद्रम्**-वे चार चतुर्भद्र क्या है ? **किं तद्वदन्ति** क्या है, कहते है **भूयो विधूत तमसो विशेषेण**-जिन्होंने विशेष रूप से अज्ञान अंधकार को नष्ट कर दिया है, जो ऐसे पवित्र आत्मा हुये हैं ऐसे तीर्थंकरों ने, गणधरों ने, ऋषियों ने बताया है कि इस लोक में दुर्लभ क्या है ?

इस श्लोक में बस यही कह रहे हैं जिन्होंने अपनी आत्मा में से अज्ञान का अंधकार, मिथ्यात्व का अंधकार, असंयम का अंधकार नष्ट कर दिया है जो पवित्र आत्मा हो गयी वे बता रहे हैं संसार में चार चीज दुर्लभ है वे चार चीज कौन-कौन सी है उसके बारे में अगले श्लोक में बता रहे हैं।

दानं प्रिय वाक सहितं, ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
वित्तं च त्याग सहितं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम्॥२७॥

दानं प्रिय वाक्सहितं-प्रिय वचनों के साथ दान दो,

ज्ञानमगर्वं-गर्व से रहित ज्ञान, **क्षमान्वितं शौर्यम्**-क्षमा सहित शूरवीरता **वित्तं च त्याग सहितं**-त्याग से सहित धनिक **एतत् चतुर्भद्रम् दुर्लभं**-ये चार भद्र दुर्लभ हैं।

ये चार कल्याण कलश हैं ये चार चीजे जहाँ पर हैं उनका कल्याण नियामक है। वह चार गतियों में नहीं भटकेगा। ये चार चीजें ऐसी है जिससे चार कषाय शमित होती है, ये चार ऐसी चीजे हैं जिनसे चार घातिया-अघातिया कर्म नष्ट होते हैं, ये चार ऐसी चीजें हैं जिनसे अनंत चतुष्टय की प्राप्ति होती है।

महानुभाव !

इस संसार में अत्यंत दुर्लभ वे चार चीज क्या हैं जो कल्याण प्रदायी हैं, जिनका संसार में मिलना बहुत कठिन है। दुर्लभ दुर्-का अर्थ होता है-कठिन 'लभ'-शब्द आता है प्राप्ति के अर्थ में। कठिनता से जो प्राप्त होता है वह दुर्लभ। कठिनता से क्या प्राप्त होता है-भद्र कल्याण और चतुर्भद्र चारों कल्याण और ज्यादा भद्रता से प्राप्त होते हैं। यदि किसी के पास एक चीज भी हो तो वह अपने आप को शहनशाह मानता है जिसके पास चार-चार चीजें हो तो वह तो शहनशाहों का शहन शाह है। चार ही क्यों ? दिशायें मुख्य रूप से चार ही होती है। तो चारों तरफ से भद्रता ही भद्रता, सरल सहज। जैसे मिशरी में मिठास कहाँ पर होती है, सर्वांश में, अग्नि में ऊष्णता कहाँ होती है ? घृत में चिकनाई कहाँ पर होती है सर्वांश में ऐसे ही जिसकी आत्मा में चारों तरफ से

भद्रता ही भद्रता हो, भद्रता माने 'कल्याण'। भद्रता जिस माह में सबसे ज्यादा पायी जाती है वह महीना होता है भाद्रपद। सबसे ज्यादा व्रत इसी माह में होते है व्यक्ति अधिक धर्म-ध्यान इसी माह में करता है क्योंकि भाद्रपद अनुकूल समय है साधना का। महानुभाव! दुर्लभ क्या है ? अंदर की यात्रा ही सबसे ज्यादा दुर्लभ है, चारों दिशाओं से कल्याण की भावना, अपनी आत्मा के सर्व प्रदेश से जब भी निकले कल्याण की भावना निकले, जैसे तीर्थंकर केवली के शरीर से आभामण्डल निकलता है तो ऐसा लगता है कि चारों तरफ से एक प्रकाश पुंज इतना स्वच्छ। निर्मल आभामण्डल कि उस आभामण्डल में भव्य जीवों को अपने 7 भव दिखाई देने लगते है तो महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि अंदर की यात्रा बहुत कठिन है, और चार चीजों की प्राप्ति और भी कठिन है, एक तरफ से धन आ रहा है तो व्यक्ति संतुष्ट है और जब चारों तरफ से धन आ रहा है तो, फिर तो संतोष का कहना क्या ? कहते हैं चारों अंगुली घी में। किन्तु कब जब अंगुष्ट के अन्डर में हैं तब। यदि अंगूठा अंदर दबा हुआ है तो चारों अंगुली घी में नहीं हो सकती, अंगूठे का शासन है तो चारों अंगुली से घी बटोरा जा सकता है। तो आत्मा का आत्मा पर जब अनुशासन होता है, अंकुश होता है तब नि:संदेह आत्मा में चारों प्रकार से भद्रता आती है। दूसरी बात-चतुर्भद्र से ये भी कहा जाता है कि अभद्रता के चार कारण है पाँचवा कोई कारण नहीं है पहला कारण है क्रोध, दूसरा मान, तीसरा माया, चौथा है-लोभ ये चार ही अभद्रता के कारण है इन चार से ही पाप होते है। सप्त व्यसन आदि के ये चार कारण ही अभद्र हैं, जो व्यक्ति इन चार कारणों पर विजय प्राप्त कर लेता है जीवन में भद्रता निष्पन्न होने लगती है तो चार भद्र चीज कही-चार दिशाओं की यात्रा सरल है, चाँद पर पहुँचना भी सरल है, पाताल में पहुँचना भी सरल है और तो और पक्षियों की तरह उड़ना भी सरल है। किन्तु कठिनाई से प्राप्त 'दुर्लभ' चार चीजें है-पहली चीज बताई-

दानं प्रिय वाक्य सहितं-जीवन में पहली बात तो कठिन दान दे पाना। व्यक्ति दान देना नहीं चाहता, लेना चाहता है। जिसके जीवन में देने का भाव है वह व्यक्ति नि:संदेह उच्चता को प्राप्त करता है क्योंकि जो छोड़ता है वह हल्का होता चला जायेगा उठता चला जायेगा। दान की भावना हर एक की नहीं होती। सब जगह सोच कर जाता है यहाँ पर मुझे क्या मिलेगा ? लेने का भाव लेकर चलता है, जब देने का भाव लेकर चलता है तो मोक्षमार्गी कहलाता है। दान बड़ा कठिन है, दे पाना बहुत कठिन है। यद्यपि प्रकृति सदैव कहती है पहले देना सीखो तभी आप ले सकोगे, पहले बर्तन को खाली करो तभी वस्तु भरी जा सकती है पहले पीछे वाले पैर को उठाओ, पीछे की जमीन को छोड़ो तब आगे पैर बढ़ेगा तब आगे की भूमिका प्राप्त हो सकती है बिना छोड़े कुछ नहीं मिल सकता, फिर भी व्यक्ति हर एक से लेने का ही भाव रखता है चाहे छोटा हो या बड़ा, अपना हो या पराया कहीं से भी कुछ भी मिले लेते जाओ-लेते जाओ, किन्तु महापुरुष, प्रज्ञ पुरुष,

पुण्य पुरुष प्राय:कर के देने का भाव रखते हैं। इंगलिश के वर्ल्ड भी हम देखते हैं तो पहले क्या-चैरेटी 'दान' पहले डिमांड बाद में है। पहले देओ फिर डिमांड कर सकते हो। पहले डोनेट फिर टेक गिव के बाद टेक आता है। तो बात ये है No give No gain और Much Give - More gain. जो देता है वह लेने का भी अधिकारी है।तो महानुभाव ! 'द' पहले, बाद में 'ल' दादा बड़े, लाला छोटे किन्तु व्यक्ति फिर भी लाला बनना चाहता है दादा नहीं। दादा बन गया लोग उसके चरण पूजते हैं और जो लाला है उसको अच्छा नहीं कहते बुंदेलखण्ड में दामाद को लाला बोला जाता है।

एक बार एक व्यक्ति अपनी ससुराल गया। सबने लाला जी-लाला जी कह उसका बहुत सम्मान किया। थोड़ी सी असावधानी के कारण लाला जी का पाट पर से पैर फिसल गया और कुएं में गिर पड़े परन्तु जैसे ही गिरे उन्होंने दीवार पकड़ ली। अब वहाँ लोगों की भीड़ लग गई। सब कहने लगे लाला जी अपना हाथ दो। पर वे तो हाथ ही न दें। सभी लोग चिल्ला रहे लाला जी अपना हाथ दे दो पर वे तो देने को तैयार ही नहीं। हाथ तो तब दें ना जब जिंदगी में कुछ दिया हो। सब लोग परेशान, ससुराल वाले परेशान आखिर बात क्या है ? ऐसे तो इनके प्राण ही चले जाएगे। तभी एक व्यक्ति जो लाला जी के विषय में जानता था वह कुएं के पास पहुँचा और बोला इनसे इनका हाथ माँगोगे तो ना देंगे चाहे इनके प्राण ही क्यों न चले जाऐ। तब वह लाला जी से कहता हैं भाई साहब मेरे हाथ ले लो। 'ले लो' शब्द सुनते ही लाला जी ने अपना हाथ उस व्यक्ति को पकड़ा दिया। कहने का आशय यह है लेने वाले को कोई पसंद नहीं करता, देने वाले को सब पसंद करते है। तो दान देओ, दान देना हमारा स्वभाव है, प्रकृति का नियम है, दान तो दो किन्तु ''प्रियवाक्य सहितं'' जैन दर्शन में कहा है-नवधा भक्ति से रहित जो कोई भी दान दिया जाता है वह धर्म नहीं कहलाता, नवधा भक्ति सहित जो दिया जाता है वह धर्म कहलाता है। उत्तम, मध्यम जघन्य किसी भी पात्र को दो किन्तु नवधा भक्ति होना चाहिये। नवधा भक्ति कौन सी? जो मन से हो, वचन से हो, काय से हो, कृत कारित अनुमोदना से हो। ये सब प्रकार की भक्ति है मन वचन काय की विनम्रता हो, मन वचन काय की अनुमोदना हो स्वयं भी करना, दूसरों को भी कराना और करने वालों की अनुमोदना करना ये नवधा भक्ति है। अथवा नौ प्रकार की भक्ति आप जो मुनिमहाराज की करते हैं-सबसे पहले आग्रह, प्रतिग्रह, पड़गाहन समझेंगे तो आमंत्रण सम्यक्दृष्टि निमंत्रण पहले से स्वीकार कर लेता है, देशव्रती वह उसी दिन स्वीकार करता है, महाव्रती स्वीकार नहीं करता जाते हुये को बुला लो तो स्वीकार कर लेता है, तीनों की नवधा भक्ति कैसे-कैसे होती है ये देखते जायेंगे। मुनिराज का पड़गाहन किया फिर उन्हें उच्च आसन दिया, पुन: पाद प्रक्षालन, पूजन अर्चन, मन शुद्धि वचन शुद्धि काय शुद्धि बोली सबका पड़गाहन अलग-अलग प्रकार से होता है, नवधा भक्ति लोग कहते हैं मुनिमहाराज की होती है, पर नवधा

भक्ति मध्यम पात्रों की भी होती है, जघन्य पात्रों की भी होती है, बिना नवधा भक्ति के दान देना, जैन दर्शन में अर्थकारी नहीं है। तो मुनिराज की आप जानते है मध्यमपात्र की कैसे करे? प्रतिमाधारी है-आपने प्रातःकाल उन्हें निमंत्रण दिया, भैया जी आज आपका निमंत्रण हमारे चौके में है ये हुआ प्रतिग्रह-पड़गाहन, आमंत्रण।

दूसरी बात 'उच्च आसन'-आपके घर में जब आ रहे हैं तो अपने आसन से उठकर के हाथ जोड़कर के आग्रह करेंगे, अपने आसन को छोड़ देना दूसरे को सम्मान देना उच्चासन देने के बराबर है, उसके उपरांत जब वे आयें, वो और आप चौके के बाहर रखे जल से पैर धोकर प्रवेश करते हैं तो वह है पाद प्रक्षालन, मुनिराज का पाद प्रक्षालन करेंगे तो गंधोदक को माथे से लगायेंगे, त्यागीव्रती का माथे से न लगायेंगे, अभी पैर धोकर प्रवेश करना ही पाद प्रक्षालन है, इसके उपरांत जब भोजन के लिये बैठायेंगे। तो जमीन पर नहीं बिठायेंगे, कहीं न कहीं चटाई बिछायेंगे, पाटा लगायेंगे, (यदि अव्रती है तो कुर्सी देंगे) उच्चासन तो देंगे, सामान्य जमीन पर न बिठायेंगे। उसके उपरांत-पूजन, पूजन का आशय केवल अष्ट द्रव्य से पूजन ही नहीं होता है आचार्य अमितगति स्वामी ने सत्ताईस प्रकार की पूजन बताई, हाथ जोड़ना भी पूजन है, जय बोलना भी पूजन है। आपने देखा सुना होगा कि एक व्रत का पालन करने वालों की भी देवताओं ने आकर पूजन की, आठ द्रव्य से पूजन नहीं की, उनका जयकार किया।

मातङ्गो धन देवश्च, वारिषेणस्ततः परः।

नीली जयश्च सम्प्राप्ताः पूजातिशय मुत्तमम्॥६४॥

तो जयकार बोलना भी पूजन है। आपने हाथ जोड़कर जय जिनेन्द्र किया सिर झुकाया ये भी तो पूजन है उसके उपरांत-आप उन्हें थाली दिखायें अशुद्ध तो खिलायेंगे नहीं स्वयं भले ही अशुद्ध, खाओ बासा भी खाओ किन्तु त्यागीव्रती, महाव्रती को शुद्ध मर्यादित ही खिलायेंगे, थाली परोस दी, मुनिराज के लिये तो मन शुद्धि वचन शुद्धि कायशुद्धि कह दी पर व्रती है तो उसके लिये कह दिया कि आहार जल शुद्ध है चलेगा किन्तु चलेगा तब जब आपका मन प्रसन्न दिखाई दे रहा हो, यदि आपका वचन मिष्ट होगा, भईया बड़े अहोभाव से कहेंगे तो वचन अच्छे ही निकलेंगे, और जब भी भोजन करायेंगे तो वस्त्र भी शुद्ध होना चाहिये-तो ये काय शुद्धि हो गयी, तो ये तीनों की शुद्धि हुयी बेमन से, कटुवचन से या अशुद्धि होगी तो त्यागीव्रती वहाँ न रूकेंगे चले जायेंगे। अब आप कहेंगे महाव्रती की अणुव्रती की भक्ति तो समझ आ गयी, अव्रती की कैसे करें ?

अव्रती की नवधा भक्ति-1. निमंत्रण चाहे आपने कार्ड भेजा है, चाहे फोन कर दिया, चाहे घर जाकर कहा वह हुआ निमंत्रण, आग्रह, प्रतिग्रह। उसके उपरांत घर में आता है। वह जूते चप्पल

उतार कर आयेगा, आकर हाथ पैर धोएगा ऐसा अभी नहीं है भले ही पर परम्परा आज से पहले ऐसी ही थी। पुनः उच्चासन-आपने जो भी व्यवस्था कर रखी-चाहे चटाई बिछाई हो, दरी या कुर्सी टेबल लगाया हो, तो वह उच्चासन हुआ, आपने थाली परोसी आपने पुनः हाथ जोड़कर कहा-भईया भोजन शुरू कीजिये, तो प्रसन्नचित्त होकर, मीठे शब्दों में कहेगा-तो वह हाथ जोड़ रहा है, चेहरे पर भद्रता भी दिखाई दे रही है वचन भी मिष्टता से कह रहा है और अतिथि को तो अच्छा ही खिलायेगा, स्वयं भले ही अशुद्ध खा ले पर इसे प्रीतिभोज में अभक्ष्य नहीं खिलाऊँगा-तो यह संक्षेप में अव्रती की नवधा भक्ति होती है। बिना नवधा भक्ति के हमारे जैन दर्शन में दान को स्वीकार नहीं किया गया है। द्वितीय शताब्दी में आचार्य कार्तिकेय स्वामी हुये जिनने अलग-अलग प्रकार से कहा गया कि तीनों पात्रों को नवधाभक्ति पूर्वक दान देना चाहिये। इस संबंध में 10-20 प्रमाण आगम से मिल जायेंगे। तो महानुभाव ! महाव्रती को दान देना भी लिखा है, अणुव्रती को दान देना भी लिखा है, सम्यक्दृष्टि अव्रती को दान देना भी लिखा है किन्तु अपात्र मिथ्यादृष्टि, कुलिंगी, मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र का पोषण करने वाले को दान देने की बात नहीं कही। अपात्र को करुणादान दे दिया तो विशेष हानि भी नहीं है विशेष पुण्य भी नहीं है। तो पहली बात-कही ''दानं प्रियवाक्य सहितं''

''दान देय मन हरष विशेखे, यह भव जस पर भव सुख देखे''

1994 में सागर में चातुर्मास हो रहा था, एक व्यक्ति आहार के समय इतने भावुक हो जाते कि उनके आँखों से अश्रुधारा बहने लगती, पड़गाहन के समय-हे त्रिलोकीनाथ ! हे कृपानिधान नमोस्तु-नमोस्तु इतने गद्गद् हो जाते और कहीं पड़ग गये तो खुशी से आँसू ही बह जाते। महानुभाव! जब व्यक्ति के अंतरंग में विशुद्ध परिणाम होते हैं उस समय भावुकता आती है। उस समय उसे कोई कुछ भी कहे तब भी उसके मुख से कटु शब्द नहीं निकलते हैं। कटु शब्द के लिये तो कषाय की उत्तेजना चाहिये। महानुभाव ! शब्द भले ही मीठे हों न हों पर भाव उसमें मीठा छिपा होगा। 'आजा भई तू भी भोजन कर ले' तो इन शब्दों में लहजा ऐसा होगा पर भावों में मिठास होगी। वाणी की मिठास सबसे उत्कृष्ट होती है।

दाता को उसके परिणामों का फल मिलता है परिणाम इतने विशुद्ध होते हैं ऐसा नहीं है कि बहुत उत्कृष्ट वस्तु खिलायी हो, तो पुण्य ज्यादा मिले। बात ये है कि परिणाम क्या है ? परिणाम उत्कृष्ट हैं तो जघन्य चीज भी उत्कृष्ट फल देने वाली होती है। परिणाम जघन्य हैं तो उत्कृष्ट वस्तु भी निकृष्ट हो जाती है। तो बहुत अच्छे परिणामों के साथ, जब कोई मुनिराज तुम्हारे यहाँ आहार हेतु आयें तो बस यही भावना भाना कि हे भगवान मैं तो आपको वास्तव में तीर्थंकर जैसा मान रहा हूँ ऐसा सोचता हूँ कि मेरे घर में तीर्थंकर पधारे हैं मैं तीर्थंकर को आहार देकर अत्यंत पुण्य

का आश्रव कर रहा हूँ। परिणाम जघन्य क्यों किये जायें परिणाम उत्कृष्ट रखो। मेरे लिये तो आज भी चौथा काल है। और तुम्हारे मन में भाव खराब हो गये, चौका लगाना मजबूरी सी हो गयी तो पुण्य का आश्रव नहीं हो रहा। महानुभाव ! बस यही भावना भायें कि हे भगवान यदि मेरे नगर में मुनिराज, माताजी या त्यागीव्रती हैं तो पहले उनको आहार कराऊँ फिर मैं ग्रहण करूँ यदि वे नहीं हैं तो पहले भगवान के सामने मुट्ठी भर चावल व जल चढ़ाकर ही अपने कंठ के नीचे जल की बूंद व अन्न का दाना ग्रहण करूँ। हे भगवान् ! मुनिराज हैं तो भले ही एक अंजुली ग्रास दूँ पर दूंगा अवश्य, एक घूंट पानी ही सही, आज एक घूंट पिलाऊँगा तो स्वर्गों में सागरों की आयु में मुझे भी अमृत का पान मिलेगा। तो महानुभाव ! कहने का आशय है कि व्यक्ति जब उत्कृष्ट भावना के साथ चाहे जल देता है या ग्रास या फल या कुछ भी देता है और प्रेय शब्दों को बोलते हुये दे तो वह दान उत्कृष्ट फलदायी होता है।

महानुभाव दूसरी बात-**ज्ञान मगर्व**-ज्ञान अहंकार से रहित हो। व्यक्ति गर्भ में नहीं आना चाहता गर्व में आ जाता है। जो गर्भ में नहीं आता उसका कभी कल्याण नहीं होता, गर्भ में आये बिना जिसका जन्म हो जाता है वह व्यक्ति मोक्ष जाने का अधिकार नहीं रखता, मोक्ष वही जा सकता है जो गर्भ में आकर के जन्म लेता है। देव, नारकी, सम्मूर्च्छन जीव गर्भ में नहीं आते इसलिये कभी मोक्ष भी नहीं जा सकते। तीर्थंकर भगवान के पाँच कल्याणकों में पहला कल्याणक गर्भ कल्याणक है, तो किसमें आओ गर्भ में गर्भ का आशय है, गुप्त रूप में साधना करना। गर्भ दिख नहीं रहा जो वृद्धिंगत हो रहा है, जो गर्भ में वृद्धिंगत हो गया है, गुप्त साधना कर ली है ऐसे व्यक्ति का जन्म सफल और सार्थक हो जाता है। जो गुप्त रूप से पुण्य नहीं कमाता साधना नहीं करता दिखा-दिखा कर करता है तो उसके पुण्य का फल वहीं मिल जाता है, बाद में कुछ नहीं रह पाता। तो गुप्त साधना अर्थात् गर्भ में साधना। तो व्यक्ति को गर्भ में आना चाहिये। तीर्थंकरों का गर्भ कल्याणक के बिना और कोई कल्याणक नहीं हो सकता। तो ज्ञान कैसा हो गर्व से रहित किन्तु गर्भ सहित। यदि ज्ञान को गर्भ में रखा है तो गर्भ में रखा हुआ ज्ञान वैराग्य रूपी संतान को उत्पन्न करता है। वैराग्य रूपी संतान संयम तप और ध्यान की पर्याय को प्राप्त करते हैं। ज्ञान गर्व रहित हो, हे प्रभु ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ यदि आप मुझे सम्यक्ज्ञान दें तो मेरे जीवन में विनम्रता अवश्य देना, जब भी सम्यक्ज्ञान दें तो उसे पचाने की क्षमता अवश्य देना। क्योंकि अहंकार ही अंधकार है, अन्य प्रकार के अंधकार दूर करने के तो उपाय होते हैं सूर्य चन्द्र आदि पर चेतना पर छाये अंधकार को दूर कैसे करोगे ? क्योंकि ज्ञान का सूर्य ही प्रकाश देने वाला है, ज्ञान ही दीपक है और ज्ञान से ही अहंकार हो जाये वही अंधकार हो जाये तो प्रकाश कहाँ से लाओगे, दीपक ही जब अंधेरा उगल रहा है तो प्रकाश की गुंजाइश कम रहती है तो कम से कम ज्ञान का अहंकार तो न रखो। यदि प्रतिस्पर्धा करनी है तो दो चीज में करो ज्ञान अर्जन में और दान

देने में इसमें होड़ मत करो कि वो मंदिर नहीं जाता तो मैं भी नहीं जाऊँगा, बुराई में होड़ नहीं करना है, करना है तो अच्छाई में करना है और खूब सोचना-सोचना जीवन में अच्छे मौके बहुत कम आते हैं किन्तु अच्छे मौके आयें तो छोड़ना मत। हे भगवान् ! इन हाथों ने खूब पाप किये हैं अब इनसे पुण्य करवा दे। इतने बड़े जीवन में इतना कुछ किया क्या भगवान का कोई अच्छा काम नहीं कर सकता ? तो महानुभाव गर्व रहित ज्ञान व दान हो। अगली बात कही-

क्षमान्वितं शौर्यम्-शूरवीरता क्षमा से सुशोभित हो तब तो वह वास्तव में शूरवीरता है। **वित्ते च त्याग सहितं**-हे भगवान् ! हमें आप उतना ही धन देना जितने धन का हम दान कर सकें जितना दान न कर सकें उतना धन मत देना। तो दान की भावना अवश्य देना, दान की भावना है तो कितना भी धन हो तुम्हारे लिये हानिकारक नहीं है। दान की भावना से सहित चक्रवर्ती का वैभव भी नरक का कारण नहीं, दान की भावना नहीं है तो बिना परिग्रह के भी व्यक्ति नरकायु का बंध कर सकता है मूर्च्छा परिग्रह होता है, त्याग की भावना में मूर्च्छा नहीं होती मूर्च्छा में त्याग की भावना नहीं होती। तो इस प्रकार आचार्य महाराज ने चार भद्र कहे इनकी प्राप्ति दुर्लभ है। आगे-

इति कण्ठगता विमला, प्रश्नोत्तर रत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणा अपि विभान्ति विद्वत्समाजेषु॥२८॥

इति कण्ठगता विमला-इस प्रकार से 27 काव्यों की प्रश्नोत्तर रत्नमाला लिखी है, 28 वें में उसकी महिमा बतायी। इस प्रकार से ये प्रश्नोत्तर रत्नमाला विमल है, दोषों से रहित है। **कण्ठगता**-जिसने इसे धारण (कण्ठगत) किया है **येषां**-जिन पुरुषों ने **ते मुक्ताभरणा अपि**-वे मुक्त आभूषणों से रहित होते हुये भी, मुक्तिरूपी आवरण के साथ **विद्वत्समाजेषु**-विद्वानों की सभा में शोभते हैं। विद्वत का आशय यहाँ पर लेंगे तो आभूषणों से रहित होते हुये भी शोभते है दूसरा वास्तव में विद कौन है-विद् अर्थात् आत्मा का नाम है, विद केवली का नाम है क्योंकि वह शुद्ध ज्ञान जो स्वाभाविक ही शाश्वत है ऐसे ज्ञान से युक्त विद्वत समाज क्या है सिद्धों की सभा विद्वत समाज है ? अर्हंत भगवान का समवशरण विद्वत समाज है तत्वचर्चा विद्वत गोष्ठी भी विद्वत समाज है, सामान्य विद्वानों की सभा भी विद्वत समाज है अलग-अलग प्रकार से देख सकते हैं तो जिसके पास कोई भी आवरण नहीं है आभूषण नहीं है धवल वस्त्र पहने हुये भी बैठा है तो शोभा को प्राप्त होता है। जिसके कण्ठ में यह प्रश्नोत्तर रत्नमालिका है तो। दूसरी बात-कण्ठ से आशय है आत्मप्रदेश, आत्मप्रदेशों में यह गुणरूपी रत्नों की माला है। जो अपनी आत्मा में स्वयं प्रश्न करे स्वयं उत्तर दे वही शिष्य वही गुरु है ऐसी रूपी प्रश्नों माला जिसने अपनी आत्मा में धारण की है ऐसा व्यक्ति सिद्धों की सभा में शोभा को प्राप्त होता है।

विवेकात्यक्त राज्येन, राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचिताऽमोघ वर्षेण, सुधियां सदलंकृतिः॥२९॥

28वें काव्य में कहा-

आपने प्रश्नोत्तर रत्नमाला ग्रंथ पढ़ा-27 काव्य पढ़े 2+7=9 अखण्डता का प्रतीक है जीवन को अखंड श्रेष्ठ बनाने वाली यह मालिका जिसने भी अपने कण्ठ में धारण की है, कण्ठ ऐसा स्थान है जो मुख व हृदय के बीच में होता है, कण्ठ की चीज हृदय में भी जा सकती है मुख में भी आ सकती। कण्ठ में धारण करने में हृदय में आ गयी तो विशुद्धि बढायेगी, कण्ठ की चीज मस्तक में पहुँचती है तो आपका ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ायेगी कण्ठ की चीज मुख से निकलती है तो सदुपदेश बन जाती है। माला तो कण्ठ में ही धारण की जाती है। माला को पैरों में नहीं पहनते। और यह कण्ठ से छूती हुयी हृदय में आती है जिस भव्य जीव ने एक-एक श्लोक को कण्ठस्थ किया है कण्ठ में स्थायी किया है उसकी निर्ब्याज रूप (बिना बहाने) से ब्याज आती रहेगी। निर्ब्याज मिन्स बिना वंचना के, बिना छल कपट बिना ठगी के, निर्ब्याज रूप से मिलेगी। हृदय की विशुद्धि बढायेगी, बुद्धि कभी कुबुद्धि नहीं होगी, हृदय का समर्पण वहीं होगा जहाँ होना चाहिये, मस्तिष्क भी आपका सही काम करेगा जो करना चाहिये। कण्ठ से जब ध्वनि निकलेगी निःसंदेह स्व पर का कल्याण करने वाली होगी। वह जो इसे धारेंगे विद्वानों की सभा में शोभा को प्राप्त होंगें। महानुभाव ! इस चेतना की शोभा सम्यक्ज्ञान से है, बाह्य आभूषणों से नहीं। व्यक्ति की शोभा धर्म से है, एक मुनिमहाराज जिनके शरीर पर मैल जमा हुआ है शरीर से पसीना बह रहा है, दुबला पतला शरीर है, श्याम वर्ण पड़ गया, हड्डियाँ दिखायी दे रही हैं, खाल चिपक गयी है आँखें धंस गयी हैं ऐसा रूप दिखाई दे रहा है फिर भी उनको देखकर रोम-रोम पुलकित हो जाता है आनंद ही आनंद आ रहा है, और एक व्यक्ति डाकू है बहुत सुंदर भी है उसे देखकर रोम-रोम काँपने लगता है। बड़ी से बड़ी मूर्ति वीतरागी मूर्ति हो भगवान को देख बालक को डर नहीं लगता कोई दूसरी मूर्ति रौद्र रूप की हो बच्चे देख इतने भयभीत हो जाते हैं बच्चे वहाँ जाने का साहस नहीं कर पाते। तो महानुभाव ! यह रत्नों की माला जिसने कण्ठ में धारण की उसका हृदय व मस्तक स्वच्छ शुद्ध निर्मल रहता है। क्योंकि ये स्वयं निर्मल है। महानुभाव ! यह कारिका यही कह रही है कि इस को कण्ठस्थ करना चाहिये।

विवेका त्यक्त राज्येन-बुद्धिपूर्वक जिन्हें अंतरंग में तत्वज्ञान हुआ सम्यक्ज्ञान हुआ ऐसे राजा अमोघवर्ष द्वारा राज्य का त्याग कर दिया गया, **राज्ञा**-राजा के द्वारा **इयं रत्नमालिका रचिता**-यह रत्नमाला रची गयी **सुधियां सदलंकृतिः**-सज्जन पुरुषों का वास्तविक आभूषण है ऐसी प्रश्नोत्तर रत्नमालिका उन्होंने (अमोघवर्ष आचार्य) लिखी, वे पहले राजा थे, राज्य का त्याग करके यथाजात

दिगम्बर अवस्था को स्वीकार किया और पुनः विधिपूर्वक सल्लेखना ग्रहण कर स्वर्ग आदि अवस्था को प्राप्त किया ऐसे आचार्य परमेष्ठी द्वारा रचित यह प्रश्नोत्तर रत्नमाला यहाँ पूर्णता को प्राप्त होती है।